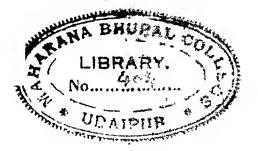
द्विवेदी-मीमांसा

लेखकः -

प्रेमनारायणं ट्रंडन



प्रकाशक

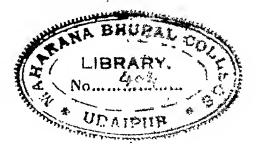
इंडियन मेस, लिपिटेड, इलाहाबाद

मृल्य १॥)

द्विवेदी-मीमांसा

लेखकः

भेमनारायणं टंडन



प्रकाशक

इंडियन मेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

मृत्य १॥)

भारतेंद्व कर गेएं भारती की वीणा निर्माण । किया श्रमर स्पर्शों ने जिसका बहु विधि स्वर-संधान ॥ निश्चय उसमें जगा श्रापने प्रथम स्वर्ण-मंकार । श्रखिल देश की वाणी को दे दिया एक श्राकार ॥

× × ×

पंखहीन थी अहा, कल्पना, मूक कंठगत गान। शब्द शून्य थे भाव; रुद्ध प्राणों से वंचित प्राण॥ सुख-दुख की प्रिय कथा स्वप्न! वंदी थे हृद्योद्गार। एक देश था सही, एक था क्या वाणी-व्यापार?

 \times \times \times

चिर स्मारक-सा, उठ युग-युग में, भारत का साहित्य । - त्रार्थ, त्रापके यशःकाम को करे सुरिचत नित्य॥

—सुमित्रानंदन पंत

(द्विवेदी स्त्रभिनंदन-ग्रंथ)

भारतेंद्व कर गएँ भारती की वीणा निर्माण। किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहु विधि स्वर-संधान।। निश्चय उसमें जगा आपने प्रथम स्वर्ण-मंकार। अखिल देश की वाणी को दे दिया एक आकार।।

 \times \times \times

पंखहीन थी अहा, कल्पना, मूक कंठगत गान। शब्द शून्य थे भाव; रुद्ध प्राणों से वंचित प्राण॥ सुख-दुख की प्रिय कथा स्वप्न! वंदी थे हृद्योद्गार। एक देश था सही, एक था क्या वाणी-व्यापार?

 \times \times \times

वाग्मि! आपने मूक देश को कर फिर से वाचाल, रूप-रंग से पूर्ण कर दिया की किर फिर से वाचाल, शत कंठों से फूट आपके शतमुल हैं गौरव नाम । शत-शत दुर्ग-स्तंभों से ताने किर्याणमा की ति-वितान ।

 \times \times \times

चिर स्मारक-सा, उठ युग-युग में, भारत का साहित्य । - त्रार्य, त्रापके यशःकाम को करे सुरिचत नित्य ॥

—सुमित्रानंदन पंत

(द्विवेदी ऋभिनंदन-यंथ)

इस संबंध में मैंने आदरणीय वावू कालिदास जी कपूर, एम० ए०, एल० टी०, से बात की थी। इसी सिलसिले में उन्होंने द्विवेदी जी का नाम लिया और बोले—इनके विषय में कुछ लिख सकी तो लिखो; इसकी बड़ी जारूरत है।

मैंने स्वीकार कर लिया। मास्टर साहव ने मुफ्ते द्विवेदी-श्रभिनंदन-यंथ दिया, सरस्त्रती (सन् १६१८ से), सुधा, माधुरी, विशाल भारत, इंस श्रीर जागरण की फाइलें दी श्रीर दीं द्विवेदी जी की कुछ पुस्तकें। नया-नया उत्साह था। द्विवेदी-अभिनंदन-प्रंथ का "अद्भांजिल" शोर्पक अंश में उसी दिन पढ़ गया और दो लेख--पूर्वरूप श्रोर मंत्रिप्त जीवनचरित्र-लिख डाले। शाम को मैंने वे लेख मास्टर साहव को दिखाये। उन्होंने संशोधन किया। मैंने बड़ी उत्सुकता से पृत्रा—ठीक हैं ? उन्होंने मुफे उत्ताहित करते हुए कहा—हाँ, ठीक ही हैं, पर इतनी जल्दी करने से काम नहीं चलेगा। इससे मेरा उत्साह ही वढ़ा। हिवेदी जी की पुस्तकें मैंने मँगाई; कुछ दिन के लिए, हिवेदी जी की अनुमति से, नागरी-प्रचारिएो सभा, काशी में जाकर द्विवेदी जी का पत्र-ज्यवहार देखा श्रौर तव फिर से "मीमांसा" में हाथ लगाया। मुफे ठीक याद है कि जिस दिन मैंने यह पुस्तक लिखनी चारंम की थी, वह जन्माष्टमी का चत्यंत शुभ चौर पुनीत दिवस था। आज उसी परमात्मा की असीम अनुकंपा से, लगभग तीन वर्ष के परिश्रम के वाद, मैं इसे तैयार कर सका हूँ। इसके लिए मसाला जुटाने में, आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी, मैंने यथाशक्ति परिश्रम किया और मिले हुए मैटर का पूर्ण उपयोग करने की चेष्टा भी की, फिर भी यह पुस्तक जैसी होनी चाहिए थी, वैसी न हो सकी। इसका प्रधान कारण मेरी अयोग्यता है, मैटर की कमी नहीं।

इस संबंध में मैंने आद्रणीय वावू कालिदास जी कपूर, एम० ए०, एल० टी०, से वात की थी। इसी सिलसिले में उन्होंने द्विवेदी जी का नाम लिया और वोले—इनके विषय में कुछ लिख सकी तो लिखो; इसकी बड़ी जरूरत है।

मेंने स्वीकार कर लिया। मास्टर साहव ने मुफे द्विवेदी-श्रभिनंदन-यंथ दिया, सरस्त्रती (सन् १६१⊏ से), सुधा, माधुरी, विशाल भारत, इंस श्रीर जागरण की फाइलें दीं श्रीर दीं द्विवेदी जी को कुछ पुस्तकें। नया-नया उत्साह था। द्विवेदी-अभिनंदन-प्रंथ का ''अद्भांजिल" शोर्पक अंश में उसी दिन पढ़ गया और दो लेख-पूर्वरूप श्रीर मंचिप्र जीवनचरित्र-लिख डाले। शाम को मैंने वे लेख मास्टर साहव को दिखाये। उन्होंने मंशोधन किया। मैंने वड़ी उत्सुकता से पृत्रा—ठीक हैं ? उन्होंने मुफे उत्साहित करते हुए कहा—हाँ, ठीक ही हैं, पर इतनी जल्दी करने से काम नहीं चलेगा। इससे मेरा उत्साह ही वढ़ा। डिवेदी जी की पुस्तकें मैंने मँगाई; कुछ दिन के लिए, दिवेदी जी की अनुमित से, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी में जाकर द्विवेदी जी का पत्र-च्यवहार देखा खौर तत्र फिर से "मीमांसा" में हाथ लगाया। मुफे ठीक याद है कि जिस दिन मैंने यह पुस्तक लिखनी त्यारंभ की थी, वह जन्माष्टमी का अत्यंत शुभ और पुनीत दिवस था। त्राज उसी परमात्मा की त्रसीम अनुकंपा से, लगभग तीन वर्ष के परिश्रम के बाद, मैं इसे तैयार कर सका हूँ। इसके लिए मसाला जुटाने में, आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी, मैंने यथाराक्ति परिश्रम किया और मिले हुए मैटर का पूर्ण उपयोग करने की चेष्टा भी की, फिर भी यह पुस्तक जैसी होनी चाहिए थी, वैसी न हो सकी । इसका प्रधान कारण मेरी अयोग्यता है, मैटर की कमी नहीं।

उत्साहित किया है। पंडित रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-संपादक) ने मेरे लेखों को माधुरी में प्रकाशित कर, समय-समय पर मुक्ते प्रोत्साहित करके छोर परामर्श देकर जो अमृल्य सहा-यता दो हैं तथा पंडित देवीदत्त जी शुक्त (सरस्वती-संपादक) और बावू कालिदास जी कपूर ने मुक्त पर जो कृपा रक्खी हैं उसके लिए में केवल इतना कह सकता हूँ कि यदि ये महानुभाव मुक्त पर ऐसी कृपा न रखते तो शायद 'मीमांसा" कभी तैयार ही न हो सकती।

१—===३६ रानीकटरा, लखनऊ

प्रेमनारायण टंडन

उत्साहित किया है। पंडित रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-संपादक) ने मेरे लेखों को माधुरी में प्रकाशित कर, समय-समय पर मुक्ते प्रोत्साहित करके छोर परामर्श देकर जो अमूल्य सहा-यता हो है तथा पंडित देवीदत्त जी शुक्त (सरस्वती-संपादक) छोर वाच् कालिदास जी कपूर ने मुक्त पर जो कृपा रक्सी है उसके लिए में केवल इतना कह सकता हूँ कि यदि ये महानुभाव मुक्त पर ऐसी कृपा न रखते तो शायद 'मीमांसा" कभी तैयार ही न हो सकती।

१—===३६ रानीकटरा, लखनऊ

प्रेमनारायण टंडन

द्विवेदी-मोसांसा

(स्वर्गीय आचार्य पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की हिन्दी-सेवा की परिचयात्मक आलोचना।)

लेखक, प्रेमनारायण टंडन

वी० ए०, विशारदे,

हिंदी-अध्यापक, कालीचरन हाईस्कृल, लखनऊ।

Same of the same

द्विवेदी-मीमांसा

(स्वर्गीय आचार्य पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की हिन्दी-सेवा की परिचयात्मक आलोचना।)

लेखक, प्रेमनारायण टंडन

वी० ए०, विशारदे,

हिंदी-अध्यापक, कालीचरन हाईस्कूल, लखनऊ।

विषयानुक्रमिशका

विष्य	₹			ৰ্ম
पूर्वरूप	•••	***	4,	१
ं गद्य की दशा	ì ,		•••	۱ ۶
पद्य		***	٠,	३
छन्द श्रौर काव्यां	विपय	•••	'	8
साहित्यिक श्रंग	•			४
जन्म, शिक्षा श्रीर साहि	त्य-प्रवेश	***		હ
हिन्दी-पत्रों का संक्षिप्त				१४
सरस्वती में विविध विप	य ',			१९
लेखकनिर्माण	• • •			३१
सम्पादन-कला श्रीर परि	अम ; [:]			४६
एक संशोधित लेख	•••		•••	५⊏
भाषा-सुधार-कार्य	***	•••		६⊏
समालोचना				C 0
प्रवृत्ति, उदेः	र्य और चादर्श	٠		८ ३
. समालोचना		•••		९१
(१) संस्कृत	ग्रन्थों की आली	चना ,	•••	९१
	पुस्तकों की आल			९४
	ु ना-शैली	•••		९६
• दूसरों वे	के विचार			१०५
	श्रौर समीक्षा: -	***	•••	१११
निवन्ध श्रीर ग्रन्थ	**	•••	•••	११६
पुस्तकें		***	•••	१२९
•				

विषयानुक्रमणिका

विषय		,		নূম
पूर्वरूप	•••	***	4,	8
ं गद्य की दशा	1	···.	•••	ነ የ
पद्य	•••	***	•••	३
छुन्द श्रौर काव्य	विपय	•••		४
साहित्यिक ऋंग	*			४
जन्म, शिक्षा श्रौर साहि	त्य-प्रवेश	• • •	•••	હ
हिन्दी-पत्रों का संक्षिप्त	इतिहास	•••		१४
सरस्वती में विविध विप	य (१९
लेखकनिर्माण			***	३१
सम्पादन-कला श्रीर परि	रेश्रम 🏃	•••		४६
एक संशोधित लेख	•••		•••	प्रद
भाषा-सुधार-कार्य	• • •	•••		६८
समालोचना				Co.
प्रवृत्ति, उद्दे	श्य और याद	र्श 🖰		⊏३
. समालोचना		• • •	•••	९१
. (१) संस्कृत	-ग्रन्थों की अ	।लोचना ,		९१
(२) हिन्दी-	पुस्तकों की व	यालोचना .	• •	९४
	उ ाना-शैली	•••	•••	९६
दूसरों	के विचार	•••	•••	१०५
•	श्रौर समीक्षा			१११
निवन्ध और ग्रन्थ		7,		११६
पस्तकें			•••	१२९

विषय			1		नृष्ठ
	संग्रह		•••		२५⊏
	सपालता	का रहस्य	• • •	• • •	રપૂદ
भारतीयता का	भाव	•••		•••	२६२
सम्मान			***		२७३
महत्त्व			•••	•••	२८०

, (३)

विपय					पृष्ठ
	संग्रह		•		२५८
	सपलता	का रहस्य	•••	•••	२५६
भारतीयता का	भाव	•••		***	२६२
सम्मान			•••	•••	२७३
महत्त्व					र⊏०

यही एक ऐसी भाषा थी जिसे भारत के समस्त पानों के निवासी थोड़ा-बहुत समम सकते थे। भारतीय सुधारकों के पूर्ववर्ता व नमकाजीन ईमाई मिशनरी भी इसी कारण हिन्ही में ही अपनी पुनवें छपाने थे और खारस्भ में सरकार ने भी हिन्दुस्तानियों श्रीर गोरों में रहत-बच्च बड़ाने के लिए हिन्ही का ही सहारा पकड़ा था। इन सब प्रचर्नों का सुपरिणाम, जो प्रायः पुगाहिर् न्याय से एका था, यह हुआ कि हिन्दी-भाषा का प्रचार जनता में पहले की व्यवेदा गुड़ प्रधिक है। गया 'वार भारतेन्द्र बाय हरिष्ट्यन्द्र (संयत् १६०७-१६४१) अपने वल-यत के नाथ हिन्दी-भाषा को श्रपनान का, और उसी में श्रपने भाव प्रकट करने का ब्यादर्श जनता के मामने रख सके। इन लोगों ने धाँगरेकी श्रीर वँगला से प्रभावित होकर हिन्दीनाथ में भी काही सुधार किये धौर इन भाषात्रों के खनेक नाटकों धौर उपन्यासों का धनुवाद करके तथा ध्यतिक मौलिक पुरवकें रचकर हिन्दी-भाषा की श्रीबृद्धि की । बँगला खौर खँगरेजी के साहचर्य के दो स्पष्ट प्रभाव हिन्टी गहा पर पह —

(१) भाषा में शिष्टता श्रीर कामलवा श्रागई श्रीर उसकी व्यंजना-शक्ति यह गई।

(२) र्र्जनरेजी के विराम-चिहों का थोड़ा-बहुत प्रयोग होने लगा।

इसका यह फल हुआ कि भाषा सफ्ट, मंगठित और सुनभी हुई होगई। फिर भी भाषा में ज्याकरण-सन्वन्धी होप वने रहे और उसके मप में भी काफी श्रस्थिरता और असंयमता जलती रही।

पग्न

यह तो हुई गय की वात ! पय की दशा भी लगभग ऐसी ही थी; यदाप उसका कतेवर श्रपंताकृत श्रधिक उन्नति कर रहा

यही एक ऐसी भाषा थी जिसे भारत के समस्त प्रान्तों के निवासी थोड़ा-बहुत सममा सकते थे। भारतीय सुधारकों के पूर्ववर्ती व समकातीन ईमाई गिरानरी भी इसी कारण हिन्दी में ही अपनी पुस्तकें छपाते थे। फीर फ्रारस्भ में सरकार ने भी हिन्दुस्तानियों श्रीर गोरों में रहत-बच्न बढ़ाने के लिए हिन्ही का भी सहारा पकड़ा था । इन सब प्रयद्यों का सुपरिणाम, जो प्राय: पुरणाहर न्याय से एका था, यह हुआ कि हिन्दी-भाषा का प्रचार जनता में पहने की व्यवेद्धा कुछ व्यधिक है। गया व्यार भारतेन्द्र बाव हरिश्चन्द्र (संबन् १६०७-१६४१) अपमे वृत्त-बत्त के नाथ हिन्दी-भाषा को श्रपनाने का, श्रीर उसी में श्रयंगे भाव प्रफट करने का व्यादर्श जनता के मामने रत्व सके। इन लोगों ने व्यंगरेकी श्रीर वँगला से प्रभावित होकर दिन्दीनाग में भी काफी सुभार किये श्रीर इन भाषाश्री के श्रनेक नाटकों श्रीर उपन्यासी का श्रनुवाद करके नथा श्रानेक मौतिक पुरुषें रचकर हिन्दी-भाषा की श्रीबृद्धि की । बँगला खौर खँगरेजी के साह्यर्थ्य के दो सप्ट प्रभाव हिन्दी गद्य पर पर 亡

(१) भाषा में शिष्टता र्खार कामलता खागई श्रीर उसकी

व्यंजना-शक्ति चढ़ गई।

(२) ख्राँगरेखी के विराम-चिहों का श्रोड़ा-बहुत प्रयोग होने लगा।

इसका यह फल हुआ कि भाषा सप्ट, मंगठित और सुनभी हुई होगई। फिर भी भाषा में ज्याकरण-सम्बन्धी दोष वने रहे श्रीर उसके मप में भी काफी श्रस्थिरना और श्रसंयमता चलनी रही।

पध

यह तो हुई गय की बात ! पग की दशा भी लगभग ऐसी ही थी; ययपि उसका कतेवर अपेनाकृत अधिक उन्नति कर रहा

कहानियों का एक प्रकार से जन्म हो नहीं हुआ। था। नाटकें। का भी अभाव ही था। इसके सम्बन्ध में स्वयं द्विवेदी जी े ने श्रपने नाट्य-शास्त्र में (२४ नवम्बर सन १६१०) लिखा है— "हिन्दी बोलनेवाले, हम लोग, लाभदायक श्रीर उपयोगी विषयें। की नाटक के रूप में लाकर उनके द्वारा मनोरंजन करने की श्रीर बहुत ही कम ध्यान देने हैं। यदि केई नाटक लिखता भी है तो वह प्रायः वेसिरपेर का लिखता है। भाग ऐसी लचर कि उसके अभिनय की बात तो दूर रही, उसे पुस्तक ही में देखकर दुःव होता है।" पत्र-पत्रिकायें रोज निकलती स्त्रीर वन्द्र होती थीं। उनमें संपादक लोग प्रायः अपने ही लेख भरा करते थे। हाँ, कभी कभी कुछ तत्त्व-हीन छौर चारलूसी से भरे लेख भी प्रकाशित हो जाते थे। कुछ लोग समालोचना का नाम प्रवस्य सुन चुके थे, पर वे उसके वास्तविक अर्थ, उद्देश्य और आदर्श सं अनिभन्न थे। उस समय हिन्दी के प्रमुख लेखकों ने श्रपने-श्रपने दल बना रक्खें थे, जिनमें 'परस्पर-प्रशंसा' की प्रवृत्ति बड़े जोरों पर थी। एक दलवाले दूसरे दल के लेखक की पुस्तक की बुरा अवस्य कहते थे, चाहे हुन्य में व उसे अच्छा ही मानते हों। उनकी समालोचना का लद्य लेखक होता था, पुस्तक नहीं। संचेप में उस समय न तो भाषा ही ज्याकरण-सम्मत और सुब्यवस्थित हो पाई थी छोर न उसके साहित्य के किसी छंग को पूर्त्ति को स्रोर हो लेखकों का ध्यान गया था। इतिहास, विज्ञान, समाजनीति, धर्मनीति, राजनीति और पुरातत्त्व श्रादि विषय साहित्य के श्रंतर्गत नहीं गिने जाते थे। लेखक प्रायः सभी निरंकुश थे। न उनकी कोई शैली थी, न प्रणाली।

उस समय भाषा की क्या दशा थी, इसका ठीक चित्र एक समाचार-पंत्र ने इन शब्दों में खींचा है—"उस समय हिन्दी हर तरह से दीन-हीन थी। उसके पास न अपना कोई इतिहास था,

कहानियों का एक प्रकार से जन्म हो नहीं हुआ था। नाटकों का भी अभाव ही था। इसके सम्बन्ध में स्वयं द्विवेदी जी े ने अपने नाट्य-शास्त्र में (२४ नवम्बर् सन १६१०) लिखा है— "हिन्दी वोलनेवाले, हम लोग, लाभदायक श्रोर उपयोगी विषयेां को नाटक के रूप में लाकर उनके द्वारा मनोरंजन करने की श्रोर बहुत ही कम ध्यान देने हैं। यदि कोई नाटक लिखता भी है तो वह प्रायः वेसिरपेर का लिखता है। भाषा ऐसी लचर कि उसके अभिनय को बात तो दूर रही, उसे पुस्तक ही में देखकर दुःख होता है।" पत्र-पत्रिकार्ये रोज निकलती ख्रौर वन्द्र होती थीं। उनमें संपादक लोग प्रायः अपने हो लेख भरा करते थे। हाँ, कभी कभी कुझ तत्त्व-हीन छौर चारलूसी से भरे लेख भी प्रकाशित हो जाते थे। कुड़ लोग समालोचना का नाम श्रवस्य सुन चुके थे, पर वे उसके वास्तविक ऋर्थ, उद्देश्य श्रीर श्रादर्श से श्रनिमज्ञ थे। उस समय हिन्दी के प्रमुख लेखकों ने श्रपने-अपने दल वना रक्खे थे, जिनमें 'परस्पर-प्रशंसा' की प्रवृत्ति वड़े जोरों पर थी। एक दलवाले दूसरे दल के लेखक की पुस्तक की छुरा अवश्य कहते थे, चाहे हुद्य में व उसे अच्छा ही मानते हों। उनकी समालोचना का लद्य लेखक होता था, पुस्तक नहीं। संचेप में उस समय न तो भाषा ही व्याकरण-सम्मत और सुत्र्यवस्थित हो पाई थी च्योर न उसके साहित्य के किसी ऋंग को पूर्त्ति को त्रोर हो लेखकों का ध्यान गया था। इतिहास, विज्ञान, समाजनीति, धर्मनीति, राजनीति और पुरातत्त्व आदि विषय साहित्य के त्र्यंतर्गत नहीं गिने जाते थे। लेखक प्रायः सभी निरंकुश थे। न उनकी कोई शैली थी, न प्रणाली।

उस समय भाषा की क्या दशा थी, इसका ठीक चित्र एक समाचार-पंत्र ने इन शब्दों में खींचा है—"उस समय हिन्दी हर तरह से दीन-हीन थी। उसके पास न अपना कोई इतिहास था,

जन्म, शिक्षा ख्रीर साहित्य-प्रवेश

"जिस व्यक्ति ने वीस वर्षी तक लगातार दस करोड़ हिन्दी-भाषी जनता का माहित्यिक अनुशामन किया वह वैसवाई की देहात का रहनेवाला एक सामान्य श्रेणी का ब्राह्मण था । अवध की नवाबी के पर्यवसान के बाद उसी प्रान्त के दौलतपुर नामक निर्धन त्राम में उसका जन्म हुन्ना था। श्रवध—जिस प्रदेश का वह निवासी:था-उस समय तक उजड़कर निरज्ञरता श्रीर दरिद्रता का केन्द्र वन चुका था। किन्तु प्राचीन स्मृतियाँ लुप्र नहीं होती, खतः प्राचीन संस्कार भी सुयोग पाकर कभी पुनर्जन्म ले लेते हैं। गङ्गा को जो धारा कमो अपनो वीचि-रचना के उपलदय में बाल्मोकि के कवि-कएड का सुवर्णदार मन्त करती होगी वह आज भी दोलतपुर के समीप से ही बहती है। वे श्राम्र-कानन जो निद्रागत पथिकों के मुखों में भी मधुर रस डालंते थे, त्राज भी दीलतपुर के त्र्यास-पास त्रपना वहीं उप-हार लिये हुए खड़े हैं। इन्हीं आब्र-काननों के परिपूर्ण यौवन के समय माधव मास में इला याम के एक कान्यकुरज्ज-कुल में शिश् महावीरप्रसाद ने सन् १८६४ ई० (सं० १६२ं१ वैशाख शुक्ल ४) को जन्म लिया। प्रसृतिगृह में उसकी जिह्ना पर सरस्वती का वीजमन्त्र श्रंकित कर दिया गया। मंत्र-विद्या सत्य सिद्ध हुई।"

द्विवेदी जी के पितासह संस्कृत के भारी विद्वान थे; पर असमय में ही देहात्रसान हो जाने से वे अपने पुत्रों को कुळ पढ़ा-लिखा नहीं सके थे; जिससे द्विवेदी जी के पिता

जन्म, शिक्षा स्रीर साहित्य-प्रवेश

''जिस व्यक्ति ने चीस वर्षी' तक लगातार दस करोड़ हिन्दी-भाषी जनना का माहित्यिक अनुशासन किया वह वैसवाई की देहात का रहनेवाला एक सामान्य श्रेणी का ब्राह्मण था । अवध की नवाबी के पर्यवसान के बाद उसी प्रान्त के दौलतपुर नामक निर्धन त्राम में उसका जन्म हुत्रा था। श्रवध—जिस प्रदेश का वह निवासी:था--उस समय तक उजड़कर निरत्तरता श्रीर दरिद्रता का केन्द्र वन चुका था। किन्तु प्राचीन स्मृतियाँ लुप्र नहीं होती, खतः प्राचीन संस्कार भी सुयोग पाकर कभी पुनर्जन्म ले लेते हैं। गहा की जो धारा कमी अपनो वीचि-रचना के उपलब्य में वाल्मोकि के कवि-कएड का सुवर्णहार मन करती होगी वह आज भी दौलतपुर के समीप से ही बहती है। वे श्राम्र-कानन जो निद्रागत पथिकों के मुखों में भी मधुर रस डालते थे, त्राज भी दीलतपुर के त्रास-पाम त्रपना वहीं उप-हार लिये हुए खड़े हैं। इन्हीं ऋाब्र-काननों के परिपूर्ण यौवन के समय माधव मास में इला त्राम के एक कान्यकुन्ज-कुल में शिश् महावीरप्रसाद ने सन् १८६४ ई० (सं० १६२१ वैशाख शुक्ल ४) को जन्म लिया। प्रसृतिगृह में उसकी जिह्या पर सरस्वती का वीजमन्त्र श्रंकित कर दिया गया। मंत्र-विद्या सत्य सिद्ध हुई।"

द्विवेदी जी के पितामह् संस्कृत के भारी 'विद्वान् थे; पर असमय में ही देहात्रसान हो जाने 'से वे अपने पुत्रों को कुळ पढ़ा-लिखा नहीं सके थे; जिससे द्विवेदी जी के पिता उधर बहुत चकर लगाने पड़े और समय-समय पर वरवई, नाग-पुर, अनुमेर और भाँसी में रहना पड़ा। हरदा, खंडवा, होशंगावाद और इटारसी में क्रम-क्रम से इनकी पदोन्नित होनी रही। प्रवीणता के कारण तत्कालीन आई० एम० आर० (इंडियन मिडिलेंड रेलवे) के ट्रैफ्कि मैनेजर श्री डव्ल्यू० बी० राइट ने इन्हें टेलीग्राफ इन्स्पेक्टर बनाकर भाँसी भेज दिया। इन्होंने वहाँ नई तरह का एक लाइन-क्रियर ईजाट करके अपनी अनोखी प्रतिसा का परिचय दिया। इसके वाद इन्होंने तारवर्की पर एक पुस्तक भी अँगरेजी में लिखी। इन दिनों कानपुर से इटारसी और आगरा से मानिकपुर तक की पूरी लाइन का तार-संबंधी काम ये देखते थे।

रेलवे में नौकरी करते हुए भी इनका श्रध्ययन वरावर जारी रहा। वंगालियों के साथ रहते हुए भाँसी में इन्होंने वँगला सीखी और इस प्रकार वे कई भाषाओं के जानकार हो गये।

साहित्य की श्रोर द्विवेदी जी का भुकाव श्रारंभ से ही था वे पिएडतों के गाँव के थे श्रोर से। भी उस गाँव के, जहाँ सुखदेव मिश्र जैसे रस-सिद्ध कि। रह चुके थे। मिश्र जी की किवताश्रों का प्रभाव द्विवेदी जी के वचपन तक उनके गाँव में ख़ब फैला हुश्रा था। इसके श्रातिरिक्त पंडित प्रतापनारायण मिश्र भी वैसवाड़े के ही थे श्रीर सज्जनकीर्ति-सुधाकर के सम्पादक पंडित वंशीधर वाजपेयी तो द्विवेदी जी के पड़ोसी ही थे। बंबई

^{*&#}x27; उस समय भला यह कौन जानता था कि एक दिन ये हिन्दीसाहित्य में भी नई तरह का लाइन छियर ईजाद करके सटैन के लिए अपने भक्तों के हृदयों में बस-जायेंगे।'

^{· †} इस वार्युमंडल का श्रसर दिवेदी जी पर पड़ हो चुका था।

उधर वहुत चकर लगाने पड़े और समय-समय पर वग्वई, नाग-पुर, अज़मेर और भाँसी में रहना पड़ा। हरदा, खंडवा, होशंगावाद और इटारसी में क्रम-क्रम से इनकी पदोन्नित होती रही। प्रवीणता के कारण तत्कालीन आई० एम० आर० (इंडियन मिडिलेंड रेलवे) के ट्रैिफ्क मैनेजर श्री डव्ल्यू० वी० राइट ने इन्हें टेलीयाफ इन्स्पेक्टर बनाकर भाँसी भेज दिया। इन्होंने वहाँ नई तरह का एक लाइन-क्रियर ईजाद करके अपनी अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया। इसके वाद इन्होंने तारवर्की पर एक पुस्तक भी अँगरेजी में लिखी। इन दिनों कानपुर से इटारसी और आगरा से मानिकपुर तक की पूरी लाइन का तार-संबंधी काम ये देखते थे।

रेलवे में नौकरी करते हुए भी इनका अध्ययन वरावर जारी रहा। वंगालियों के साथ रहते हुए फाँसी में इन्होंने वँगला सीखी और इस प्रकार वे कई भाषाओं के जानकार हो गये।

साहित्य की छोर द्विवेदी जी का मुकाव आरंभ से ही था वे पिएडतों के गाँव के थे और सो भी उस गाँव के, जहाँ सुखदेव मिश्र जेसे रस-सिद्ध किं रह चुके थे। मिश्र जी की कविताओं का प्रभाव द्विवेदी जी के वचपन तक उनके गाँव में खूब फैला हुआ था। इसके अतिरिक्त पंडित प्रतापनारायण मिश्र भी वैसवाड़े के ही थे और सज्जनकीर्ति-सुधाकर के सम्पादक पंडित वंशीधर वाजपेयी तो द्विवेदी जी के पड़ोसी ही थे। वंबई

^{*&#}x27; जस समय भला यह कौन जानता था कि एक दिन ये हिन्दी साहित्य में भी नई तरह का लाइन क्वियर ईजाद करके सदैन के लिए अपने भक्तों के हदयों में बस-जायेंगे।'

^{· †} इस वार्युमंडल का श्रसर द्विचेदी नी पर पड़ हो चुका था।

लगी थी। द्विवेदी जी उस ममय तक हिन्दी के अच्छे लेखक माने जा चुके थे। सरस्वती के ४-६ द्यंक प्रकाशित हो जाने पर भी जब उन्होंने उसके लिए कोई लेख न भेजा तव उसके प्रधान सम्पादक बाबू कार्तिकप्रसाद ने उनके पास यह पत्र लिखा—

> सरस्वती-संपादक-समिति-कार्यालय गढ़वासी टोला, वनारस सिटी, २६-६-९६००

-महाशय,

श्रभी तक श्रापने श्रपने किसी लेख से 'सरस्वती' को भूपित नहीं किया जिसके लिये सरस्वती की प्रार्थना है कि शींच जसकी सुधि लीजिये।

त्र्यापका— कार्तिकप्रसाद

द्विवेदी जी ही नहीं, द्विवेदी जी का भाग्य भी 'सरस्वती' की सुधि लेने के लिए जतावला वेठा था। धीरे-धीरे उसमें इनके 'लेख और कंवितायें प्रकाशित होने लगीं और 'सरस्वती' से उनका सम्बन्ध बढ़ने लगा। उस समय वे फाँसी में डी० टी० एस० (डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपिंटेंडेंट) के आफ़िस में चीफ कर्क थे। इसी। सिलसिले में उनका परिचय एक ऐसे महापुरुष से हुआ जिनके सम्पर्क और सहयोग ने द्विवेदी जी के जीवन की दिशा ही बदल दी। ये थे इंडियन प्रेम के स्वामी। वावृ चिन्तामिण चोप।

लगी थी। द्विवेदी जी उस ममय तक हिन्दी के अच्छे लेखक माने जा चुके थे। सरस्वती के ४-६ अंक प्रकाशित हो जाने पर भी जब उन्होंने उसके लिए कोई लेख न भेजा तब उसके प्रधान सम्पादक बाबू कार्तिकप्रसाद ने उनके पास यह पत्र लिखा—

> सरस्वती-संपादक-समिति-कार्यालय गढ़वासी टोला, वनारस सिटी, २६-६-१६००

-महाशय,

श्रभी तक श्रापने श्रपने किसी लेख से 'सरस्वती' को भूषित नहीं किया जिसके लिये सरस्वती की प्रार्थना है कि शीव जसकी सुधि लीजिये।

त्रापका— कार्तिकप्रसाद

की सुधि लेने के लिए उतावला चैठा था। धीरे-धीरे उसमें इनके 'लेख और कंवितायें प्रकाशित होने लगीं और 'सरस्वती' से उनका सम्बन्ध बढ़ने लगा। उस समय वे भाँसी में डी० टी० एस० (डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपिरेटेंडेंट) के आफ़िस में चीफ़ कर्क थे। इसी। सिलसिले में उनका परिचय एक ऐसे महापुरुप से हुआ जिनके सम्पर्क और सहयोग ने द्विवेदी जी के जीवन की दिशा ही

बर्ल दी। ये थे इंडियन प्रेम के स्वामी वाव विन्तामिए चोप।

द्विवेदी जी ही नहीं, द्विवेदी जी का भाग्य भी 'सरस्वती'

विषय में पूछ-ताँछ करते थे। फिर कुछ गुजराती, वँगला, संस्कृत-पत्रिकाओं का अवलोकन करते और उसके वाद थोड़ी देर ख़ुद भी लिखते तथा 'सरस्वती' के लेखों का संपादन करते। १० वजे के करीब भोजन करके दक्षर जाते। वहाँ जो सिर मुकाया तो १ वजे तक ढेर की ढेर फाइलों का साफ करके तब २ वजे के क़रीब उठकर कुछ जलपान किया करते। लौटकर आँगरेजी अखबार अवलोकन करते और जो काम आता जाता उसे समाप्त करते। चार-पाँच वजे के क़रीब घर आकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर दरवाजे पर बैठ जाते। जो लोग आते उनसे वार्तालाप होता। किसी को नेक सलाह देना, किसी की जरूरत पूरी कराने की चिन्ता करना—चंटे डेढ़ घंटे यही दिलबहलाब होता। इसके घाद फिर किताबों का अवलोकन करके ६-१० वजे तक विस्तर पर चले जाते।

इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गई जिसने द्विवेदी जी को पूर्णतया साहित्य के त्रेत्र में लाकर रख दिया। पुराने डी॰ टी॰ एस॰ (डिस्ट्रिक्ट ट्रेफ़िक सुपिटेंडेंट) की वदली होने पर उनकी जगह जो नये साहब आये उनसे और द्विवेदी जी से एक दिन कहा-सुनी हो गई। स्वाभिमानी तो द्विवेदी जी थे ही; आपने रेलवे की १४०) की नौकरी पर लात मार दी और आकर कानपुर के पास जुही में रहने लगे और वहीं से 'सरस्वती' का संपादन करने लगे।

विषय में पूछ-ताँछ करते थे। फिर कुछ गुजराती, वँगला, संस्कृत-पत्रिकाओं का अवलोकन करते और उसके वाद थोड़ी देर खुद भी लिखते तथा 'सरस्वती' के लेखों का संपादन करते। १० वजे के क़रीब भोजन करके दक़र जाते। वहाँ जो सिर भुकाया तो १ वजे तक ढेर की ढेर फाइलों के। साफ करके तब २ वजे के क़रीब उठकर कुछ जलपान किया करते। लौटकर अँगरेजी अख़बार अवलोकन करते और जो काम आता जाता उसे समाप्त करते। चार-पाँच वजे के क़रीब घर आकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर दरवाजे पर बैठ जाते। जो लोग आते उनसे बार्जालाप होता। किसी को नेक सलाह देना, किसी की जरूरत पूरी कराने की चिन्ता करना—घंटे डेढ़ घंटे यही दिलबहलाब होता। इसके वाद फिर किताबों का अवलोकन करके ६-१० वजे तक विस्तर पर चले जाते।

इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गई जिसने द्विचेदी जी को पूर्णतया साहित्य के चेत्र में लाकर रख दिया। पुराने डी॰ टी॰ एस॰ (डिस्ट्रिक्ट ट्रेफ़िक सुपिटेंडेंडेंट) की वदली होने पर उनकी जगह जो नये साहब आये उनसे और द्विचेदी जी से एक दिन कहा-सुनी हो गई। स्वाभिमानी तो द्विचेदी जी थे ही; आपने रेलवे की १४०) की नौकरी पर लात मार दी और आकर कानपुर के पास जुही में रहने लगे और वहीं से 'सरस्वती' का संपादन करने लगे।

सुधा' के। ही प्रसिद्धि मिली। सरकार ने भी धन और पद हारा भारतेन्द्र की सेवाओं का मान किया। परन्तु जब बाबू हरिहनन्द्र राजनीतिक गामलों में टीका-टिप्पणी फरने लगे नव सरकार ने सहायता बन्द्र कर दी। 'श्रिभिमानी हरिनन्द्र' इससे ह्वोत्साह नहीं हुए श्रीर 'कविबचन-सुभा' के। सुद्ध समय नक प्रकाशित करते रहे। सन १८८४ में यह पत्रिका भी बन्द हो। गई।

भागतेन्द्र हरिश्चन्द्र के पित्रका-प्रकाशन-सम्बन्धी इस सद्योग का एक सहस्वपूर्ण परिणाम यह दृखा कि हिन्ही के लेखकों का एक श्रन्छा सङ्ग स्थापित हो गया। भागतेन्द्र की हक्ता स्थोर उनके स्थाभिमान ने उन लेखकों के हद्द्य में हिन्दी-भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। श्रतः उन लेखकों का भी पत्र-पत्रिकार्ये निकालने का शीक हुआ स्थार भारतेन्द्र के जीवन-काल में ही हिन्दी में २०-२४ पत्र प्रकाशित होने लगे। इनमें से कुछ पत्र-पत्रिकार्यो स्थीर उनके संपादकों के नाम इस प्रकार हैं—

पत्र-पत्रिका का नाम	स्याः	प	संपादक	म्थान
(१) श्रलमोड़ा-श्रखवार	सन	१८७१	श्री सदानंद	मालचीय, श्रलमोड़ा
(२) हिंदी-दीप्ति-प्रकारा	+5	?=s=	्,, कार्तिकप्रस	ाद ग्वत्री
(३) विहार-बंधु	33	१स७२	्र, केशवराम ३	मृह, विहार
(४) मदादर्श	1)	१८७४	्र, निवासदार	
(४) काशी-पत्रिका	77	१०५	ु, लच्मीशंकर	: सिश्र,
			ग्म०	ए०, काशी
(६) भारत-वंधु	,, ,	१८७६	्र, तोताराम,	श्रलीगढ़
(७) भारत-मित्र	55	१५७७	,, रुद्रदत्त,	कलकत्ता
(二) मित्र-विलास	35	55 ,	,, कन्हेयाला	न, लाहीर

सुधा' के। ही प्रसिद्धि मिली। सरकार ने भी धन छीर पर हारा भारतेन्द्र की सेवाओं का मान किया। परन्तु जब बाबू हरिहनन्द्र राजनेतिक मानलों में टीका-टिप्पणी करने लगे नव सरकार ने सहायता बन्द कर दी। 'छभिमानी हरिवन्द,' इससे ह्नोत्साह नहीं हुए छोर 'कविवचन-सुधा' के। युद्ध समय वक प्रकाशित करते रहे। सन १==४ में यह पत्रिका भी बन्द हो। गई।

भागतेन्दु हरिरचन्द्र के पित्रका-प्रकाशन-सग्वन्धी इस सद्वोग का एक महत्त्वपूर्ण पिरणाम यह दृष्ट्या कि हिन्दी के लेखकों का एक श्रन्द्धाः सङ्घ स्थापित हा गया। भागतेन्द्रु की हद्दरा चौर उनके स्वाभिमान ने उन लेखकों के हद्द्य में हिन्दी-भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। प्रतः इन लेखकों का भी पत्र-पित्रकार्ये निकालने का शीक हुत्या चौर भारतेन्द्रु के जीवन-काल में ही हिन्दी में २०-२४ पत्र प्रकाशित होने लगे। इनमें से कुछ पत्र-पत्रिकार्थो श्रीर उनके संपादकों के नाम इस प्रकार हैं—

पत्र-पत्रिका का नाम समय संपादक म्थान (१) श्रलमोड़ा-श्रखवार सन १८७१ श्री सदानंद मालबीय, श्रलमोड़ा ,, कार्तिकप्रसाद स्वत्री (२) हिंदी-दीमि-प्रकारा ?=5= (३) विहार-बंधु १८७२ ,, केशवराम भट्ट, विहार 33 ,, निवासदास, दिल्ली (४) मदादर्श 150% 1) ,, लच्मीशंकर मिश्र, (५) काशी-पत्रिका १८७६ 21 एम० ए०, काशी ,, तोताराम, श्रलीगढ़ ,, ১ গলতহ (६) भारत-वंधु (७) भारत-मित्र ,, रुद्रदत्त, कलकत्ता १५७७

"

"

(=) मित्र-विलास

,, कन्हेयालाल, लाहोर

त्रादि त्रनेक पत्र श्रीर भी निकल्ते थे। पर इनमें से अधिकांश शीव ही बंद हो गये।

इन पत्र-पित्रकाओं के प्रकाशित होने से इतना लाभ अवश्य दुश्चा कि लोग हिन्दी की सेवा की श्रीर ध्यान देने लगे। परन्तु भारतेन्द्र-सरीखे उत्साही लेखकों के पश्चान हिन्दी की दशा किर . डाबाँडोल हा चला। लोग उर्द् को श्रयनाने लगे; उसी की पुस्तकें खपती श्रीर विकती थीं—िहन्दी की कभी एक-श्राथ पुस्तक छप गई तो छप गई। एक चार किसी ने स्वर्गीय राथ बहादुर लाला बैजनाथ से पृद्धा था—श्राप हिन्दी नो गृद्ध लिख सकते हैं। किर श्रयनी पुस्तकें श्रिधकतर उर्द् में ही क्यों छपवाते हैं? उन्होंने उत्तर दिया—िहन्दी की पुस्तकों की कोई बात भी पृद्धता है? 'विधवा-विवाह' पर लिखी हुई हिन्दी की मेरी पुस्तक की प्रतियाँ श्राज भी मेरे पास पड़ी हुई हैं, पर उनका जो उत्था उर्दू में निकला था उसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित है। चुका है।

हिन्दी के लिए वास्तव में यह वड़े संकट का समय था; पर भाग्य ने साथ दिया। सन् १८६३ में कुछ हिन्दी-अप्तयों ने, जिनमें वाबू स्यामसुन्दरदास श्रीर पंडित रामनारायण मिश्र मुख्य थे. काशी में नागरी-प्रचारिसी सभा की स्थानना की। इस संस्था ने हिन्दी-प्रचार का कार्य वड़े जोर से करना श्रारंभ किया; शीव्र ही बहुत से पढ़े-लिखे लोग इसके कार्यों की प्रशंसा करने लगे। इस संस्था के कार्य-कत्तांश्रों के प्रयत्न करने पर सन् १६०० में सरकारी कचहरियां में नागरी का प्रवेश हो गया।

इसी साल इंडियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय वाबू चिन्तामीए घोप ने 'सरस्वती' नाम की पत्रिका की काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से जन्म दिया। इस पत्रिका का पहला श्रंक फा॰ २ श्रादि श्रितेक पत्र श्रीर भी निकल्ते थे। पर इनमें से अधिकांश शीव ही बंद हो गये।

इन पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशित होने से इतना लाभ अवश्य हुआ कि लोग हिन्दी की सेवा की और ध्यान देने लगे। परन्तु भारतेन्दु-सर्राखे उत्साही लेखकों के परचान् हिन्दी की दशा किर हावाँहोल है। चला। लोग उर्दू की अपनाने लगे; उसी की पुस्तकें खपती और विकती थीं—हिन्दी की कभी एक-आध पुस्तक छप गई तो छप गई। एक बार किसी ने स्वर्गीय रात्र बहादुर लाला वैजनाथ से पृद्धा था—आप हिन्दी नो ज़्द्र लिख सकते हैं। फिर अपनी पुस्तकें अधिकतर उर्दू में ही क्यों छपवाते हैं? उन्होंने उत्तर दिया—हिन्दी की पुस्तकों की काई बात भी पृद्धता है? 'विधवा-विवाह' पर लिखी हुई हिन्दी की मेरी पुस्तक की प्रतियाँ आज भी मेरे पास पड़ी हुई हैं, पर उनका जो उत्था उर्दू में निकला था उसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित है। चुका है।

हिन्दी के लिए चास्तव में यह बड़े संकट का समय था; पर भाग्य नें साथ दिया। सन् १८६३ में कुछ हिन्दी-अपयों ने, जिनमें वाबू स्थामखुन्द्रदास छोंग पंडित रामनारायण मिश्र मुख्य थे. काशी में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थानना की। इस संस्था ने हिन्दी-प्रचार का कार्य बड़े जोर से करना छारंभ किया; शीव्र ही बहुत से पढ़े-लिखे लोग इसके कार्यों की प्रशंसा करने लगे। इस संस्था के कार्य-कर्त्तां के प्रयक्ष करने पर सन् १६०० में सरकारी कवहरियां में नागरी का प्रवेश हो गया।

इसी साल इंडियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय वावू चिन्तामीए घोष ने 'सरस्वती' नाम की पत्रिका की काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से जन्म दिया। इस पत्रिका का पहला अंक फा॰ २

'सरस्वती' में विविध विषय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में पत्र-पित्रकाओं में प्रायः एक ही विषय की प्रधानता रहती थी। स्वयं भारतेन्द्र जी की 'कवि-वचन-सुधा' में प्राचीन किवयों का काव्य ही प्रकाशित होता था। देव का 'अष्ट्रयाम', चन्द्र का 'रासो', जायसी का 'पद्मावत', कवीर की साखियाँ, विहारी के दोहे आदि के ही प्रकाशन की ओर लोग दत्तचित्त थे। पर शीघ ही इस प्रथा का अंत हो गया। 'किव-वचन-सुधा' पाह्मिक होकर साप्ताहिक हो गई; 'हरिश्चन्द्र-मैगजीन' भी निकली। धीरे-धीरे इनमें समाज-नीति और धर्म-नीति पर भी लेख निकलने लगे। भारतेन्द्र जी का, कालान्तर में, ध्यान देश की दशा की ओर गया। अतः राजनीति पर भी लेख निकलने आरम्भ हुए। उनका सिद्धान्त-वाक्य यह था—

खल गगन सें सज्जन दुखी मित होहि, हिर पद मित रहे। ध्रपधमें छूटे स्वत्व निज भारत गहे कर-दुख वहें॥ बुघ तजिहें मत्सर, नारि-नर सम होंहि जग ध्रानंद ल हैं। तिज ब्राम कविता सुकविजन की असृत-वानी सव कहें॥

इन पंक्तियों के रेखांकित भागों पर ग़ौर करने से विदित होता है कि भारतेन्द्र जी के इस सिद्धान्त में राजनीति, समाज-नीति, धर्मनीति, सवकी चिन्ता है। वे शिक्तित समाज, श्राँगरेज-शासकों श्रीर पुरानी लकीर के फ़क़ीरों पर भी निडर होकर साफ़-साफ़ छींटे फेंका करते थे। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में भारतेन्द्र का 'पाँचवें पैग़म्बर', श्री ज्वालाप्रसाद की

'सरस्वती' में विविध विषय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः एक ही विषय की प्रधानता रहती थी। स्वयं भारतेन्द्र जी की किव-वचन-सुधा' में प्राचीन किवयों का काव्य ही प्रकाशित होता था। देव का 'अष्ट्रयाम', चन्द्र का 'रासो', जायसी का 'पद्मायत', कवीर की साखियाँ, विहारी के दोहे आदि के ही प्रकाशन की ओर लोग दत्तचित्त थे। पर शीव्र ही इस प्रथा का अंत हो गया। 'किव-वचन-सुधा' पाद्मिक होकर साप्ताहिक हो गई; 'हरिश्चन्द्र-मैगजीन' भी निकली। धीरेधीरे इनमें समाज-नीति और धर्म-नीति पर भी लेख निकलने लगे। भारतेन्द्र जी का, कालान्तर में, ध्यान देश की दशा की ओर गया। अतः राजनीति पर भी लेख निकलने आरम्भ हुए। उनका सिद्धान्त-चाक्य यह था—

स्रत गगन सें सज्जन दुखी मित होहि, हिर पद मित रहै। अपधमें छूटें स्वत्व निज भारत गहै कर-दुख वहैं॥ बुध तजिहें मत्सर, नारि-नर सम होंहि जग धानद ल हैं। तिज आम कविता सुकविजन की ध्रमृत-वानी सव कहै॥

इन पंक्तियों के रेखांकित भागों पर ग़ौर करने से विदित होता है कि भारतेन्द्र जी के इस सिद्धान्त में राजनीति, समाज-नीति, धर्मनीति, सबकी चिन्ता है। वे शिचित समाज, श्रॅगरेज-शासकों श्रौर पुरानी लकीर के फ़क़ीरों पर भी निडर होकर साफ़-साफ़ छींटे फेंका करते थे। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में भारतेन्द्र का 'पाँचवें पैग़म्बर', श्री ज्वालाप्रसाद की उक्तदोनों पत्रिकात्रों के वाद पिएडत प्रतापनारायण मिश्र के 'त्राह्मण' और वालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी-प्रदीप' का नंबर आता है। मिश्र जी ने अपने 'त्राह्मण' का उदेश 'हमारी आवश्यकता' शीर्षक लेख में इस प्रकार लिखा है—

"जी बहलाने के लेख हमारे पाठकों ने | यहुत से पढ़ लिये। यसिप इनमें भी बहुत सी समयोश्योगी शिला रहती है, पर वाग्-जाल में फँसी हुई हुँद निकालने-योग्य; अतः अब हमारा विचार है कि कभी कभी ऐनी बातें भी लिखा करें जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हों तथा हास्पपूर्ण न होके सीधी सीधी भाषा में हों। हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समम के छोड़ न दिया करें, तथा केवल पढ़ हो न दाला करें, बरंच उनके लिए तन से धन, से, छछ न हो सके तो वचन हो से यथावकारा कुछ करते भी रहें।"

मिश्र जी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि साहित्य-सेवा के साथ-साथ 'ब्राह्मण' का उद्देश्य जन-साधारण की प्रवृत्ति को हिंदी की छोर ज्याकर्षित करना था। मिश्र जी साहित्यिक उत्थान के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का निवा-रण भी चाहते थे। उन्होंने अनेक लेखों में समाज के दोपों का उल्लेख भी किया।

इसके विपरीत भट्ट जी का 'हिंदी-प्रदीप' एक साहित्यिक पत्र था उसमें कभी-कभी राजनीति के लेख भी छपा करते थे। हाँ, सामाजिक लेख कुछ कम होते थे। यह पत्र लगभग ३० वर्ष तक निकलता रहा। इसकी साहित्यिक सेवाओं के विषय में भट्ट जी ने स्वयं ही लिखा है:—

''इन बत्तीस साज की जिल्हों में कितने हो उत्तमोत्तम उपन्याप, नाटक, तथा धन्यान्य प्रवन्ध 'मरे पड़े हैं। वे यदि पुस्तकाकार छपा उक्तदोनों पत्रिकात्रों के वाद पिएडत प्रतापनारायण मिश्र के 'त्राह्मए' और वालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी-प्रदीप' का नंबर आता है। मिश्र जी ने अपने 'त्राह्मण' का उदेश 'हमारी आवश्यकता' शीर्षक लेख में इस प्रकार लिखा है—

"जी बहलाने के लेख हमारे पाठकों ने | बहुत से पड़ लिये। यद्यपि इनमें भी बहुत सी समयोश्ये। शि श्वा रहती है, पर वाग्-जाल में फँसी हुई हूँड निकालने योग्य; श्रतः श्रव हमारा विचार है कि कभी कभी ऐनी बातें भी लिखा करें जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हों तथा हास्पर्ण न है। के सीधी सीधी भाषा में हों। हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समस के छोड़ न दिया करें, तथा केवज पड़ ही न ढाला करें, बरंच उन के लिए तन से धन, से, कुछ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश कुछ करते भी रहें।"

मिश्र जी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि साहित्य-सेवा के साथ-साथ 'त्राह्मण' का उद्देश्य जन-साधारण की प्रवृत्ति को हिंदी की खोर खाकर्षित करना था। मिश्र जी साहित्यिक उत्थान के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का निवा-रण भी चाहते थे। उन्होंने खनेक लेखों में समाज के दोपों का उल्लेख भी किया।

इसके विपरीत भट्ट जी का 'हिंदी-प्रदीप' एक साहित्यिक पत्र था उसमें कभी-कभी राजनीति के लेख भी छपा करते थे। हाँ, सामाजिक लेख कुछ कम होते थे। यह पत्र लगभग ३० वर्ष तक निकलता रहा। इसकी साहित्यिक सेवाओं के विषय में भट्ट जी ने स्वयं ही लिखा है:—

''इन वत्तीस साज की जिल्दों में कितने ही उत्तमोत्तम उपन्याप, नाटक, तथा श्रन्थान्य प्रवन्ध भरे पड़े हैं। वे यदि पुस्तकाकार छपा

श्रॅंगरेजी, उर्दू, संस्कृत, फ़ारसी, आदि की अनिवाय शिज्ञा से शिचित होकर निकृत रहेथे; श्रीर कालेजों में ती शास्त्र इतने पढ़ाये जा रहे थे जितने स्वयं शुकदेव जी ने भी द पढ़े होंगे। यद्यपि यह बहुत ही जिज्ञली शिक्ता थी, परन्तु इससे जिस एकमात्र उत्कृष्ट वृत्ति का विकास हुआ वह थी परिचय की वृत्ति । उस परिच्य में प्रांडित्य चाहे न हो, परन्तु एक अभिन ज्ञता जो कभी व्यर्थ नहीं जाती, संचित की गई थी। उस समय यह परिवय की आकांज्ञा समाज में सर्वत्र हें खी जाती थी; अतः उसकी वृत्ति का भी विधान होने लगा। जो पत्र-पत्रिकायें अँगरेजी में निकली उनमें यद्यपि त्रावश्यक विषय-वैचित्र्य था, किन्तु जनता तक उनको पहुँच नहीं थी।" द्विवेदी जी को यह कमी बहुत अखरती थी। अब 'अरस्वती'-हारा उन्होंने इस कमी को पूरा करने का निश्चय किया। उद्देश्य की पूर्ति में एक वाधा यह थी कि जनता में पढ़ने का शौक बहुत ही कम था। अतः उन्होंने पहले अपने पाठकों की रुचि को हिंदीसाहित्य की ओर आकर्षित करने की चेष्टा की। 'सरस्वती' के एक अंक में उन्होंने लिखा-

''लेखों से 'सरस्वती' की सहायता करनेवाले सञ्जनों से पार्थना है कि अब वे अपने लेखों का पहले की अपेना अधिक रायक ग्रामे

की कृपा करें 🗥

उपर हम लिख चुके हैं कि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने भी एक बार अपने लेखकों से ऐसी ही प्रार्थना की थी। पर परिस्थिति ने उनका साथ न दिया और उन्हें नाहाण' को शीघ ही बन्द कर देना पड़ा। द्विचेदी जी इसे देख चुके थे, इसलिए सावधान थे। शीघ ही उन्होंने अपने लेखकों और पाठकों को अधिक गंभीर और दोस लेखों के प्रति अभिरुचि बढ़ाने के लिए उत्साहित किया और बढ़ती हुई उनीन शिका हारा शिक्ति नवयुवक पाठकों की

अँगरेजी, उदू, संस्कृत, फ़ारसी, आदि की अनिवार्य शिज्ञा से शिचित होकर निकृत रहे थे; और कालेजों में तो शास्त्र इतने पदाये जा रहे थे जितने स्वयं शुकदेव जी ने भी न पढ़े होंगे। यद्यपि यह वहुत ही छिछली शिचा थी, परन्तु इससे जिस एकमात्र उत्कृष्ट वृत्ति का विकास हुआ वह थी परिचय की वृत्ति । उस परिच्य में प्रांडित्य चाहे न हो, परन्तु एक अभिन इता जो कभी व्यर्थ नहीं जाती, संचित की गई थी। उस समय यह परिचय की आकांज्ञा समाज में सर्वत्र देखी जाती थी; अतः उसकी वृत्ति का भी विधान होने लगा। जो पत्र-पत्रिकायें ऋँगरेजी में निकलीं उनमें यद्यपि त्रावश्यक विषयु-वैचित्र्य था, किन्तु जनता तक उनको पहुँच नहीं थी।" द्विवेदी जी को यह कमी वहुत अखरती थी। अब 'सरस्वती'-द्वारा उन्होंने इस कमी को पूरा करने का निश्चय किया। उदेश्य की पूर्ति में एक वाधा यह थी कि जनता में पढ़ने का शौक बहुत ही कम था। अतः उन्होंने पहले अपने पाठकों की रुचि को हिंदीसाहित्य की ओर आकर्षित करने की चेष्टा की । 'सरस्वती' के एक ऋंक में उन्होंने लिखा—

''जेखों से 'सरस्वती' की सहायता करनेवाले सज्जनों से पार्थना है कि श्रव वे अपने लेखों का पहले की श्रपेता श्रधिक राचक जनाने की कृपा करें।''

उपर हम लिख चुके हैं कि पिएडत प्रतापनारायण मिश्र ने भी एक बार अपने लेखकों से ऐसी ही प्रार्थना की थी। पर परिस्थिति ने उनका साथ न दिया और उन्हें 'ब्राह्मण' को शीब ही बन्द कर देना पड़ा। द्विवेदीजी इसे देख चुके थे, इसलिए सावधान थे। शीब ही उन्होंने अपने लेखकों और पाठकों को अधिक गंभीर और ठोस लेखों के प्रति अभिकृति बढ़ाने के लिए उत्साहित किया और बढ़ती हुई नवीन शिचा द्वारा शिचित नवयुवक पाठकों की था कि अवसर पाते ही उन्होंने 'सरस्वती' को विभिन्न विषयों से विभूपित करके उसे विचार की अपेचा प्रचार की पत्रिका बनाया। संस्कृत-साहित्य, जीवन-चिरत, इतिहास, पुरातत्त्य, विज्ञान, अध्यात्म-विद्या, संपत्तिशास्त्र, हिन्दी-भाषा, शासन-पद्धति, शिचा, प्राचीन अनुसंधान, यात्रा-विवरण, नवीन अभ्युत्थान का परिचय, समाज-तत्त्व, दर्शन, संगीत, चित्रकता, नीति आदि अनेकानेक विषयों के लेख 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगे। संपादक के लिए तो इनमें से अधिकांश विषयों का ज्ञान वे आवश्यक भी समभते थे। वँगला के 'प्रवासी' में 'संपादकों के किन विषयों का ज्ञान होना चाहिए,' इस पर एक लेख छपा था। उसी की वातों का समर्थन करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा था—

"संपादकां के इन शांखों और इन विषयों का ज्ञान श्रवश्य होना चाहिए— इतिहास, संपत्तिशाख, राष्ट्रविज्ञान, समाज तस्व, व्यवस्था-विज्ञान (Jurisprudence), ध्रपराध-तस्व (Criminology), ध्रनेक लेकिक और वेपिक व्यापारों का संख्या-संबंधी शाख (Statistics), पौर और जानपद वग के श्रधिकार श्रीर कर्तव्य, श्रनेक देशों की शासन-प्रणाली, शांतिरचा और स्वास्थ्य-रचा का विवरण, शिचा पद्धति और कृषि-वाणिज्य का वृत्तांत। देश का स्वास्थ्य किस तरह सुधर सकता है, कृषि, शिच्य और वाणिज्य की उन्नति कैसे हो सकती है, शिचा का विस्तार और उत्कर्ष-साधन कैसे किया जा सकता है, किन उपायों के श्रवजन्यन से हम राष्ट्र-सम्बन्धी नाना प्रकार के श्रधिकार पा सकते हैं, सामाजिक कुरीतियों के किस प्रकार दूर कर सकते हैं— इत्यादि श्रनेक उपयोगी विषयों पर संपादकों को लेख लिखना घाहिए।" था कि अवसर पाते ही उन्होंने 'सरस्वती' को विभिन्न विपयों से विभूपित करके उसे विचार की अपेना प्रचार की पत्रिका बनाया। संस्कृत-साहित्य, जीवन-चरित, इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, अध्यात्म-विद्या, संपत्तिशास्त्र, हिन्दी-भाषा, शासन-पद्धित, शिन्ना, प्राचीन अनुसंधान, यात्रा-विवरण, नवीन अभ्युत्थान का परिचय, समाज-तत्त्व, दर्शन, संगीत, चित्रकला, नीति आदि अनेकानेक विषयों के लेख 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगे। संपादक के लिए तो इनमें से अधिकांश विषयों का ज्ञान वे आवश्यक भी समभते थे। वँगला के 'प्रवासी' में 'संपादकों के। किन विषयों का ज्ञान होना चाहिए,' इस पर एक लेख छपा था। उसी की वातों का समर्थन करते हुए दिवेदी जी ने लिखा था—

'संपादकां के। इन शांकों श्रीर इन विषयों का ज्ञान श्रवश्य होना चाहिए— इतिहास, संपत्तिशास्त्र, राष्ट्र-विज्ञान, समाज तस्त्र, व्यवस्था-विज्ञान (Jurisprudence), ध्रपराध-तस्त्र (Criminology), श्रनेक लैं। किक ध्रीर चेपियक व्यापारों का संख्या-संबंधी शास्त्र (Statistics), पौर श्रीर जानपद वग के श्रधिकार श्रीर कर्तव्य, श्रनेक देशों की शासन-प्रणाली, शांतिरचा श्रीर स्वास्थ्य-रचा का विवरण, शिचा पद्धति श्रीर कृपि-वाणिज्य का वृत्तांत। देश का स्वास्थ्य किस तरह सुधर सकता है, कृपि, शिच्य श्रीर वाणिज्य की उन्नति कैसे हो सकती है, शिचा का विस्तार श्रीर उत्कर्ष-साधन कैसे किया जा सकता है, किन उपायों के श्रवलम्बन से इम राष्ट्र-सम्बन्धी नाना प्रकार के श्रधिकार पा सकते हैं, सामाजिक क्रितीतयों के। किस प्रकार दूर कर सकते हैं— इत्यादि श्रनेक उपयोगी विषयों पर संपादकों के। लेख लिखना घाहिए।" भेजा उसका सारांश यह था कि अमुक-अमुक पुस्तकों में इस विषय की सुन्दर विवेचना की गई है। लेखक महाशय को चाहिए कि उन्हें एक वार पढ़ें और तव अपना लेख सुधार कर अकाशित करायें। ऐसा था द्विवेदी जी का विस्तृत अध्ययन, जिसका क़ायल सवको होना पड़ता था।

ऊपर जिन विषयों की सूची दी गई है उनमें अधिकांश बड़े शुष्क और गम्भीर हैं; फिर नये विषयों की ओर साधारण जनता का ध्यान आकर्षित करना आसान भी नहीं होता। द्विवेदी जी को इन सभी वातों का ध्यान रखना पड़ता था। अतः विषय को रोचक और शैली को सरल और स्पष्ट वनाने का वे सदा ही प्रयत्न किया करते थे। फलतः 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों में गम्भीरता के साथ साथ प्रचुर मात्रा में रोचकता, सरलता और माधुर्य भी मिलता था; ज्योतिप, वेदाङ्ग आदि रूखे-सूखे विषयों पर भी वड़े मनोमोहक और रोचक लेख उन्होंने लिखवाये। इससे 'सरस्वती' का जनता में वड़ा आदर होने लगा।

सामयिक विषयों का चयन और सङ्कलन करते समय वे एक आदर्शवादी सुधारक वन जाते थे। भारतवासी अपनी प्राचीन संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि की रचा करें, यही उनका उद्देश्य और आदर्श था। अतः वे अपने पाठकों को संसार में आज कैसी उन्नति हो रही हैं, कौन-कौन देश उन्नति के पथ पर अप्रसर हो रहे हैं, भारत की वास्तविक स्थिति और दशा क्या है, आदि वातों से पूर्ण परिचित रखना अपना कर्तव्य सममते थे। इसके लिए उन्हें वड़ा परिश्रम करना पड़ता था; प्रायः अँगरेजी, मराठी, वँगला, गुजराती आदि भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं की उल्लेखनीय टिप्पिएयों का अनुवाद वे सरस्वती?

भेजा उसका सारांश यह था कि असुक-असुक पुस्तकों में इस विषय की सुन्दर विवेचना की गई है। लेखक महाशय को चाहिए कि उन्हें एक वार पढ़ें और तब अपना लेख सुधार कर प्रकाशित करायें। ऐसा था द्विवेदी जी का विस्तृत अध्ययन, जिसका कायल सबको होना पड़ता था।

उपर जिन विषयों की सूची दी गई है उनमें अधिकांश बड़े शुष्क और गम्भीर हैं; फिर नये विषयों की ओर साधारण जनता का ध्यान आकर्षित करना आसान भी नहीं होता। द्विवेदी जी को इन सभी वातों का ध्यान रखना पड़ता था। अतः विषय को रोचक और शैली को सरल और स्पष्ट बनाने का वे सदा ही प्रयत्न किया करते थे। फलतः 'सरखती' में प्रकाशित लेखों में गम्भीरता के साथ साथ प्रचुर मात्रा में रोचकता, सरलता और माधुर्य भी मिलता था; ज्योतिप, वेदाङ्ग आदि रूखे-सूखे विषयों पर भी वड़े मनोमोहक और रोचक लेख उन्होंने लिखवाये। इससे 'सरस्वती' का जनता में वड़ा आदर होने लगा।

सामयिक विषयों का चयन और सङ्कलन करते समय वे एक आदर्शवादी सुधारक वन जाते थे। भारतवासी अपनी प्राचीन संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि की रचा करें, यही उनका उद्देश्य और आदर्श था। अतः वे अपने पाठकों को संसार में आज कैसी उन्नति हो रही हैं, कौन-कौन देश उन्नति के पथ पर अप्रसर हो रहे हैं, भारत की वास्तविक स्थिति और दशा क्या है, आदि वातों से पूर्ण परिचित रखना अपना कर्तव्य सममते थे। इसके लिए उन्हें वड़ा परिश्रम करना पड़ता था; प्रायः अँगरेजी, मराठी, वँगला, गुजराती आदि भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं की उल्लेखनीय टिप्पिएयों का अनुवाद वे सरस्वती

आरम्भ में ही हिन्दी-भाषा-भाषियों का हृदय-हार बन गई ते उसमें आरचर्य ही क्या है ? वास्तव में जनता उस समय ज्ञानार्जन करना चाहती थी। परिस्थित एक ही विषय के विशेषज्ञ को महत्त्व न देकर ऐसे व्यक्ति को चाहती थी जिसका ज्ञान विस्तृत हो। द्विवेदी जी इस वात को भली माँति समभ गये थे। अपर दिया हुआ उनका नोट इस वात का प्रमाण है। 'सरस्वती' की रीति-नीति स्थिर करते समय उन्होंने यही आदर्श सामने रक्त्वा। प्राचीन काल के सभी विषयों में पारंगत एक गुरू की तरह वे अपने पाठकों की ज्ञान-यृद्धि के साथ उनमें ज्ञानार्जन-यृत्ति भी उत्पन्न करना चाहते थे। कालांतर में उनकी यह आकांना पूर्ण हुई। 'सरस्वती' ने थोड़े ही समय में इतने स्नातक उत्पन्न कर दिये जितने शायद एक विश्वविद्यालय न पैदा कर सकता। ये स्नातक पदवीधारी न होने पर भी शायद ज्ञान में जिगरीवालों से कम न थे। 'सरस्वती' के इस स्नातक-निर्माण-कार्य की आलोचना करते हुए द्विवेदी-अभिनंदन प्रथ में लिखा गया है—

"यदि इस इस कसौटी पर 'सरस्वती' की परीचा करें कि उसके द्वारा छँगरेज़ी घ्रथवा दूसरी प्रांतीय भाषायें न जाननेवाले व्यक्ति कहाँ तक घ्रपने-घ्रपने देशवासी भिन्न-भाषा-भाषियों की शिचा-दीचा की समता कर सकते थे घौर कहाँ तक संसार की गति से परिचित न हो सकते थे—यदि इस यह पता जगा लें कि जो पाठक 'सरस्वती' की ही सहायता से घ्रपनी विद्या-बुद्धि चौर मितगित-निर्माण करते थे वे देश की पठित जनता के बीच किस रूप में दिखाई देते थे—तो इस उस पित्रका का बहुत कुछ यथार्थ मृल्य समक लें। इस बहुत प्रसन्नता के साथ देखते हैं कि 'सग्स्वती' की सामग्री इस विचार से यथेष्ट मात्रा में उन्नत थी चौर उसके पाठकें की (संभवतः कविता के। छोड़ कर) किसी विषय में संकुचित

आरम्भ में ही हिन्दी-भाषा-भाषियों का हृदय-हार बन गई ते। उसमें त्राश्चर्य ही क्या है ? वास्तव में जनता उस समय ज्ञानार्जन करना चाहती थी। परिस्थिति एक ही विपय के विशोपज्ञ को महत्त्व न देकर ऐसे व्यक्ति को चाहती थी जिसका ज्ञान विस्तृत हो। द्विवेदी जी इस वात को भली भाँति समभ गये थे। ऊपर दिया हुआ उनका नोट इस वात का प्रमाण है। 'सरस्वती' की रीति-नीति स्थिर करते समय उन्होंने यही त्रादर्श सामने रक्खा। प्राचीन काल के सभी विपयों में पारंगत एक गुरू की तरह वे अपने पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के साथ उनमें ज्ञानार्जन-वृत्ति भी उत्पन्न करना चाहते थे। कालांतर में उनकी यह त्राकांचा पूर्ण हुई। 'सरस्वती' ने थोड़े ही समय में इतने स्नातक उत्पन्न कर दिये जितने शायद एक विश्वविद्यालय न पैदा कर सकता। ये स्नातक पद्वीधारी न होने पर भी शायद ज्ञान में डिगरीवालों से कम न थे। 'सरस्वती' के इस स्नातक-निर्माण-कार्य की त्रालोचना करते हुए द्विवेदी-त्राभिनंदन यंथ में लिखा गया है—

''यदि हम इस कसोटी पर 'सरस्वती' की परीचा करें कि उसके हारा छँगरेज़ी अथवा दूसरी प्रांतीय भाषायें न जाननेवाले व्यक्ति कहाँ तक अपने-अपने देशवासी भिन्न-भाषा-भाषियों की शिचा-दीचा की समता कर सकते थे और कहाँ तक संसार की गित से परिचित न हो सकते थे—यदि हम यह पता लगा लें कि जो पाठक 'सरस्वती' की ही सहायता से अपनी विद्या-बुद्धि और मितगित-निर्माण करते थे वे देश की पठित जनता के बीच किस रूप में दिखाई देते थे—तो हम उस पत्रिका का बहुत कुछ यथार्थ मूल्य समक तें। हम बहुत प्रसन्नता के साथ देखते हैं कि 'सरस्वती' की सामग्री इस विचार से यथेष्ट मात्रा में उन्नत थी और उसके पाठकें। की (संभवतः कविता के। छे।इ कर) किसी विषय में संकृचित

लेखक-निर्भाग

हम पीछे लिख आये हैं कि वीसवीं राताब्दी के आरम्भ में हिन्दी-संसार में बड़ी थाँघली मची हुई थी। पत्र-पत्रिकायें निकलती थीं और उनमें मनमाने लेख मरे जाते थे। ये लेख कंभी तो मित्रों के होते थे और कभी सम्पादक महोदय के ही। पंत्र-संचालकों या सम्पादकों को जनता की रुचि की कुछ मी चिन्ता न थी; वे केवल खँगरेजी और बँगला की नकल करकें अपनी सम्पादक वनने की हवस पूरी करना चाहते थे।

'सरस्वती' का सम्पादन हाथ में त्राते ही द्विवेदी जी ने अनुभव किया कि विना योग्य लेखक और पाठक उत्पन्न किये हिन्दी की दशा में सुंधार होना श्रसम्भव है। उन दिनों हिन्दी लेखक थे भी इने-गिने । जो थे भी वे लकीर के फ़क़ीरों की तरह पुराने विषयों को ही कविता करने श्रौर गद्य लिखने के लिंए श्रंपनाते थे। भाषाशैली श्रौर व्याकरण पर तो कोंई ध्यान ही नं देता था। द्विवेदी जी ने इस अनियमितता को रोकने का भारी प्रयत्न किया श्रौर इस प्रकार के दोष-पूर्ण लेखों का प्रकाशन एकदंम वन्द कर दिया। लोग लेख भेजते थें। द्विवेदी जी उनके दोष दिखा कर लौटती डाक से ही वापस कर देते थे। इससे दक्षियानूसी लेखकों में वड़ा असंतोष फैल गया। द्विवेदी जी ने इसकी कुछ चिन्ता न की। जब तक ग्रंच्छे लेख न मिले, उन्होंने स्वयं इतना परिश्रम किया कि 'सरस्वती' का पूरा मेटर प्रायः ख़ुद ही तैयार करने लगे। वे विभिन्न विपयों का अध्ययन करके लिखते थे और कल्पित नाम से छपा देते थे। द्विवेदी जी की चौमुखी प्रतिभा इन दिनों देखने योग्य थी। वे कभी

लेखक-निर्भाग

हम पीछे लिख आये हैं कि वीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी-संसार में बड़ी धाँधली मची हुई थी। पत्र-पत्रिकायें निकलती थीं और उनमें मनमाने लेख भरे जाते थे। ये लेख कभी तो मित्रों के होते थे और कभी सम्पादक महोदय के ही। पत्र-संचालकों या सम्पादकों को जनता की रुचि की कुछ भी चिन्ता न थी; वे केशल झँगरेजी और बँगला की नकल करके अपनी सम्पादक बनने की हवस पूरी करना चाहते थे।

'सरस्वती' का सम्पादन हाथ में आते ही द्विवेदी जी ने अनुभव किया कि विना योग्य लेखक और पाठक उत्पन्न किये हिन्दी की दशा में सुधार होना असम्भव है। उन दिनों हिन्दी में लेखक थे भी इने-गिने। जो थे भी वे लकीर के फक़ीरों की तरह पुराने विषयों को ही कविता करने और गद्य लिखने के लिए अपनाते थे। भापाशैली और व्याकरण पर तो कोई ध्यान ही न देता था। द्विवेदी जी ने इस अनियमितता को रोकने का भारी प्रयत्न किया और इस प्रकार के दोष-पूर्ण लेखों का प्रकाशन एकदम वन्द कर दिया। लोग लेख भेजते थे। द्विवेदी जी उनके दोष दिखा कर लौटती डाक से ही वापस कर देते थे। इससे दिक्षयान्ती लेखकों में वड़ा असंतोष फैल गया। द्विवेदी जी ने इसकी कुछ चिन्ता न की। जब तक अच्छे लेख न मिले, उन्होंने स्वयं इतना परिश्रम किया कि 'सरस्वती' का पूरा मेटर प्रायः ख़ुद ही तैयार करने लगे। वे विभिन्न विपयों का अध्ययन करके लिखते थे और किन्पत नाम से छपा देते थे।

द्विवेदी जी की चौमुखी प्रतिभा इन दिनों देखने योग्य थी।वे कभी

श्रीर यदि लिखते भी थे तो श्राँगरेजी श्रादि श्रन्य भाषाश्रों में; हिन्दी में लिखने में 'शायद' वे श्रपना श्रपमान तक समभते थे। द्विवेदी जी सामयिक पत्रों में ऐसे लेखकों के लेख पढ़ा करते थे श्रीर प्रयत्न करते थे कि ये लेग हिन्दी में भी लिखें। यह प्रयत्न कभी कभी व्यतिरेक-युक्ति-साधन के रूप में भी देखा जाता था। एक ऐसे ही लेखक के विषय में वे लिखते हैं—

"हिन्दुस्तान रिव्यू का जुलाई १६१४ का र्थक इस समय हमारे सामने है। उसमें प्लेटो और शंकराचार्य के तत्त्व ज्ञान पर एक लम्बा बेख है। उसके लेखक है कोई डाक्टर प्रभुदत्त शाखी, आई० ई० एस॰ । ये शायद वही डाक्टर साइव हैं जो किसी समय पंजाब में थे भौर सरकारी वज़ीका पाकर श्रपना दार्श्वनिक श्रीर संस्कृत-ज्ञान पका करने के किए थारप गये थे। यदि यह सच है तो क्या आप पर उन जोगों का कुछ भी इक नहीं, जिनसे वसूल हुमा रुपया बग़ीके के रूप में पाकर थापने श्रपनी विद्वत्ता की सीमा बढ़ाई है ? क्या केवल अँगरेजीदाँ इज़रत ही इस देश में बसते हें ? क्या ये स्कूल, कालेल सीर वज़ीक्रे उन्हों के घर के रुपये से चलते और मिलते हैं? शाप जोगों के। श्रपने घर को भी ख़बर रखनी चाहिए। जिसके घर में चूहे डंड पेबते हों वह यदि जगतसेठ के गोदाम में गेई की गाहियाँ उत्तराने लाय तो कितने भारवर्य की बात है! हमारी यह शिकायत डाक्टर प्रभुदत शाखी से भी नहीं. उत्तरी भारत के भन्यान्य ढाक्टरों भीर घँगरेज़ीदाँ शास्त्रियों से भी है। आप लोग अपनी भाषा में भी उपयोगी लेख लिखने की दया करें। लिखना नहीं भाता तो सीखिए, अपना कर्तच्य पालन कीजिए।"

इन चेतावनियों से बहुत से लोग तो रास्ते पर आगये और हिन्दी में लिखने लगे, पर कुछ लोग ऐसे भी थे जो बात बात फा॰ ३ श्रीर यदि लिखते भी थे तो श्रॅंगरेजी श्रादि श्रन्य भाषाश्रों में; हिन्दी में लिखने में 'शायद' वे श्रपना श्रपमान तक सममते थे। द्विवेदी जी सामयिक पत्रों में ऐसे लेखकों के लेख पढ़ा करते थे श्रीर प्रयत्न करते थे कि ये लोग हिन्दी में भी लिखें। यह प्रयत्न कभी-कभी व्यतिरेक-युक्ति-साधन के रूप में भी देखा जाता था। एक ऐसे ही लेखक के विषय में वे लिखते हैं—

''हिन्दुस्तान रिन्यू का जुलाई १६१४ का शंक इस समय हमारे सामने है। उसमें प्लेटी और शंकराचार्य के तत्त्व-ज्ञान पर एक लम्बा बेख है। उसके लेखक है कोई डाक्टर प्रभुदत्त शासी, आई० ई० एस॰ । ये शायद वही डाक्टर साहव हैं जो किसी समय पंजाब में थे और सरकारी वज़ीफ़ा पाकर श्रपना दार्शनिक श्रीर संस्कृत-ज्ञान पका करने के जिए योरप गये थे। यदि यह सच है तो क्या आप पर उन लोगों का कुछ भी इक नहीं, जिनसे वसूल हुया रुपया वज्ञीके के रूप में पाकर थापने अपनी विद्वत्ता की सीमा बढ़ाई है ? क्या केवल थँगरेज़ीदाँ इज़रत ही इस देश में बसते हैं ? क्या ये स्कूल, काजेल श्रीर वज़ीफ़ों उन्हों के घर के रुपये से चबते श्रीर मिलते हैं? शाप बोगों के। अपने घर की भी ख़बर रखनी चाहिए। जिसके घर में चूहे ढंढ पेकते हों वह यदि जगतसेठ के गोदाम में गेहें की गादियाँ उत्तराने जाय तो कितने भारवर्ष की वात है! हमारी यह शिकायत डाक्टर प्रभुदत्त शाखी से भी नहीं, उत्तरी भारत के श्रन्यान्य ढाक्टरों श्रीर श्रॅंगरेंज़ीदाँ शास्त्रियों से भी है। श्राप लोग अपनी भाषा में भी उपयोगी लेख लिखने की दया करें। जिन्नना नहीं भाता तो सीखिषु, भ्रपना कर्तच्य पालन कीखिए।"

इन चेतावनियों से वहुत से लोग तो रास्ते पर श्रागये और हिन्दी में लिखने लगे, पर कुछ लोग ऐसे भी थे जो बान बान

फा० ३

साहित्य-सेवा से ऋपना हाथ खींच लिया था। ऋव उनको एक ऐसा व्यक्ति ललकार रहा था जिसने ऋपना तन, मन ऋौर धन मातृभाषा की उन्नति के लिए ऋर्पण कर दिया था। ऋतः मातृ-भाषा के प्रति उन्होंने अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया। द्विवेदी जी तो चाहते ही थे कि हिन्दी-भाषा-भाषी दूसरी भाषात्रों में पीछे लिखें, पहले अपनी मात्भाषा की यथोचित उन्नति कर लें। अतः उन्होंने इन लोगों का सहर्प स्वागत किया। परिणाम-स्वरूप डाक्टर महेन्द्रुलाल गर्ग, श्री शिवचन्द भारतीय, पंडित गौरीदत्त वाजपेथी, राय देवीप्रसाद पूर्ण, पंडित नाथूराम शर्मा, पंडित शुक-देव तिवारी, मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ, पंडित रामचरित उपाध्याय, कुँवर ह्नुमन्तसिंह, श्री गिरिजाकुमार घोष, पंडित सत्यनारायण कविरत्न, श्री मैथिलीशरण गुन, पंडित रामचन्द्र शुक्त, पंडित चेङ्कटेशनारायण तिचारी, श्री वृजनन्दनसहाय, खामी सत्यदेव, पंडित गिरिधर शर्मा नवरत्न, प्रभृति लेखकों ने 'सरस्वती' में लिखना त्रारम्भ कर दिया। इनमें कुई लेखक तो उनके समका लीन थे परन्तु अन्तिम ४-७ लेखक नवयुवक ही थे जिनमें वे उपाधियों या डिगरियों की श्रोर ध्यान न देकर प्रतिभा के कए हूँड़ा करते थे। सत्य ही वे प्रतिभा के उपासक थे; समर्थक थे। वे गुण-याही थे और ऐसे पारखी जौहरी थे कि हीरे का उचित मूल्य देते थे, चाहे वह किसी निर्धन व्यक्ति के हाथ में ही क्यों न हो । परन्तु कृत्रिम की उन्हें परख थी और उसकी ओर से वे घृणा से इष्टि फेर लिया करते थे।

लेखकों-में से कई ऐसे भी थे जो विदेशी भाषाओं के पिएडत थे। इनका ज्ञान स्वभावतः वहुत विस्तृत था। इनमें से कई विद्वान् श्रॅंगरेजी के पत्रों में लेख लिखा करते थे। इन लेखें का विदेशों में भी बड़ा मान् होता था। दिवेदी जी ने सोचा कि यदि ऐसे विद्वान् हिन्दी पर छपा

साहित्य-सेवा से अपना हाथ खींच लिया था। अब उनको एक ऐसा व्यक्ति ललकार रहा था जिसने ऋपना तन, मन ऋौर धन मातृभाषा की उन्नति के लिए ऋपेंग कर दिया था। ऋतः मातृ-भापा के प्रति उन्होंने ऋपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया। द्विवेदी जी तो चाहते ही थे कि हिन्दी-भाषा-भाषी दूसरी भाषात्रों में पीछे लिखें, पहले अपनी मातृभाषा की यथाचित उन्नति कर लें। त्रतः उन्होंने इन लोगों का सहर्ष स्वागत किया। परिगाम-स्वरूप डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग, श्री शिवचन्द भारतीय, पंडित गौरीदत्त वाजपेयी, राय देवीप्रसाद पूर्ण, पंडित नाथूराम शर्मा, पंडित शुक-देव तिवारी, मुंशी देवीप्रसाद मंसिफ, पंडित रामचरित उपाध्याय, कुँवर हुनुमन्तिसिंह, श्री गिरिजांकुमार घोष, पंडित सत्यनारायण कविरत्न, श्री मैथिलीशरण गुप्त, पंडित रामचन्द्र शुक्त, पंडित वेङ्कटेशनारायण तिवारी, श्री वृजनन्दनसहाय, स्वामी सत्यदेव, पंडित गिरिधर शर्मी नवरत्न, प्रभृति लेखकों ने 'सरस्वती' में लिखना श्रारम्भ कर दिया। इनमें कुछ लेखक ता उनके समका लीन थे परन्तु अन्तिम ४-७ लेखक नवयुवक ही थे जिनमें वे उपाधियों या डिगरियों की श्रोर ध्यान न देकर प्रतिभा के कण हुँदा करते थे। सत्य ही वे प्रतिभा के उपासक थे; समर्थक थे। वे गुग्-याही थे और ऐसे पारखी जौहरी थे कि हीरे का उचित मूल्य देते थे, चाहे वह किसी निर्धन व्यक्ति के हाथ में ही क्यों न हों। परन्तु कृत्रिम की उन्हें परख थी और उसकी ओर से वे घृणा से ंदृष्टि फेर लिया करते थे।

लेखकों में से कई ऐसे भी थे जो विदेशी भाषाओं के पिएडत थे। इनका ज्ञान स्वभावतः वहुत विस्तृत था। इनमें से कई विद्वान् ऋँगरेजी के पत्रों में लेख लिखा करते थे। इन लेखों का विदेशों में भी वड़ा मान होता था। दिवेदी जी ने सोचा कि यदि ऐसे विद्वान् हिन्दी पर छपा

करते थे। इनके वाद श्रॅगरेजी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रौर पत्रकार श्री सन्त निहालसिंह का नाम श्राता है। सन्त जी ने श्रमेरिका, चीन श्रौर जापान श्रादि देशों का भ्रमण कर ज्ञानोपार्जन किया था श्रौर इनके लेख 'मार्डनरिव्यू' में प्रकाशित होते थे। द्विवेदी जी ने वे लेख पढ़े श्रौर बहुत पसन्द किये; फिर सन्द १६११ की फ्रवरी मास की 'सरस्वती' में उन्होंने संत जी का संचिन्न परिचय प्रकाशित किया श्रौर श्रन्त में उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा—

'सेंट की से एक उलहना है। श्रॅंगरेज़ी न जाननेवाले अपने देशवासियों को अपनी बहुज्ञता से लाभ पहुँचाने का भी कभी उन्होंने ख़याल किया है या नहीं! सबसे श्रधिक तो इसी की ज़रूरत है। वह क्या श्रापके श्रॅंगरेज़ी लेखों से हो सकता है? जिस योरप श्रीर श्रमेरिका से उन्होंने इतना ज्ञानार्जन किया है वे सब श्रपनी ही श्रपनी मातृभाषाश्रों में लिखते हैं। फिर क्यों न श्राप भी कभी-कभी श्रपनी देश-भाषा में कुछ लिखने की कृषा किया करें? श्रपनी माँ की वोली की —श्रपनी देश की भाषा की सेवा करना भी तो मनुष्य का कर्तक्य है!"

इस उलहने की दाद देकर सेन्ट जी ने कई लेख 'सरस्वती' में लिखे। इसी प्रकार रायसाहब छोटेलाल जी (बाह्स्पत्य) इंजीनियर के ज्योतिप-वेदाङ्ग पर बड़े महत्त्व के गवेपणापूर्ण लेख 'हिन्दुस्तान-रिव्यू' नामक झँगोजी पत्र में प्रकाशित हुए थे। इन लेखों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की थी। द्विवेदी जी ने भी इन्हें बहुत पसन्द किया। उन्होंने लेखक की प्रशंसा में संस्कृत में स्वयं एक पद बनाया। उसमें बाह्स्पत्य जी को आशीर्वाद भी दिया। वस, उसी दिन से द्विवेदी जी ने मानो उन्हों 'सरस्वती' के लिए मोल ले लिया। वार्ह्स्पत्य जी ने

करते थे। इनके वाद अँगरेजी के सुप्रसिद्ध लेखक और पत्रकार श्री सन्त निहालसिंह का नाम आता है। सन्त जी ने अमेरिका, चीन और जापान आदि देशों का भ्रमण कर ज्ञानोपार्जन किया था और इनके लेख 'मार्डनेरिव्यू' में प्रकाशित होते थे। द्विवेदी जी ने वे लेख पढ़े और वहुत पसन्द किये; फिर सन्द १६११ की फ्रवरी मास की 'सरस्वती' में उन्होंने संत जी का संचिप्त परिचय प्रकाशित किया और अन्त में उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा—

'सेंट जी से एक उलहना है। श्राँगरेज़ी न जाननेवासे श्रपने देशवासियों को श्रपनी बहुज्ञता से लाभ पहुँचाने का भी कभी उन्होंने ख़याज किया है या नहीं! सबसे श्रधिक तो इसी की ज़रूरत है। वह क्या श्रापके धँगरेज़ी लेखों से हो सकता है? जिस योरप श्रीर श्रमेरिका से उन्होंने इतना ज्ञानार्जन किया है वे सब श्रपनी हो श्रपनी मातृभाषाश्रों में लिखते हैं। फिर क्यों न श्राप भी कभी-कभी श्रपनी देश-भाषा में कुछ जिखने की कृषा किया करें? श्रपनी माँ की बोली की—श्रपनी देश की भाषा की सेवा करना भी तो मनुष्य का कर्तव्य है!"

इस उलहने की दाद देकर सेन्ट जी ने कई लेख 'सरस्वती' में लिखे। इसी प्रकार रायसाहव छोटेलाल जी (वाहस्पत्य) इंजीनियर के ज्योतिप-वेदाङ्ग पर वड़े महत्त्व के गवेपणापूर्ण लेख 'हिन्दुस्तान-रिन्यू' नामक ऋँगरेजी पत्र में प्रकाशित हुए थे। इन लेखों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की थी। द्विवेदी जी ने भी इन्हें बहुत पसन्द किया। उन्होंने लेखक की प्रशंसा में संस्कृत में स्वयं एक पद बनाया। उसमें वाहस्पत्य जी को आशीर्वाद भी दिया। वस, उसी दिन से द्विवेदी जी ने मानो उन्हें 'सरस्वती' के लिए मोल ले लिया। वाहस्पत्य जी ने

परन्तु इन महाराय को द्विवेदी जी ने केवल उत्साहित कर-के नहीं छोड़-दिया । आगे चल कर उनसे प्रार्थना करते हुए लिखा—

"हमारे देशवंधु घँगरेज़ी ऐपी हिंद आपा की लिख कर उसके साहित्य-सागर के तो गँदला काते ही हैं, पर अपनी मानुभाषा जिखने की भी चेष्टा नहीं करते। यह दुर्भाग्य की बात है। क्या हो अच्छा हो यदि आप 'मानुभाषा-विषयक मर्नुष्ण का कर्नुष्य' या हसी तरह के किसी विषय पर लेख लिख कर इन लोगों की लिखत करें।

विनयावनत महावीरप्रसाद द्विवेदी''

द्विवेदी जी अपने लेखकों से भली भाँति परिचित रहते थे। कौन मनुष्य किस विषय का अच्छा लेखक वन सकता है, इसकी उन्हें अनोखी परख थी। नये कवियों की कविता लौटाते समय वे उनके दोप स्पष्टतया लिख देते थे, जिससे उन्हें भविष्य में अपनी उन्नति करने का सहारा मिल जाता था। यहाँ नहीं, वे कवियों को सामयिक रुचि के विषय भी वतलाते थे और उन पर कवितायें लिखने के लिए उन्हें उत्साहित करते थे। पंडित केशवप्रसाद मिश्र अपने विषय में एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

'यों हो दस वर्ष बीत गये। सन् १६१६ के दिसम्बर में आख़िर हिम्मत कर ही तो डाली। 'सुदामा' पर एक लम्बी तुकवंदी जिसकर उत्साह से दिवेदी जी के पास मेज दी और मान जिया कि अब पंच बराबर होने में बस बस सिर्फ़ एक ही महीने की देर हैं। 'सरस्वती' में मेरो 'कविता' निकली कि में लेखकों में गिना गया। परन्तु इन महाशय को द्विवेदी जी ने केवल उत्साहित कर-के नहीं छोड़-दिया । आगे चल कर उनसे प्रार्थना करते हुए लिखा—

"हमारे देशवंधु श्राँगरेज़ी ऐसी किए आपा की जिल कर उन्तके साहित्य-सागर की तो गँदला काते ही हैं, पर अपनी मानुभाषा जिल्ले की भी चेष्टा नहीं करते। यह दुर्भाग्य की बात है। क्या ही अच्छा हो यदि आप 'मानुभाषा-विषयक मनुष्ण का कर्त्तक्य' या हसी तरह के किसी विषय पर जेल जिल कर इन लोगों की जिल्ले करें।

विनयावनत महावीरप्रसाद द्विवेदी''

द्विवेदी जी अपने लेखकों से मली माँति परिचित रहते थे। कौन मनुष्य किस विषय का अच्छा लेखक वन सकता है, इसकी उन्हें अनोखी परख थी। नये कवियों की कविता लौटाते समय वे उनके दोप स्पष्टतया लिख देते थे, जिससे उन्हें भविष्य में अपनी उन्नति करने का सहारा मिल जाता था। यहो नहीं, वे कियों को सामयिक किन के विषय भी वतलाते थे और उन पर किवतायें लिखने के लिए उन्हें उत्साहित करते थे। पंडित केशवप्रसाद मिश्र अपने विषय में एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

'यों ही दस वर्ष बीत गये। सन् १६१३ के दिसम्बर में आख़िर हिम्मत कर ही तो डाली। 'सुदामा' पर एक लम्बी तुकवंदी जिसकर उत्साह से द्विवेदी जी के पास मेज दी और मान जिया कि यह पंच बराबर होने में बस बस सिर्फ़ एक ही महीने की देर है। 'सरस्वती' में मेरी 'कविता' निकली कि मैं लेखकों में गिना गया। "में एक बार उनके दर्शन की जुड़ी पहुँचा। कुछ वातचीत ही चुकने के बाद द्विवेदी जी ने प्रश्न किया।

''क्या पढ़ते हैं ?''

इस बार साहस करके कह दिया—"अधिकतर तो उपन्यास और गरुप, ही पढ़ी है।"

''धच्छा ! कौन-कौन उपन्यास पढ़े हें ?''

ं मैंने घाँगरेज़ी, हिंदी, वाँगला तथा उद् के कुछ प्रसिद्ध उपन्यासें। के नाम बताये।

''उपन्यास तो ख़्ब पढ़े हैं।''

''हाँ। श्रोर लिखने की रुचि भी कुछ इसी श्रोर है।''

''बड़ी श्रन्छी बात है। छोटी-छोटी कहानियाँ श्रीर गरुपें ते। पढ़ी ही होंगी—वैसे ही लिखा कीलिए।'

"देखिए, प्रयत करूँगा ।"

"द्विवेदी जी सिर अकाकर मस्तक पर हाथ फेरने जा। कुछ चलों के पश्चात् बगल से पानों की दिविया उठाकर उसमें से दो पान निकाले श्रीर मुसे दिये। इसके पश्चात् बेगले—"में एक मिनिट में श्वाता हूँ।" यह कहवर उठे श्रीर कमरे के श्रन्दर चले गये। जीटकर एक पुस्तक हाथ में लिये हुए श्राये। चारपाई पर बैठकर बोले—"बँगला तो श्राप जानते ही हैं—रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गल्पें पढ़ी होंगी—उन्हीं की गल्पों का यह संग्रह है। इसमें से केाई एक गल्प जिसे श्राप सबसे श्रन्छी सममें, हिन्दी में श्रनुवाद करके मुसे दें—में उसे छाएँगा। जेकिन इतना स्यान रिलएगा कि न तो पुस्तक में कहीं क्रलम या पेंसिल का निशान लगाइएगा, न स्याही के धटने पढ़ने दीनिएगा, न पृष्ट मोडिएगा।"

"मैं एक बार उनके दर्शन की जुही पहुँचा। कुछ वातचीत है। चुकने के बाद द्विवेदी जी ने प्रश्न किया।

''क्या पड़ते हैं ?''

इस बार साहस करके कह दिया—"श्रधिकतर तो उपन्यास श्रौर गल्पॅ, ही पढ़ी हैं।"

"घच्छा ! कौन-कौन उपन्यास पढ़े हैं ?"

मैंने घँगरेज़ी, हिंदी, वँगला तथा उद् के कुछ प्रसिद्ध उपन्यासें। के नाम बताये।

''उपन्यास तो ख़ूब पढ़े हैं।''

''हों। श्रोर लिखने की रुचि भी कुछ इसी श्रोर है।''

् ''बड़ी अच्छी बात है। छोटी-छोटी कहानियाँ श्रोर गर्ले ते। पढी ही होंगी—वैसे ही जिखा कीजिए।''

"देखिए. प्रयत करूँगा।"

"द्विवेदी जी सिर भुकाकर मस्तक पर हाथ फेरने जगे। कुछ धर्मों के पश्चात् बग़ल से पानों की डिबिया उठाकर उसमें से दो पान निकाले और मुक्ते दिये। इसके पश्चात् बेग्ले—"में एक मिनिट में आता हूँ।" यह कहबर उठे और कमरे के अन्दर चले गये। कौटकर एक पुस्तक हाथ में लिये हुए आये। चारपाई पर वैठकर बेग्ले—"वँगला तो आप जानते ही हैं—रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गल्पें पढ़ी होंगी—उन्हीं की गल्पों का यह संग्रह है। इसमें से के हैं एक गल्प जिसे आप सबसे अच्छी समक्तें, हिन्दी में अनुवाद करके मुक्ते दें—में उसे छाएँगा। लेकिन इतना ध्यान रखिएगा कि न तो पुस्तक में कहीं कुलम या पेंसिल का निशान लगाइएगा, न स्याही के धड़वे पड़ने दीजिएगा, न एष्ट मोडिएगा।"

में 'सरस्वती' में एक अच्छा तेख दे सकता हूँ । इसके लिए उन्हों बाता दी । मैंने 'इस संबंध में धानेक एसतर्फे एक कर के रोध वैयार किया । अनुभव कमाथा और मसाका धाधक, जलः लेल धे २० प्रष्ट का तैयार हुआ । मैंने वह उनके पास केन दिया । जीटनी धाक से उन्होंने पत्र विखा कि 'सरस्त्रती' के लिए जेख किया है या पोका ? खैर, इसे छाएँगा।

'समय पर सरस्वती' आई और मैंने आश्वर्य और उरतुरुता-पूर्वक देखा कि नाना फदनवीस का मेरा वह २० पृष्ठ में तिला लेन क्या हुआ है। लेख का लार तथा सिलसिला इतना उत्तम वंधा हुआ कि कहीं विश्वं खलता मालूम ही नहीं दो। इतना ही नहीं. विहक लेख मेरे नाम से छ्या हुआ है और दो रुपये पेज के हिसाब से १६) का मनीआर्डर भी पुरस्कार में मेरे पाप एक इफ़्ते के अन्दर ही—आप ही आप—आ गया! मैं तो भीचका रह गया कि यह कैसा महान् पन्नकार है कि जो अपने छोटे-छोटे ऋपापान्न लेखकों के प्रति इतना सजग रहता है!''

वे यह भी चाहते थे कि उनके लेखक उन्हीं की भाँति सदैव लिखा करें। हर महीने वे उन्हें पत्र भेज रिमाइन्ड करा दिया करते थे। पिएडत रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-सम्पादक) ने मुभसे कई वार यह वात कही है कि प्रतिमास द्विवेदी जी किवता भेजने के लिए उन्हें तीन-चार पत्र डाला करते थे। इसी प्रकार जो महाशय वहुत दिन तक 'सरस्वती' में कुछ न लिखते, उनसे वे जवाव भी तलब किया करते थे। वेचारा समय न मिलने का वहाना करता। परन्तु द्विवेदी जी इससे न सन्तुष्ट होते ऋौर उत्तर देते—"जी नहीं, यह सब बहाना है। तुम दृढ़ निश्चयी नहीं, समय मिलना न मिलना अपने हाथ में है। चाहो तो समय निकाल सकते हो।" बहुत से नवयुवक लेखक और कवि उनके में 'सरस्वती' में एक अच्छा बेख दे सकता हूँ। इसके लिए उन्होंने बाजा दी। मैंने इस संबंध में शनेक पुस्तकें एकत कर के रोस वैत्रार किया। अनुभव कमन्या और ससाका श्रीधक, अलः खेल स्रे २० प्रष्ट का तैयार हुआ। मैंने वह उनके पास केत्र दिया। बौटती क्षक से उन्होंने पत्र जिला कि 'सरस्त्रती' के लिए खेल किया है या पोधा? द्विर, इसे छाएँगा।

''समय पर सरस्वती' आई और मैंने आशवर्ष और उत्तुकता-पूर्वक देखा कि नाना फदनवीस का मेरा वह २० प्रष्ट में लिए। लेन्न खपा हुआ है। लेख का खार तथा सिलसिला इतना उत्तम यंधा हुआ कि कहीं विश्वेखलता मालूम ही नहीं दो। इतना ही नहीं. विलक्ष लेख मेरे नाम से छप। हुआ है और दो रुपये पेज के हिसाब से १६) का मनीआर्डर भी पुरस्कार में मेरे पाप एक हफ़्ते के थन्द्र ही—आप ही आप—आ गया! में तो भीचका रह गया कि यह कैसा महान् पत्रकार है कि जो अपने छोटे-छोटे छपापात्र लेखकों के प्रति इतना सजग रहता है!''

वे यह भी चाहते थे कि उनके लेखक उन्हीं की भाँति सदैन लिखा करें। हर महीने वे उन्हें पत्र भेज रिमाइन्ड करा दिया करते थे। पिएडत रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-सम्पादक) ने मुमसे कई वार यह वात कही है कि प्रतिमास द्विवेदी जी किवता भेजने के लिए उन्हें तीन-चार पत्र डाला करते थे। इसी प्रकार जा महाशय बहुत दिन तक 'सरस्वती' में कुञ्ज न लिखते, उनसे वे जवाब भी तलब किया करते थे। वेचारा समय न मिलने का बहाना करता। परन्तु द्विवेदी जी इससे न सन्तुष्ट होते और उत्तर देते—"जी नहीं, यह सब बहाना है। तुम दृढ़ निश्चयी नहीं, समय मिलना न मिलना अपने हाथ में है। चाहो तो समय निकाल सकते हो।" बहुत से नवयुवक लेखक और किव उनके

की त्रुटियाँ दिखाई गई थीं - विषय के अनुरूप शैली न होने की बुराई की और मेरा ध्यान दिलाया गया था। उन दिलो मेरे लागने आदर्श था स्वर्गीय पंडित गोविंदनारायण मिश्र का, जिनकी संभीर विद्वत्ता तथा प्राकृत और हिन्दी के साहित्यों का अध्ययन और मगर वस्तुत: अपूर्व था। पर पंडित गोविंदनारायण जी का गद्य कादंवरी का अनुकरण था और में भी उनका पदानुसरण वरने का यत कियां करता था। द्विवेदी जी को यह शैली पसन्द नहीं थी और अपने एक कार्ड में आपने यह जिख भी दिया था। वर्षों बाद मुक्ते द्विवेदी जी के इम कथन की सत्यता का अनुभव हुआ। में भी भाषा सरख और वावय छोटे करने का यत करने लगा। आज के कुछ जेल आपके। बहुत पसन्द आये थे और जब जो लेख अच्छा मालूम हुआ, तुरन्त कार्ड जिखकर अपना सन्तोप प्रकट किया। कार्यचेत्र से अवसर प्रहण करने के वाद भी मेरे जैसे एक साधारण पत्रकार पर भी ऐसी द्यादिष्ट रखनेवाला आचार्य हिंदी के। पुनः कय आह है।गा ?"

साथ ही उन्होंने 'सरखती' का स्टेएडर्ड भी ऊँचा किया। आरम्भ में उनका उद्देश्य और आदर्श समभकर पिछत कद्रदत्त शर्मा ने टोका था—"हिन्दी में इतने उच्च कोटि के लेखक कहाँ मिलेंगे ? पित्रका का चलना कठिन है।" परन्तु द्विवेदी जी इससे निरुत्साह न हुए, प्रत्युत प्रेरणा और प्रोत्साहन-द्वारा उन्होंने कितने ही लेखकों और कवियों का स्वयं ही निर्माण कर दिया। यही नहीं, अन्य भापा-भापियों को भी हिन्दी और हिन्दी-साहित्य का प्रेमी और आदरकर्ता बना दिया। आज उनके बनाये हुए कई लेखक और कवि देश में आदर्श और रम माने जाते हैं और अपनी विद्वत्तापूर्ण तथा कलामय कृतियों से हमारे साहित्य को गौरवान्वित कर चुके हैं।

की त्रुटियाँ दिखाई गई थीं - विषय के अनुरूप शैली न होने की बुराई की और मेरा ध्यान दिलाया गया था। उन दिनो नेने लागने आदर्श था स्वर्गीय पंडित गोविंदनारायण मिश्र का, जिनकी गंभीर विद्वत्ता तथा प्राकृत और हिन्दी के साहित्यों का अध्ययन और मगन वस्तुतः अपूर्व था। पर पंडित गोविंदनारायण की का गद्य कादंदरी का अनुकरण था और में भी उनका पदानुसरण वस्ते का यल कियां करता था। द्विवेदी जी को यह शैली पसन्द नहीं थी और अपने एक कार्ड में आपने यह लिख भी दिया था। वर्षों बाद मुक्ते द्विवेदी जी के इप कथन की सत्यता का अनुभव हुआ। मैं भी भाषा सरख और वावय छोटे दरने का यल करने लगा। आज के कुछ लेख आपका बहुत पसन्द आये थे और जब जो लेख अच्छा मालूम हुआ, तुरन्त कार्ड लिखकर अपना सन्तोप प्रवट किया। कार्यफेश से अवसर अहण करने के वाद भी मेरे जैसे एक साधारण पत्रकार पर भी ऐसी दयादिए रखनेवाला आचार्य हिंदी की पुनः कय प्राप्त होगा?"

साथ ही उन्होंने 'सरस्वती' का स्टेण्डर्ड भी ऊँचा किया। आरम्भ में उनका उद्देश्य और आदर्श समफकर पण्डित क्रद्रदत्त शर्मा ने टोका था—"हिन्दी में इतने उच कोटि के लेखक कहाँ मिलेंगे ? पित्रका का चलना किठन है।" परन्तु द्विवेदी जी इससे निरुत्साह न हुए, प्रत्युत प्रेरणा और प्रोत्साहन-द्वारा उन्होंने कितने ही लेखकों और किवयों का स्वयं ही निर्माण कर दिया। यही नहीं, अन्य भापा-भापियों को भी हिन्दी और हिन्दी-साहित्य का प्रेमी और आद्रकर्ता बना दिया। आज उनके बनाये हुए कई लेखक और किव देश में आदर्श और रत्न माने जाते हैं और अपनी विद्वत्तापूर्ण तथा कलामय कृतियों से हमारे साहित्य को गौरवान्वित कर चुके हैं।

श्रागे वढ़ गये कि उन्होंने द्विवेदी जी से नाराज होकर निजी पत्र-पत्रिकाश्रों को जन्म दिया। काशी से 'तर्गिणी' नाम की पत्रिका का जन्म ऐसे ही हुआ था। उसके संपादक द्विवेदी जी से नाराज हो गये थे। उनकी शिकायती कविता 'सरस्वती' में छपी है। पर द्विवेदी जी की हढ़ता, संपादन-कला-संबंधी परिश्रम, आदि के कारण 'सरस्वती' का प्रचार दिन प्रति वढ़ना गया। उसकी सफनता देखकर श्रन्यं पत्र-पत्रिकाश्रों को जन्म दिया गया।

भागलपुर से 'कमला' प्रकाशित हुई श्रोर प्रयाग से 'मर्यादा'। पहली तो शीव ही वंद होगई, पर दूसरी पित्रका कुछ दिनों तक श्रच्छी तरह प्रकाशित होती रही। उसको लेखक भी श्रच्छे मिले; 'सरस्वती' के ही कुछ लेखक उसमें प्रायः लिखा करते थे। उनके लेखों में गंभीरता, रोचकता श्रोर मधुरता का मिश्रण रहता था। इधर मेरठ से 'लिलता' नाम की पित्रका प्रकाशित हुई। श्रन्य पित्रकाश्रों ने तो 'सरस्वती' से स्पर्धा करने का श्रमक्त प्रयत्न ही किया, पर 'लिलता' इन सबसे श्रागे वढ़ गई—उसने श्रपने कबर पर ही 'सरस्वती' से टक्कर लेने की वात लिख डाली। इसी समय खँडवा से 'प्रभा' प्रकाशित हुई। यह पित्रका भी श्रच्छी थी, पर पूरे साल भर भी न चल सकी। कुछ साल बाद वह फिर 'प्रताप'—कार्यालय, कानपुर से निकली; पर कुछ दिन बाद फिर वंद होगई। पत्रों में काशी से प्रकाशित होने वाला 'इन्दु' बहुत सजधज से निकलता था।

प्रायः इन सभी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन थोड़े समय वाद ही वन्द कर दिया गया; शायद ही किसी का जीवन ४-६ वर्ष से अधिक का हुआ हो। इसके दो कारण थे—पहला धनाभाव और दृसरा अध्यवसायी, परिश्रमी और कर्मवीर सम्पादक का न मिलना । यो पहला कारण प्रधान जान

श्रागे वढ़ गये कि उन्होंने द्विवेदी जी से नाराज होकर निजी पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया। काशी से 'तरंगिणी' नाम की पत्रिका का जन्म ऐसे ही हुश्रा था। उसके मंपादक द्विवेदी जी से नाराज हो गये थे। उनकी शिकायती किवता 'मरस्वती' में छपी है। पर द्विवेदी जी की दढ़ता, संपादन-कला-संबंधी परिश्रम, श्रादि के कारण 'सरस्वती' का प्रचार दिन प्रति बढ़ता गया। उसकी सफनता देखकर अन्यं पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया गया।

भागलपुर से 'कमला' प्रकाशित हुई श्रोर प्रयाग से 'मर्यादा'। पहली तो शीव ही वंद होगई, पर दूसरी पित्रका छुछ दिनों तक श्रच्छी तरह प्रकाशित होती रही। उसको लेखक भी श्रच्छे मिले; 'सरस्वती' के ही छुछ लेखक उसमें प्रायः लिखा करते थे। उनके लेखों में गंभीरता, रोचकता श्रोर मधुरता का मिश्रण रहता था। इधर मेरठ से 'लिलता' नाम की पित्रका प्रकाशित हुई। श्रन्य पित्रकाशों ने तो 'सरस्वती' से स्पर्धा करने का श्रमकल प्रयत्न ही किया, पर 'लिलता' इन सबसे श्रागे वढ़ गई—उसने श्रपने कचर पर ही 'सरस्वती' से टक्कर लेने की वात लिख डाली। इसी समय खँडवा से 'प्रभा' प्रकाशित हुई। यह पित्रका भी श्रच्छी थी, पर पूरे साल भर भी न चल सकी। छुछ साल वाद वह फिर 'प्रताप'—कार्यालय, कानपुर से निकली; पर छुछ दिन वाद फिर वंद होगई। पत्रों में काशी से प्रकाशित होने वाला 'इन्दु' वहुत सजधज से निकलता था।

प्रायः इन सभी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन थोड़े समय वाद ही वन्द कर दिया गया; शायद ही किसी का जीवन ४-६ वर्ष से अधिक का हुआ हो। इसके दो कारण थे—पहला धनाभाव और दूसरा अध्यवसायी, परिश्रमी और कर्मवीर सम्पादक का न मिलना। यों पहला कारण प्रधान जान श्रीर १६०४ की हैं, जब वे श्रयने लेख किल्पत नाम से ह्याया करते थे। शायद इस काल में केवल पिएडत गिरिजादत्त जी वाजपेयी के ही लेख उन्होंने प्रकाशित किये हैं—श्रम्य प्रायः सभी स्वयं लिखे हैं। १६०५ श्रीर १६०६ में उन्होंने पढ़ा वहुत हैं श्रीर नवीन विषयों से 'सरस्वती' के प्रत्येक श्रद्ध को सजाया है। इन दोनों वर्षों में लेखों की थोड़ी-बहुत सहायता उन्हें श्रवस्य मिलती रही। १६०७ श्रीर १६०६ में उन्हें फिर बहुत परिश्रम करना पड़ा। 'सद्धर्मश्रचारक', 'लिलता' श्रादि पत्रों में इस समय 'सरस्वती' की होड़ हो रही थीं; समालोचना व भाषा-सम्यन्धी फराड़े रोज ही श्रुक होते थे श्रीर उनका उत्तर देना श्रावश्यक था। परिणाम यह हुआ कि वे बीमार हो गये। १६१० में उन्हें पूरे वर्ष भर की हाड़ी भी लेनी पड़ी।

द्विवेदी जी के इन वर्षों में प्रकाशित सम्पादकीय तथा अन्य लेखों को पढ़कर हमें उनकी योग्यता और बुद्धिमत्ता का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही 'सरस्वती' में प्रकाशित अन्य सज्जनों के लेखों में भी यत्र-तत्र उन्हीं के व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। इसका कारण यह था कि प्रकाशनार्थ आये हुए सभी लेखों को वे चड़े शौर से आद्योपान्त पड़ा करते थे। सापा, विराम-चिह्न, कम, अस्पष्टता तथा शेली विपयक दोपों को सुधारने में पहले वे दिन और रात एक कर देते थे और तब लेख को प्रकाशित करते थे। द्विवेदी जी 'सरस्वती' का सम्पादन जुही से करते थे। वे एक दिन भी इण्डियन प्रेस के आफ़िस में चेठकर काम करने नहीं गये। पर उनके समय में 'सरस्वती' की छपाई में चड़ी सावधानी रहती थी। द्विवेदी जी की सम्पादन-सम्बन्धी कुशलता की प्रशंसा करते हुए 'इण्डियन प्रेस' के वर्तमान स्वामी श्रीयुत इरिकेशव घोप लिखते हैं—

स्त्रीर १६०४ की है, जब वे स्त्रपने लेख किल्पत नाम से छपाया करते थे। शायद इस काल में केवल पिएडत गिरिजादत्त जी वाजपेयी के ही लेख उन्होंने प्रकाशित किये हैं—स्त्रन्य प्रायः सभी स्वयं लिखे हैं। १६०५ स्त्रीर १६०६ में उन्होंने पढ़ा यहुत हैं स्त्रीर नवीन विषयों से 'सरस्वती' के प्रत्येक स्नद्ध को सजाया है। इन दोनों वपों में लेखों की थोड़ी-बहुत सहायता उन्हें स्वयय मिलती रही। १६०७ स्त्रीर १६०५ में उन्हें फिर बहुत परिश्रम करना पड़ा। 'सद्ध मंत्रचारक', 'लिलता' स्त्राहि पर्शे में इस समय 'सरस्वती' की होड़ हो रही थी; समालोचना व भाषा-सम्बन्धी कगड़े रोज ही शुरू होते थे स्त्रीर उनका उत्तर देना स्त्रावश्यक था। परिणाम यह हुस्रा कि धे वीमार हो गये। १६१० में उन्हें पूरे वर्ष अर की छुट्टी भी लेनी पड़ी।

द्विवेदी जी के इन वर्षों में प्रकाशित सम्पादकीय तथा श्रन्य लेखों को पढ़कर हमें उनकी थोग्यता श्रीर दुद्धिमत्ता का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही 'सरस्वती' में प्रकाशित श्रन्य सज्जनों के लेखों में भी यत्र-तत्र उन्हों के व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। इसका कारण यह था कि प्रकाशनार्थ श्राये हुए सभी लेखों को वे वड़े गौर से श्राचोपान्त पढ़ा करते थे। मापा, विराम-चिह्न, कम, श्रस्पष्टता तथा शेली विपयक दोषों को युवारने में पहले वे दिन श्रीर रात एक कर देते थे श्रीर तब लेख को प्रकाशित करते थे। द्विवेदी जी 'सरस्वती' का सम्पादन जुही से करते थे। वे एक दिन भी इण्डियन प्रेस के श्राफ़िस में वेठकर काम करने नहीं गये। पर उनके समय में 'सरस्वती' की छपाई में वड़ी सावधानी रहती थी। द्विवेदी जी की सम्पादन-सम्वन्धी कुशलता की प्रशंसा करते हुए 'इण्डियन प्रेस' के वर्तमान स्वामी श्रीयुत हरिकेशव घोप लिखते हैं—

द्विवेदी जी के इस निश्चय ने उनके कई प्रगाढ़ मित्रों को रुष्ट कर दिया; पर द्विवेदी जी अपने निश्चय पर उटे रहे। स्वर्गीय परिडत पद्मसिंह शर्मा ने 'सतसई-संहार' नामक लेख-माला छपने के लिए भेजी। द्विवेदी जी को उनकी शैली पसन्द न आई और उन्होंने उसमें परिवर्तन करना चाहा। शर्मा जी, इसके विपरीत, यह चाहते थे कि वह लेखमाला ज्यों-की-त्यों अविकल रूप में प्रकाशित हो—वाक्य या शब्द तो क्या उसमें कहीं एक अत्तर भी न वदला जाय। अतः द्विवेदी जी ने उसको छापना अस्वीकार कर दिया और वह लेखमाला लगभग एक वर्ष तक 'सरस्वती' कार्यालय में पड़ी रही। जब द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के सम्पादन से, वीमार हो जाने पर छुट्टी ले लीं तब परिडत देवीप्रसाद शुक्त वी०ए० के सम्पादन-काल में वह प्रकाशित हो सकी।

सम्पादन-सम्बन्धी इस दृद्ता के कारण द्विवेदी जी से बहुत से व्यक्ति रुष्ट हो गये श्रीर उन्हें श्रीभमानी श्रीर अशिष्ट समभने लगे। पर द्विवेदी जी उनसे नाराज न होकर उन्हें समभा-बुमा देना अच्छा समभते थे। प्रायः उनसे वे विनीत स्वर में कहते—'भाई साहब, श्राखिर श्रापको सर्वज्ञता का तो दावा है नहीं, हम सभी भूल कर सकते हैं। में भूल कर श्रीर श्राप बता दें तो में कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करूँ गा।' उनकी यह विनम्रता कुछ लोगों को मुख्य भी कर लेती थीं। जिस व्यक्ति को योग्यता, ज्ञान, पद श्रादि का श्रीममान हो जाता है वह दूसरों के जरा से विरोध पर उनका दुश्मन हो जाता है। पर साहित्यिक-चेत्र में ऐसे लोग प्रायः उन्नति नहीं करते। यहाँ तो ऐसे व्यक्तियों की श्राव-श्यकता है जो जीवन भर श्रपने को विद्यार्थी समभें श्रीर स्वाध्यायं में लगे रह कर गुरुजनों के श्रनुभव-जन्य ज्ञान से

द्विवेदी जी के इस निश्चय ने उनके कई प्रगाढ़ मित्रों को रुष्ट कर दिया; पर द्विवेदी जी अपने निश्चय पर डटे रहे। स्वर्गीय परिडत पद्मसिंह रामां ने 'सतसई-संहार' नामक लेख-माला छपने के लिए भेजी। द्विवेदी जी को उनकी शैली पसन्द न आई और उन्होंने उसमें परिवर्तन करना चाहा। शर्मा जी, इसके विपरीत, यह चाहते थे कि वह लेखमाला ज्यों-की-त्यों अविकल रूप में प्रकाशित हो—वाक्य या शब्द तो क्या उसमें कहीं एक अत्तर भी न वदला जाय। अतः द्विवेदी जी ने उसको छापना अस्वीकार कर दिया और वह लेखमाला लगभग एक वर्ष तक 'सरस्वती' कार्यालय में पड़ी रही। जव द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के सम्पादन से, वीमार हो जाने पर छुट्टी ले लीं तब परिडत देवीप्रसाद शुक्ल वी०ए० के सम्पादन-काल में वह प्रकाशित हो सकी।

सम्पादन-सम्बन्धी इस दृढ़ता के कारण द्विवेदी जी से बहुत से व्यक्ति रुष्ट हो गये और उन्हें अभिमानी और अशिष्ट समफने लगे। पर द्विवेदी जी उनसे नाराज न होकर उन्हें समफा-बुफा देना अच्छा समफते थे। प्रायः उनसे वे विनीत स्वर में कहते—'भाई साहब, आखिर आपको सर्वज्ञता का तो दावा है नहीं, हम सभी भूल कर सकते हैं। मैं भूल करूँ और आप वता दें तो मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करूँगा।' उनकी यह विनम्रता कुछ लोगों को मुग्ध भी कर लेती थीं। जिस व्यक्ति को योग्यता, ज्ञान, पद आदि का अभिमान हो जाता है वह दूसरों के जरा से विरोध पर उनका दुश्मन हो जाता है। पर साहित्यिक-चेत्र में ऐसे लोग प्रायः उन्नति नहीं करते। यहाँ तो ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो जीवन भर अपने को विद्यार्थी समभें और स्वाध्यायं में लगे रह कर गुरुजनों के अनुभव-जन्य ज्ञान से

नहीं, न जाने क्या समम कर लिख डाला है। वह करेक्शन देख कर प्रस्तता हुई, मुँभलाहट-सी देख कर मज़दारी भी आ। गई; और फिर लेख के ऊपर यह राय पड़ी कि 'यह लेख समभ में नहीं आता है, इसिलए लीटा दिया जाता है।' यह राय क्या थी, उस अनुवाद के इउनत देना था। वह बड़ों की विनय है।' —हंस, अभिनंदनांक (अप्रेल १६३३, प्र० ३-४)

बहुत से लेखक इसी प्रकार संशोधनों से लाभ उठाया करते थे। एक स्थान पर स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द् जी ने भी लिखा है— "नव मैंने नया नया हिन्दी लिखना सीखा था, 'सरस्वती' में भपनी कहानियाँ भेजा करता था, तव दिवेदी जी के किए हुए संशोधनों से लाभ उठाकर भविष्य में छद्र—हिन्दी लिखने का प्रयत्न करने के लिए, प्रत्येक कहानी की दो प्रिव दरके में एक भ्रपने पास रख छेठा था श्रीर कहानी के प्रकाशित होने पर बड़ी सावधानी के साथ, मूल से मिलाकर संशोधनों को समझने का प्रयत्न करना था कि अमुक शब्द के स्थान पर अमुक शब्द क्यों रक्ता गया है श्रीर इस परिवर्तन से कहानी में कोई विशेषता भाई है या नहीं।'' पंच-परमेश्वर' शीषक कहानी उन्होंने 'पंचों में ईश्वर' के नाम से प्रकाशित होने के लिए भेजी थी। इस शीपक के बदले जाने से जो चमत्कार और नवीनता आगई उसे प्रेमचंद जी ने भी स्वीकार किया है।

यह तो हुई गद्य, लेख, कहानी, आदि में किये हुए संशोधनों की वात, पद्य का भी उनको इसी प्रकार सम्पादन करना पड़ता था। लेकिन पद्य का सुधार करना इतना सरल नहीं था, जितना गद्य का। पद्य में छन्द, भाषा, भाव, प्रवाह, रस आदि सभी का ध्यान रखते हुए एक शब्द भी बदल देना नहीं, न जाने क्या समक कर लिख डाला है। वह कर्क्यन देख कर प्रसन्तता हुई, सुँक्तलाहर-सी देख कर मज़दारी भी आ गई; और फिर लेख के ऊपर यह राय पड़ी कि 'यह लेख समक में नहीं आता है, इसलिए लीटा दिया जाता है।' यह राय क्या थी, उस अनुवाद का इज़त देना था। वह बढ़ों की विनय है।' —हंस, अभिनंदनांक (अप्रेल १६३३, ए० ३-४)

बहुत से लेखक इसी प्रकार संशोधनों से लाभ उठाया करते थे। एक स्थान पर स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द जी ने भी लिखा है— "नव मैंने नया नया हिन्दी लिखना सीखा था, 'सरस्वती' में भपनी कहानियाँ भेजा करता था, तव द्विवेदी जी के किए हुए संशोधनों से लाभ उठाकर भविष्य में शुद्ध—हिन्दी लिखने का प्रयत्न करने के लिए, प्रत्येक कहानी की दो प्रति वरके में एक श्रपने पास रख लेखा था श्रीर कहानी के प्रकाशित होने पर वदी सावधानी के साथ, मूल से मिलाकर संशोधनों को समझने का प्रयत्न करता था कि श्रमुक शब्द के स्थान पर श्रमुक शब्द क्यों रक्ता गया है शौर इस परिवर्तन से कहानी में कोई विशेषता श्राई है या नहीं।" 'पंच-परमेश्वर' शीपक कहानी उन्होंने 'पंचां में ईश्वर' के नाम से प्रकाशित होने के लिए भेजी थी। इस शीपक के बदले जाने से जो चमत्कार श्रीर नवीनता श्रागई उसे प्रेमचंद जी ने भी स्वीकार किया है।

यह तो हुई गद्य, लेख, कहानी, आदि में किये हुए संशोधनों की वात, पद्य का भी उनको इसी प्रकार सम्पादन करना पड़ता था। लेकिन पद्य का सुधार करना इतना सरल नहीं था, जितना गद्य का। पद्य में छन्द, भाषा, भाव, प्रवाह, रस आदि सभी का ध्यान रखते हुए एक शब्द भी बदल देना पीठ पर टपका पढ़ा ती खाँख मेरी खुल गईं चार बूँदों से मिले मन की लँगीटी खुल गई। इसमें नीचे की पंक्ति उन्होंने बदलकर छापी— विशद बूँदों से मिले मन मौज मिश्रो छुल गई।''

वात यह है कि भावावेश में साधारण कवि प्रायः अपने को भूल कर विषय के वाहर की वातें लिख जाता है। कविता में से इन्हें हटाकर सारे पद्य की सुसंबंधित कर देना साधा-रण कार्य नहीं—कविता में परिवर्तन कर देने पर भी रस, प्रवाह, भाषा आदि में किसी प्रकार का दोष न आने देने के लिए वंड़ी कुरालता और प्रचुर अभ्यास की अपेका है। हिवेदी जी ने इस कार्य को भी सफलता के साथ सम्पन्न किया। एक बार एक प्रसिद्ध कवि की रचना से उन्होंने साढ़े तीन छन्द (१४ पंक्तियाँ) निकालकर अपनी स्रोर से स्राधा छन्द (दो चर्रा) जोड़ दिया और विशेषता यह कि भाषा में किसी प्रकार का अंतर न आया, विचारों का तार न दृटा और छन्द में कहीं व्यतिक्रम न पड़ा। यह थी सम्पादन-कला और कुशलता। इसके लिए द्विवेदी जी को वहुत ही अधिक परिश्रम करना पड़ता था; चैावीसों घण्टे वे व्यस्त रहते थे। सम्पादन-कार्य के आगे उन्होंने कभी दिन की दिन और रात की रात नहीं समभा, चरन इसके लिए अपने स्वास्थ्य का—अँगरेजी कवि मिल्टन की भाँति , श्रपनी नेत्र-ज्योति का—बिलदान कर दिया; परन्तु कभी दूसरों के त्र्यागे एक बार भी इसकी शिकायत नहीं की। १८ वर्ष के सम्पादकीय युग में केवल एक वार ही ऐसा अवसर आया था जव द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के दो श्रङ्क संयुक्त निकाले थे। साथ ही प्रत्येक श्रङ्क का प्रत्येक लेख सुसम्पादित रहता था श्रीर इनका सम्पादन भी इतनी छुशलता से किया जाता था पीठ पर टप का पढ़ा ती खाँख मेरी खुल गईं चार वूँदों से मिले मन की लँगोटी खुल गईं। इसमें नीचे की पंक्ति उन्होंने बदलकर छापी— विशद वूँदों से मिले मन मौज मिश्रो खुल गईं।''

वात यह है कि भावावेश में साधारण कवि प्रायः अपने को भूल कर विषय के वाहर की वातें लिख जाता है। कविता में से इन्हें हटाकर सारे पद्य के। सुसंवंधित कर देना साधा-रण कार्य नहीं—कविता में परिवर्तन कर देने पर भी रस, प्रवाह, भाषा आदि में किसी प्रकार का दोष न आने देने के लिए बंड़ी कुशलता और प्रचुर अभ्यास की अपेत्ता है। द्विवेदी जी ने इस कार्य को भी सफलता के साथ सम्पन्न किया। एक बार एक प्रसिद्ध कवि की रचना से उन्होंने साढ़े तीन छन्द (१४ पंक्तियाँ) निकालकर अपनी स्रोर से आधा छन्द (दी चेरंग) जोड़ दिया और विशेषता यह कि भाषा में किसी प्रकार का अंतर न आया, विचारों का तार न दूटा और छन्द में कहीं व्यतिक्रम न पड़ा। यह थी सम्पादन-कला स्त्रीर कुशलता। इसके लिए द्विवेदी जी को वहुत ही अधिक परिश्रम करना पड़ता था; चैावीसों घएटे वे व्यस्त रहते थे। सम्पादन-कार्य के त्रागे उन्होंने कभी दिन की दिन और रात की रात नहीं समभा, वरन इसके लिए अपने स्वास्थ्य का-अँगरेजी कवि मिल्टन की भाँति श्रपनी नेत्र-ज्योति का-विल्यान कर दिया; परन्तु कभी दूसरों के अपने एक बार भी इसकी शिकायत नहीं की। १= वर्ष के सम्पादकीय युग में केवल एक वार ही ऐसा अवसर आया था जव द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के दो अङ्क संयुक्त निकाले थे। साथ ही प्रत्येक अङ्क का प्रत्येक लेख सुसम्पादित रहता था और इनका सम्यादन भी इतनी छुशलता से किया जाता था तथा भावों का संशोधन कैसी सावधानी से करते थे और उनकी संशोधन-शैली किस प्रकार की थी। मूल्पृष्ट में लेख हैं और शंका-स्थलों पर नम्बर/लगाकर हाशिये पर दिनेदी जी के संशोधन तथा रिमार्क दिये हैं। यह लेख पंडित देवीदत्त शुक्त का लिखा हुआ है जिसे उन्होंने दिवेदी जी की संशोधन-शैली का परिचय देने के लिए, इसी रूप में 'माधुरी' में छपाया था।

तथा भावों का संशोधन कैसी सावधानी से करते थे और उनकी संशोधन शैली किस प्रकार की थी। मूल्पृष्ठ में लेख है और शंका-स्थलों पर नम्बर लगाकर हाशिये पर दिवेदी जी के संशोधन तथा रिमार्क दिये हैं। यह लेख पंडित देवीदत्त शुक्त का लिखा हुआ है जिसे उन्होंने दिवेदी जी की संशोधन-शैली का परिचय देने के लिए, इसी रूप में भाधुरी' में छपाया था।

(३) वे भी वहाँ की भाषा के ज्ञान से

(8) ×

(४) है।

(६) पर

(७) यें (५) उ

(६) हिन्दुओं (१०) अर्थात् गृह निर्माण

((११) साहित्य-विषयक (१२) आ-दिस (१३) ×

(१४) अब इतनी (१४) उसका

श्रॅंगरेज़ लाेगां को इस उदासीनता के कारणों में से मुख्य कारण यह है कि जो ऋँगरेज भारत में वरसों नौकरी पर रहते हैं (३) वे यहाँ देशी भाषा के ज्ञान में कोरे ही लौटते हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऋँगरेजों ऋौर भारतवासियों के वीच श्रौर किसी वात में उतना भेद नहीं है (४) जितना कि ज्ञान सम्वन्धी साधनों के प्रति उदासीन रहने में (४) । श्रीर दुर्भाग्य से यह भेद दिन (६) दिन बढ़ता ही जा रहा है। भारत में अगिएत भाषाएँ (७) हैं। (८) इनमें उर्दू एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। इसका कारण यह है कि उसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध संस्कृत से भी वैसा ही है जैसा कि अरवी श्रीर फ़ारसी से। श्रव वह केवल मुसलमानों ही की जवान-नहीं रही, लाखों हिन्दुत्र्यों का भी उसपर अधिकार है। (६) हिन्दू और मुसलमानें। का संमिश्रगा स्थापत्य (१०) विद्या में भी विद्यमान है। इसका उदाहरण श्रागरे का ताजमहल है । (११) साहित्यिक संमिश्रग कविंता में तो प्रकट ही है। यद्यपि (१२) मुसर्लिमीन आक्रमण्कारियों (१३) <u>तथा</u> विजेतात्रों के सैनिकों के लश्कर से उर्दू उत्पन्न हुई है तथापि उसकी (१४) ऐसी भारी उन्नित हो गई है कि (१४) वह

(४) है। (६) पर (ੰ७) ਬੇਂ (ਙ) ਚ (६) हिन्दुय्रों (१०) अर्थात् गृह निर्माण '(११) साहित्य-विषयक (१२) आं-दिम (१३) ×

(३) वे भी वहाँ की

भापा के ज्ञान से

 $(8) \times$

श्रँगरेज़ लागाँ को इस उदासीनता के कारणों में से मुख्य कारण यह है कि जो श्रॅगरेज भारत में वरसों नौकरी पर रहते हैं (३) वे यहाँ देशी भाषा के ज्ञान में कोरे ही लौटते हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऋँगरेज़ों ऋौर भारतवासियों के वीच श्रौर किसी वात में उतना भेद नहीं है (४) जितना कि ज्ञान सम्वन्धी साधनों के प्रति उदासीन रहने में (४)। श्रीर दुर्भाग्य से यह भेद दिन (६) दिन बढ़ता ही जा रहा है। भारत में घ्रगिएत भापाएँ (७) हैं। (८) इनमें उर्दू एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। इसका कारण यह है कि उसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध संस्कृत से भी वैसा ही है जैसा कि अरवी श्रीर फ़ारसी से। श्रव वह केवल मुसलमानों ही की जंबान-नहीं रही, लाखों हिन्दुच्चों का भी उसपर त्र्यधिकार है। (६) हिन्दू ·और मुसलमानेां का संमिश्रण स्थापत्य (१०) विद्या में भी विद्यमान है । इसका उदाहरण श्रागरे का ताजमहल है। (११) साहित्यिक संमिश्रण र्कविंता में तो प्रकट ही है। यद्यपि (१२) मुसंलमान आक्रमणकारियों (१३) <u>तथा</u> विजेतात्रों के सैनिकों के लश्कर से उर्दू उत्पन्न हुई है तथापि उसकी (१४) **ऐसी** भारी उन्निति हो गई है कि (१४) वह

((२३)) उस समयः के भी कुछ कवियो की रचनाओं में हृदयहारी भाव पाये जाते हैं। (२४) किसी ने भी (२४) भरे हुए

(२६) वे मूल्य वान (२७) उनका

ँ(२५) ग़ालिव उस समय हुए थे (२६) वस्तुये

(३०) और दु:ख के व्यंजक

(३१) अच्छी (३२) उन्होंने अपने विचारों के स्रोत में

(२३) कुछ कवियों ने चमत्कारी भाव प्रकट किये थे, किंतु मौलि-कता की छोर (२४) ध्यान दिया। उस समय के कवियों में महाकवि गालिव का वड़ा नाम है। उनके पद्यों में

केवल शब्द-वैचित्र्य तथा रूपकालंकार ही नहीं है, किंतु वे सुंदर तथा गंभीर भावों से (२४) आत-प्रोत हैं। वे पद्य हमारी पसंद के हों चाहे न हों पर (२६) उनसें दृद्ता श्रवश्य हैं। हम पर (२७) उस दृढ़ता का प्रभाव , पंड़ता है। 🏿 (२५) उनकी कविता का मुख्य स्वर सर्वा ग्रुभवाद है। उनका समय वह

ज्व पुरानी (२६) वस्तुएँ समय के प्रवाह से टूटफूटकर दुकड़े-दुकड़े हो रही थीं श्रौर श्रंतिम मुराल-सम्राट् वहादुरशाह वदी बनाकर रंगून भेजे जा चुके थे। उसी समय ग़ालिव ने मार्मिक पीड़ा (३०) तथा दुःखं सूचक अपने खास विचार जगत् के सामने कविता के रूप में व्यक्त किये। मुगल-सम्राट् के पतन के साथ उन्होंने उन सब वातों का अंतर्धान जिनको वे (३१) होते देखा तथा स्वच्छ सममते थे। (३२) वे किस मन को दारानिक तरह बार-बार श्रपने श्रापको

मस्तिष्क के दार्शिनिक विचारों

(२३) कुछ कवियों ने वमत्कारी (२३) उस समय के भी कुंछ कवियों प्रकट किये थे, किंतु मौलि-की रचनात्रों में कता की श्रोर (२४) ध्यान नहीं हृदयहारी भाव दिया। उस समय के कवियों में महाकवि पांये जाते हैं। ग़ालिव का वड़ा नाम है। उनके पद्यों में (२४) किसी ने केवल शब्द-वैचित्र्य तथा रूपकालंकार ही भी नहीं है, किंतु वे सुंदर तथा गंभीर भावों से (२४) <u>श्रोत-प्रोत</u> हैं। वे पद्य हमारी (२५) भरे हुए (२६) वे मूल्य_ पसंद के हों चाहे न हों पर (२६) उनमें वान (२७) उनका दृढ्ता श्रवश्य है। हम पर (२७) उस दृढ़ता का प्रभाव पड़ता है। (२८) ग़ालिय (२८) उनकी कविता का मुख्य स्वर सर्वा ग्रुभवाद है। उनका समय वह था उस समय हुए थे (२६) वस्तुयें जब पुरानी (२६) वस्तुएँ समय के अवाह से ट्रटफुटकर दुकड़े-दुकड़े हो रही थीं श्रोर श्रंतिम मुराल-सम्राट् वहादुरशाह वंदी बनाकर रंगून भेजे जा चुके थे। उसी समय ग़ालिव ने मार्मिक पीड़ा (३०) (३०) श्रौर दुःख तथा दुःखत्सूचक अपने सास विचार के व्यंजक जंगत के सामने कविता के रूप में व्यक्त किये । मुराल-सम्राट् के पतन के साथ उन्होंने उन सव वातों का अंतर्धान होते देखा जिनको वे (३१) श्रेष्ठ (३१) স্তুভন্তী तथा स्वच्छ समभते थे। (३२) वे किस (३२) उन्होंने अपने तरहः वार-वार श्रपने श्रापको श्रपने मन को दाशनिक मस्तिष्क के दार्शिनिक विचारों में गर्क विचारों के स्रोत में

(४६) हाय ! (४०) × (४१), सव नहीं । (४२) × (४३) उनमें से (४४) नीचे (४४) ×

(४६) हैं × यें

(४७), इँगलैंड में, (४८) । (४६) × (६०) क्या मत-लव ? (६१) जगत एक ही है। उसमें उत्तरी, दृत्तिणी, भाग करना जुबर-

दस्ती है। पाश्चात्य देश क्यों न तिखें। "(४६) सव नहीं, हम लोगों के पास (४०) हाय. केवल कुछ ही गुले लाल तथा गुलाव के रूप में आये हैं (४१) "(४२) हे भगवन, (४३) कुछ लोगों के मुख कैसे सुन्दर रहे होंगे जो अव (४४) धूल में (४४) नीचे द्वे छिपे पड़े हैं।"

परन्तु गालिय भूतकाल के किय हैं।
लोग उनकी कियताएँ इसी दृष्टि से नहीं
पढ़ते कि वे प्राचीन किय की (४६) रची हुई
हैं। उनकी रचनाएँ अस्मारत में उसी
दृष्टि से पढ़ी जाती हैं जैसे कि यहाँ (४७)
(इँग्लैंड में) मिल्टन की (४८) हाँ यह
(४६) वात ठीक है कि नई सन्तान को
उनकी कियताओं में अर्वाचीन मानयसमाज की (६०) मिश्रित श्राभलापाओं
के भावों का दिग्दर्शन नहीं होता।
जब से भारत का पारचात्य (६१)
जगत् के साथ सम्बन्ध हुआ है तब से

उर्दू-साहित्य में नये-नये प्रभाव श्राप ही श्रीप पड़ने लगे हैं। वह पुरानी कविता जिसका श्रादर्श फारसी कविता थी श्राघ्या-त्मिक तथा प्रेम के भावों से परिपूर्ण रहती थी श्रव कमशः निर्वेल पड़ने लगी, यहाँ तक कि विगत शताब्दी के द०वें वर्ष में उसकी इतिश्री हो गई। महाकवि हाली ने खुल्लम-सुल्ला उसके विरुद्ध कह कर उसका प्रभाव

नष्ट कर डाला।

(४६) हाय !(४०)×

(४१), सव नहीं । $(\chi\chi) \times (\chi\chi)$

उनमें से (४४) नीचे (४४)×

(४६)हें \times यें

(५७), इँगलेंड में, (ধ্ব) । (ধ্ৰু)

× (६०) क्या मत-लव ? (६१) जगत

एक ही है। उसमें

उत्तरी, द्विणी, भाग करना ज्वर-

दस्ती है। पाश्चात्य देश क्यों न लिखें।

"(४६) सव नहीं, हम लोगों के पास (४०) हाय. केवल कुछ ही गुले लाल तथा गुलाव के रूप में आये हैं (४१)

"(४२) हे भगवन्, (४३) कुछ लोगों के मुख कैसे सुन्दर रहे होंगे जा अव (४४) धूल में (४४) <u>नीचे दवे छिपे</u> पड़े हैं।"

परन्तु ग़ालिव भूतकाल के कवि हैं। लोग उनकी कविताएँ इसी दृष्टि से नहीं पढ़ते कि वे प्राचीन कवि की (४६) रची हुई हैं। उनकी रचनाऍंॐ भारत में उसी टिष्ट से पढ़ी जाती हैं जैसे कि यहाँ (५७) (इँग्लेंड में) मिल्टन की (४८) हाँ यह (४६) वात ठीक है कि नई सन्तान को उनकी कविताओं में अर्वाचीन मानव-समाज की (६०) मिश्रित र्थाभलापाकों के भावों का दिग्दर्शन नहीं होता।

जब से भारत का पाश्चात्य (६१) जगत् के साथ सम्वन्ध हुः आ है तव से

जुर्दू-साहित्य में नये-नये प्रभाव त्राप ही श्रीप पड़ने लगे हैं। वह पुरानी कविता जिसका आदर्श फारसी कविता थी आध्या-त्मिक तथा प्रेम के भावों से परिपूर्ण रहती थी श्रव क्रमशः निर्वल पड़ने लगी, यहाँ तक कि विगत शताब्दी के ८०वें वर्ष में उसकी इतिश्री हो गई। महाकवि हाली ने खुल्लम-खुल्ला उसके विरुद्ध कह कर उसका प्रभाव

नष्ट कर डाला।

(७) और

ऐसी करुए। जनक, ऐसी उत्तेजक (७) ऐसी सची कवित्वपूर्ण है कि उसने मुसलमान समाज के अहरियों तक की अपनी निद्रा से चैंका दिया।

मैंने सिद्धांतहीन, धार्मिक तथा आहत्व के भावों से शून्य और विध्यामक मनुष्य देखे हैं। ये ऐसे लोग हैं जो अपने भाग-विलास के कारण दुःख शब्द का उचारण तक सुनना गवारा नहीं कर सकते और यदि किसी गायक ने इन लोगों के सामने कोई दुःखब्यंजक पद गा दिया तो उसकी खेर न समित्रण! अपमान-स्चक शब्दों से वह तिरस्कृत कर दिया जायगा। परन्तु ये ही लोग सुसहस के पढ़े जाने पर एतराज नहीं करते और जब तक उसका पढ़ना जारी रहता है तब तक ये लोग बैठे रोया करते हैं।

मैंने अपने देश के अन्य धर्मा-चलिन्चयों को इसके सुनने से अश्रुपात करते देखा है। और कैसा अश्रुपात जो हदयगंत दुःख के कारण स्वतः प्रवृत्त हुए थे (६) और सचे थे।"

(८) अतएव

शाच्य में कविता अव तक भी हम लोगों के लिए एक जीवनी शक्ति है और हम उन भावों को व्यक्त करने में जरा भी लिज्जत नहीं होते जो वह उत्तेजित करती है। (७) और

ऐसी करुणाजनक, ऐसी उत्तेजक (७) ऐसी सची कवित्वपूर्ण है कि उसने मुसलगान समाज के अहरियों तक की अपनी निद्रा से चौंका दिया।

मेंने सिद्धांतहीन, धार्मिक तथा भ्राव्टत्व के भावों से शून्य श्रीर विषयामक मनुष्य देखे हैं। ये ऐसे लोग हैं जो श्रपने भाग-विलास के कारण दुःख शब्द का उद्यारण तक सुनना ग्वारा नहीं कर सकते श्रीर यदि किसी गायक ने इन लोगों के सामने कोई दुःखब्यंजक पद गा दिया तो उसकी खेर न स्मिभिए। श्रपमान-स्चक शब्दों से वह तिरस्कृत कर दिया जायगा। परन्तु ये ही लोग सुसदस के पढ़े जाने पर एतराज नहीं करते श्रीर जब तक उसका पढ़ना जारी रहता है तब तक ये लोग बैठे रोया करते हैं।

मोंने अपने देश के अन्य धर्मा-वलिम्बयों को इसके सुनने से अश्रुपात करते देखा है। और कैसा अश्रुपात जो हृद्यगंत दु:ख के कारण स्वतः प्रवृत्त हुए थे (८) और सचे थे।"

(८) अतएव

प्राच्य में कियता अब तक भी हम लोगों के लिए एक जीवनी शक्ति है और हम उन भावों को व्यक्त करने में जरा भी लिज्जित नहीं होते जो वह उत्तेजित करती हैं। मुमे भेजिए। १६ । ३ ।२० .

फिर लिखिए और इन अंथों में चन नई जातमा चनक रही है जिसने भारत को जगा दिया है। म० प्र० द्वि० (१७) इक्तवाल के 'नरान' उर्दू साधी भारत का जातीय गीन के रूर में स्वी-कार किये गये हैं।

मुभे भेजिए। म० प्र० द्वि० १६।३।२० .

फिर लिखिए और इन मंथों में वह नई जात्मा चनक रही है जिसने भारत को जगा दिया है। (१७) इक्तवाल के 'नरान' उर्दू साधी भारत का जातीय चीन के हा में स्वी-कार किये गये हैं।

नाम से 'ऋनस्थिरता' शब्द की हँसी उड़ाते हुए एक लेख-माला ही निकाल दी। यह 'भारत-मित्र' में प्रकाशित हुई। इस लेख-माला का कुछ ख्रांश भई विनोद का नमूना था। भाषा इसकी वड़ी ही उम थी। वात यह थी कि द्विवेदी जी ने अपने लेख में गुप्त जी के वँगला-अनुवाद का एक अवनरण देकर उसमें अनुवाद के दोप दिखलाये थे। वस, गुप्त जी आपे से वाहर होकर द्विवेदी जी पर वाग्वाण वरसाने लगे। 'हम पञ्चन के ट्वाला मां' जैसे वैसवाड़ी के वाक्यों का प्रयोग करके गुप्त जी ने द्विवेदी जी का उस लेख-माला में गहरा उपहास किया। इस लेखमाला में सहदयता, सौजन्य और शिष्टता तक का ध्यान नहीं रक्खा गया। इस पर द्विवेदी जी बड़े चुन्ध हुए। 'कल्लू अल्ह्डन' के कल्पित नाम से उन्होंने 'सरगी नरक ठेकाना नाहिं' शीर्षक आल्हा छन्द में एक मड़ीवा लिखकर गुप्त जी के भदे विनोद को ताहश ही उत्तर दिया। गुप्त जी ने इस पर अपनी राय देते हुए लिखा—

'भाई वाह ! वस्तू श्रवहहत का श्रावहा खूब हुश्रा। क्यों न हो, श्रापनी स्वामाविक बोली में है न।"

हिवेदी जी का यह आल्हा जनवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या १, एष्ठ ६८) प्रकाशित हुआ। दूसरे ही महीने में उन्होंने 'भाषा और न्याकरण' शीर्षक एक लेख लिखा, जो करवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या २, एष्ठ ६०) प्रकाशित हुआ। इस लेख में दिवेदी जी ने गुप्त जी की युक्तियों का वड़े सुन्दर ढंग से न्यझय की पुट देते हुए खंडन किया। परिणाम-स्वरूप हिन्दी के तत्कालीन सभी धुरंधर विद्वान दिवेदी जी के पत्त में हो गये। हिन्दी-संसार में हलचल मंच गई। दिवेदी जी के पत्त प्रतियों ने गुप्त जी को मुँहतोड़

नाम से 'श्रनिश्यरता' शब्द की हँसी उड़ाते हुए एक लेख-माला ही निकाल दी। यह 'भारत-मित्र' में प्रकाशित हुई। इस लेख-माला का कुछ श्रंश भद्दे विनोद का नमूना था। भाषा इसकी वड़ी ही उप थी। वात यह थी कि द्विवेदी जी ने अपने लेख में गुप्त जी के वँगला-अनुवाद का एक अवतरण देकर उसमें अनुवाद के दोप दिखलाये थे। वस, गुप्त जी आपे से वाहर होकर द्विवेदी जी पर वाग्वाण वरसाने लगे। 'हम पश्चन के द्वाला माँ' जैसे वैसवाड़ी के वाक्यों का प्रयोग करके गुप्त जी ने द्विवेदी जी का उस लेख-माला में गहरा उपहास किया। इस लेखमाला में सहद्यता, सौजन्य और शिष्टता तक का ध्यान नहीं रक्खा गया। इस पर द्विवेदी जी वड़े चुव्ध हुए। 'कल्ल्स अल्हड्न' के कल्पित नाम से उन्होंने 'सरगी नरक ठेकाना नाहिं' शीर्षक आल्हा छन्द में एक भड़ी वा लिखकर गुप्त जी के भदे विनोद को ताहरा ही उत्तर दिया। गुप्त जी ने इस पर अपनी राय देते हुए लिखा—

'भाई वाह! करलू श्रवहहत का श्रावहा खूब हुशा। क्यों न हो, श्रवनी स्वाभाविक बोली में है न।"

हिवेदी जी का यह त्राल्हा जनवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या १, पृष्ठ ६८) प्रकाशित हुआ। दूसरे ही महीने में उन्होंने 'भाषा और न्याकरण' शीर्षक एक लेख लिखा, जो फरवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या २, पृष्ठ ६०) प्रकाशित हुआ। इस लेख में हिवेदी जी ने गुप्त जी की युक्तियों का वड़े सुन्दर ढंग से न्यङ्गच की पुट देते हुए खंडन किया। परिणाम-स्वरूप हिन्दी के तत्कालीन सभी धुरंघर विद्वान हिवेदी जी के पन्त में हो गये। हिन्दी-संसार में हलचल मंच गई। हिवेदी जी के पन्त पातियों ने गुप्त जी को मुँहतोड़

पत्त में थे। चक्रवर्ती जी 'भारतिमन्न' के सम्पादक थे, उन्होंने कई सम्पादकीय नोट लिख कर अपने विचारों की प्रकट किया। ये महाशय तो विभक्ति-सम्मेलन तक करने के पत्त में थे। अपने कथन की पृष्टि में इन्होंने स्वर्गीय अम्विकादत्त ज्यास के लिखे हुए एक पोस्टकार्ड का ज्लाक भी प्रकाशित किया, जिसमें विभक्ति सटी हुई लिखी गई थी। यह ज्लाक १६०६ के अगस्त मास के 'भारतिमन्न' में छपा था। १९ अगस्त के श्रद्ध में साहित्योपाच्याय वदरीनाथ शर्मा ने जो मिर्जापुर के निवासो थे, इस कार्ड का खरडन करते हुए अपना लेख लिखा। विपत्तियों में परिडन रामचन्द्र शुक्त का लेख वड़ा सुन्दर था। यह लेख 'अभ्युद्य' के १६०६ के २३ और ३० जुलाई तथा ६ अगस्त के श्रद्धों में प्रकाशित हुआ था। फिर १०, ११, २४ सितम्बर के श्रद्धों में मो इन्हीं विचारों का समभ्येन करते हुए शुक्त जो ने नेट लिखे।

प्राय: ये सभी लेख पिएडत गोविन्द्रनारायण मिश्र के विचारों की काटते थे। मिश्र जी ही इस आन्दोलन के नायक और सटाऊ-सिद्धान्त के पत्तपाती थे। उन्होंने 'विभक्ति-विचार' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक ही इस विपय•पर लिख डाली। इसमें इन्होंने हिन्दी की विभक्तियों की शुद्ध विभक्तियाँ सिद्ध किया और यह सलाह दी कि इन्हें शब्दों से मिलाकर लिखना ही उचित होगा। इनके विचारों का खण्डन करते हुए पण्डित रामचन्द्र शुक्त और वायू भगवानदास हालना ने लेख लिखे थे।

द्विवेदी जी, एक प्रकार से, इस वादिववाद से अलग ही रहे। यह बात वास्तव में वड़े आश्चर्य की है कि उन्होंने इस आन्दोलन में भाग क्यों नहीं लिया। शायद उन्होंने इसकी पत्त में थे। चक्रवर्ती जी 'भारतिमन्न' के सम्पाद्क थे, उन्होंने कई सम्पाद्कीय नेट लिख कर अपने विचारों को प्रकट किया। ये महाशय तो विभक्ति-सम्मेलन तक करने के पत्त में थे। अपने कथन की पृष्टि में इन्होंने स्वर्गीय अम्विकादत्त व्यास के लिखे हुए एक पोस्टकाई का व्लाक भी प्रकाशित किया, जिसमें विभक्ति सटी हुई लिखी गई थी। यह व्लाक १६०६ के अगस्त मास के 'भारतिमन्न' में छपा था। ३१ अगस्त के अद्भ में साहित्योपाच्याय वदरीनाथ शर्मा ने जो मिर्जापुर के निवासी थे, इस काई का खरडन करते हुए अपना लेख लिखा। विपित्तयों में पिरडत रामचन्द्र शुक्त का लेख वड़ा सुन्दर था। यह लेख 'अभ्युद्य' के १६०६ के २३ और ३० जुलाई तथा ६ अगस्त के अद्धों में प्रकाशित हुआ था। फिर १०, ११, २४ सितम्बर के अद्धों में भी इन्हीं विचारों का सम्भ र्थन करते हुए शुक्त जो ने नेट लिखे।

प्रायः ये सभी लेख पिएडत गोविन्द्रनारायण मिश्र के विचारों को काटते थे। मिश्र जी ही इस स्थान्दोलन के नायक स्थोर सटाऊ-सिद्धान्त के पत्तपाती थे। उन्होंने 'विभक्ति-विचार' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक ही इस विषय•पर लिख डाली। इसमें इन्होंने हिन्दी की विभक्तियों की शुद्ध विभक्तियाँ सिद्ध किया स्थोर यह सलाह दी कि इन्हें शब्दों से मिलाकर लिखना ही उचित होगा। इनके विचारों का खण्डन करते हुए पिएडत रामचन्द्र शुक्त स्थोर वायू भगवानदास हालना ने लेख लिखे थे।

द्विवेदी जी, एक प्रकार से, इस वादविवाद से ऋलग ही रहे। यह बात वास्तव में बड़े आश्चर्य की है कि उन्होंने इस श्रान्दोलन में भाग क्यों नहीं लिया। शायद उन्होंने इसकी "भाषा इसंकी परिमार्जित हाँ है। प्रनेज स्थलों की रचता ज्याकरण-स्युत भी है। संभव है, तीन प्रादिमयों भी शिरकर इन ही भाषा के प्रधिकांश दोपों का कारण हो। अच्छे वेखक की भाषा जैसी होनी चाहिए, वैसी भाषा इस उस्तक की नहीं। दो-चार उदाहरण जीजिए:—

"(१) हिंदी-कविता के समान संसार में कियी भाषा की रचना ऐसी सौण्डव, और श्रुति-मधुर नहीं है। — सूमि ता, एष्ट ३०। किसी भाषा की रचना ऐसी सौण्डव...... नहीं है—यह विरुख्त ही अशुद्ध है। 'सौष्ठव' की जगह 'सुष्ठु' चाहिए। इसके सिवा सारे संसार की मापाओं के विषय में वही मजुष्य कुछ कह सकता है जो उन सबके। जानता है। क्या खेखक उन सबके। जानने का दावा कर सकते हैं?

"(२) हमने उनका वर्णन थोड़े में 'स्थाली पुलाक न्याय' दिखा दिया है। पृष्ठ २९५।

द्पित भाषा वा यह बहुत हुरा उदाहरण है। इस विषय के श्रिषक उदाहरण देकर हम लेख नहीं बढाना चाहते। इतने ही उदाहरण देकर (स्थाली पुलाक न्याय' से पाठक समक्ष सकेंगे कि इसकी भाषा सदोप है या निदेषि श्रीर यदि मदोप है तो कितनी।''

इसी प्रकार अनेक स्थलों के होप दिखाने के पश्चात् 'वाक्य और वाक्यांश-दोप', 'शब्द-दोप', 'फ़ुटकर दोप' पर प्रकाश डालते हुए द्विवेंदी जी ने लिखा—

''ब' श्रीर 'व' की तो बड़ी ही दुर्दशा हुई है। व्रजभाषा', 'वन्नभाचार्य', विरह', विषय', 'विष' श्रीर 'वियोग' श्रादि हज़ारों संबद इसमें ऐसे हैं जिनमें 'व' के बदले 'ब' का प्रयोग हुश्रा है। लेखक महोदयों ने स्वयं श्रपने नामों के 'विहासी' शब्दों में भी 'ब' का "भाषा इसंकी परिमार्जित हाँ है। अनेक स्थलों की रचहा ज्याकरण-स्युत भी है। संभव है, तीर आदिमयों की शिरकत इन्ती भाषा के श्रधिकांश दोपों का कारण हो। अच्छे लेखक की भाषा जैसी होनी चाहिए, वैसी भाषा इस उश्तक की नहीं। दो-चार उदाहरण कोलिए:—

"(१) हिंदी-कविता के समान संसार में कियी आदा की रचना ऐसी सीष्टव, श्रीर श्रुति-मधुर नहीं है। — भूनि हा, ष्टुष्ट २०। किसी भाषा की रचना ऐसी सीष्टव.....नहीं है— यह विर्कुत ही अश्रुद है। 'सीष्टव' की जगह 'सुष्टु' चाहिए। इसके तिवा सारे संसार की माप।श्रों के विषय में वही मनुष्य कुछ कह सकता है जो उन सबके। जानता है। क्या लेखक उन सबके। जानने का दावा कर सकते हैं?

"(२) हमने उनका वर्णन थोड़े में 'स्थाली प्रताक न्याय' दिखा दिया है। पृष्ठ २१५।

दूपित भाषा का यह बहुत हुरा उदाहरण है। इस विषय के श्रिषक उदाहरण देकर हम लेख नहीं बढाना चाहते। इतने ही उदाहरण देखकर 'स्थाली पुलाक न्याय' से पाठक समक्त सकेंगे कि इसकी भाषा सदोप है या निर्दोष ग्रीर यदि यदोप है तो कितनी।''

इसी प्रकार द्यनेक स्थलों के ट्रोप दिखाने के पश्चात् 'वाक्य और वाक्यांश-ट्रोप', 'शब्द-ट्रोप', 'फुटकर ट्रोप' पर प्रकाश डालते हुए द्विवेंद्री जी ने लिखा—

"'ब' श्रोरं 'व' की ते। बड़ी ही हुईशा हुई है। वजभाषा', 'वलभाचार्य', 'विरह', विषय', 'विध' श्रोर 'वियोग' श्रादि हज़ारों शंद्द इसमें ऐसे हैं जिनमें 'व'-के बढ़ले 'ब' का प्रयोग हुश्रा है। लेखक महोदयों ने स्वयं श्रपने नामों के 'विहारी', शब्दों, में भी 'ब' का 'दिवेदी जी—'शवन' यहाँ प भोजर का निवेदा, है। दलका वह 'बद्दर्य' वर्षों नहीं ?

इसी प्रकार जब पंडित रागः नि सर्ग ने 'हिंति-शिक्तक' व्याकरण नाम की पुस्तक में लिखा---

'तू' का संप्रदान में 'गुन्तारे लिए' पार होते र अ क्रमारा 'गुन्हर्स श्रीर 'गुरहारी' है। जाती है।

तब द्विवेदी जी ने प्रण्ता नोट दिया कि एक पर केरे लिए? श्रीर 'तेरा, तेर, तेरी' धर्या गती हैं इसके भिवा को लाती हैं क्यों ? 'हो जाता हैं' या 'हो जाते हैं' क्यों न होना चाहिए ? सरस्वती (११-६-४३०)

एक श्रंक में 'मंस्कृत-प्रवेशिनी' (सम्पादफ, काज्यनीर्थ पी-लाल जैन) पर नाट देते हुए लिखा—

"द्रमके लेखक व्याकरगा-शास्त्री हैं। याशा है, याप व्याकरण का महस्व ख़ुब जानते होंगे। ये यह भी जानते होंगे कि व्याकरण की सत्ता सभी भाषायों पर हैं। हिंदी भी एक भाषा है। धतएन वह भी अपने व्याकरण के नियमों के प्रधीन है। पर इस नियमन की बाद श्राप शायद भूज गये हों। घापका एक वाल्य है—'दूसरे भाग में शेष कुल विभक्ति थीर धातुओं के रूप प्रयोग सहित यतलाए गए हैं।' इस वाक्य में पहले तो 'विभक्ति' लिखना, फिर उसे एक वचन में रखना याक्य में पहले तो 'विभक्ति' लिखना, फिर उसे एक वचन में रखना श्रीरों को न खटके तो न खटके, व्याकरण-शासियों को तो अवश्य ही खटकना चाहिए।"

सरस्वती (११-४-२७७)

ऐसे संशोधनों से लेखकों का वड़ा उपकार होता था। बहुत से लोग उनकी इन वातों की सहर्प ग्रहण कर लेते 'हिवेदी जी-'श्रवस' यहा प ोजर जा निरोपा, है। धनएन वर 'बक्रव' क्यों नहीं ?

इसी प्रकार जब पंडित रागना में शर्म ने 'हिंटी-शिक्तक' न्याकरण नाम की पुस्तक में तिखानन

'तू' का संप्रदान में 'तुन्हारे हिए' प्यार तीने र स तुन्हारा 'तुन्हर्स श्रीर 'तुन्हारी' है। जाती है।

तब द्विवेदी जी ने प्राप्ता नीड़ दिया कि कि पर केरे लिए? श्रीर 'तेरा, तेर, तेरी' च्यों कारी है इसके सिवा की लाती हैं क्यों ? 'हो जाता हैं' या 'हो जाते हैं' क्यों न होना चाहिए ? सरस्वती (११-६-४३०)

एक श्रंक में 'मंस्कृत-प्रवेशिनी' (सम्पादक, काञ्यतीर्ध पी-लाल जैन) पर नाट देते हुए लिखा—

"इसके लेखक व्याकरण-शास्त्री हैं। याशा है, याप व्याकरण का सहस्व खुब जानते होंगे। वे यह भी जानते होंगे कि व्याकरण की सत्ता सभी भाषायों पर हैं। हिंदी भी एक भाषा है। यतएन वह भी अपने व्याकरण के नियमों के प्रधीन हैं। पर इस नियमन की बाद आप शायद भूल गये हों। यापका एक वाक्य है—'दूसरे भाग में शेष कुल विभक्ति थीर धातुयों के रूप प्रयोग सहित यतलाए गए हैं।' इस वाक्य में पहले तो 'विभक्ति' लिखना, फिर उसे एक वचन में रखना श्रीरों को न खटके तो न खटके, ज्याकरण-शारियों को तो अवश्य ही खटकना चाहिए।"

सरस्वती (११-४-२७७)

ऐसे संशोधनों से लेखकों का वड़ा उपकार होता था। बहुत से लोग उनकी इन वातों के। सहर्प प्रहण कर लेते उन्हें समय रामायण बनाने की लालसा हुई चौर तब उन्होंने शेष अन्य भी बनाया। एए २०। '

इस प्रकार के लम्बे-लम्बे वान्यों से द्विवेदी जी की बहुत चिढ़ थी। इस वाक्य पर उन्होंने श्रपना नोट ये। दिया या—

ं इसमें पिछले दो 'धौर' जाने से वेतरह शिथिलता था गई। उन्हें निकाल कर उनकी जगह पक एक पाई (,फ़लस्टाप) रख देने से यह दोप दूर हो जाता।''

इसी प्रकार 'श्री समय सार-टीका' की त्र्यालोचना भी भाषा-सुधार का एक सुन्दर नमृना है। यह त्र्यालोचना त्र्यास्त १६१=की 'सरस्वती' (पृष्ठ ११०) में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक की भूमिका के कुछ वाक्य यों थे—

"इस भाषा करने में इसने छति साइस किया है। यह काम न्याय थीर व्याकरण के विद्वानों का था पर इसारे समान विद्वान रिहत व्यक्ति का न था तो भी धारमंत्रेमवश नो यह साइस किया है उस पर विद्वान हास्य न करके कृपाद्दि द्वारा इसे अव-लोकन करेंगे थीर जहाँ ने ई भूल मालूम पड़ें उसे अवश्य स्चित करेंगे। वर्षोकि सुमा जैये अवप जानी हारा भी भूलें हो जाना सम्भव है।"

द्विचेदी जी ने इस पर जो नोट लिखा वह इस प्रकार है—

ं ''यह अध्यंत शिथिल भाषा का अच्छा नमूना है। यही बात और तरह बढ़ी, अच्छी हिंदी में लिखी जा सकती थी। ख़ैर शैली का विचार जाने दीजिए। 'इस' और 'भाषा' शब्दों के बीच एक की' दरकार है। दूसरे वाक्य में 'पर' शब्द व्यर्थ हैं। 'ती का इस्ला ही गलत है। महं तो' होना ही चाहिए। अंतिम वाक्य का उन्हें समग्र रामायण बनाने की लालसा हुई श्रीर तब उन्होंने शेय अन्य भी बनाया। एष्ट ५०।

े इस प्रकार के लम्बे-लम्बे बाक्यों से द्विवेदी जी की बहुत चिढ़ थी। इस बाक्य पर उन्होंने श्रपना नाट यें दिया था—

'इसमें पिछले दो 'श्रौर' जाने से चेतरह शिथिलता श्रा गई। उन्हें निकाल कर उनकी जगह प्कःएक पाई (,फुलस्टाप) रख देने से यह दोप दूर हो जाता।''

इसी प्रकार 'श्री समय सार-टीका' की आलोचना भी भाषा-सुधार का एक सुन्दर नमृना है। यह आलोचना अगस्त १६१=की 'सरस्वती' (पृष्ठ ११०) में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक की भूमिका के कुछ वाक्य यों थे—

''इस भाषा करने में इसने छति साइस किया है। यह काम न्याय छौर ज्याकरण के विद्वानों का था पर इसारे समान विद्वजा- हिंदत ज्यक्ति का न था तो भी छात्मंप्रेमवश जो यह साइस किया है उस पर विद्वजन हास्य न करके कुपाइप्ट द्वारा इसे छव- लोकन करेंगे छौर जहाँ बोई भूल मालूम पढ़ें उसे छवश्य स्चित करेंगे। वर्षों कि मुक्त जैने छहप जानी हारा भी भूलें हो जाना संग्रेष्य है

द्विवेदी जी ने इस पर जो नोट लिखा वह इस प्रकार है—

भीर तरह वही, श्रद्धित भाषा का श्रद्धा नमूना है। यही बात श्रीर तरह वही, श्रद्धी हिंदी में लिखी जा सकती थी। खेर शैली का विचार जाने दीजिए। 'इस' श्रीर 'भाषा' शब्दों के बीच एक 'की' दरकार है। दूसरे वाक्य में 'परें शब्द व्यर्थ हैं। 'तो का इस्ला ही राजत हैं। वह तो', होना ही चाहिए। श्रुंतिम वाक्य का शुद्धता और भाषा की सफाई के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार भी बढ़ा। यह देखकर आचार्य के। बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसन्नता में विजयोन्माद नहीं था, अभिमान नहीं था, केवल आत्मतुष्टि का भाव था। इसका अनुभव वहीं कर सकता है जो दिन-रात एक करके सची लगन के साथ परिश्रम करे और अन्त में अभिलिषत सफलता प्राप्त कर सके। शुद्धता और भाषा की सफाई के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार भी बढ़ा। यह देखकर आचार्य के। बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसन्नता में विजयोन्माद नहीं था, अभिमान नहीं था, केवल आत्मतुष्टि का भाव था। इसका अनुभव वही कर सकता है जे। दिन-रात एक करके सची लगन के साथ परिश्रम करे और अन्त में अभिल्पित सफलता प्राप्त कर सके। समय साहित्य-सेवियों के दल बने थे। वे एक-दूसरे के दीप दिखाने में व्यंग्य और कटा च-पूर्ण भाषा का सहारा लेते थे। फलतः विभिन्न दलों में विरोध-भावना और भी प्रवल होती जाती थी। साहित्य के। इससे वड़ी चिति पहुँच रही थी। जिन पढ़े-लिग्वे विद्वानों के हृदयों में हिन्दी-साहित्य के रिक्त अंगों की देखकर कसक उठती थी और जो उसकी उन्नति के लिए सचेत होकर प्रयत्नशील थे, व इस पन्तपातपूर्ण दोप-प्रदर्शन-कार्य की, जिसे वे समालोचना के नाम से ही पुकारते थे, देखकर मन मसोस कर रह जाते थे। ऐसी आलोचना करते समय लेखक इस वात का ध्यान द्यवस्य रखता था कि कहीं हमारे दलवाले इससे श्रसंतुष्ट तो नहीं हो जायँगे। यो उस समय, भमालोचना प्रायः पत्तपातपूर्ण ही होती थी श्रीर समालोचना का लत्त्य कृति न होकर व्यक्ति-विशेष रहता था। इस कथन की पुष्टि बाबू श्याससुन्दरदास के एक पत्र से होती है जो उन्होंने सन् १८६ में द्विवेदी जी को लिखा था। हिवेदीजी ने एक यथार्थ समालोचना सभा के द्वारा प्रकाशित कराने के लिए भेजी थी। उसी के उत्तर में मंत्री की हैसियत से वावृजी ने पत्र तिखा था।

काशी, २६-४-१न६६

''पूउपवर,

हमारी सभा और विशेष कर हमारे यमात्र की श्रवस्था विचित्र है। ये ही यहे भाग्य हैं कि सभा श्रव तक चली जाती हैं। देप श्रीर द्रोह सब स्थानों में नाश का मूल कारण हुन्ना। उसकी हमारे यहाँ क्यूनता नहीं है - लोगों के। प्रसन्न रखना यहा कठिन हैं - श्रप्रसन्न करने में विलम्म नहीं लगता-सभालोचनाश्रों के यथार्थ रूप में करने से हम किसी के। भी सन्द्रष्ट न कर सकेंगे (यह श्राक्य रालत समय साहित्य-सेवियों के दल बने थे। वे एक-दूसरे के दोष दिखाने में व्यंग्य और कटा च-पूर्ण भाषा का सहारा लेते थे। फलतः विभिन्न दलों में विरोध-भावना और भी प्रवल होती जाती थी। साहित्य की इससे वड़ी चति पहुँच रही थी। जिन पढ़े-लिग्वे विद्वानों के हृदयों में हिन्दी-साहित्य के रिक्त अंगों को देखकर कसक उठती थी श्रोर जो उसकी उन्नति के लिए सचेत होकर प्रयत्नशील थे, व इस पन्नपातपूर्ण दोप-प्रदर्शन-कार्य का, जिसे वे समालोचना के नाम से ही पुकारते थे, देखकर मन मसोस कर रह जाते थे। ऐसी आलोचना करते समय लेखक इस वात का ध्यान अवश्य रखता था कि कहीं हमारे दलवाले इससे श्रसंतुष्ट तो नहीं हो जायँगे। यों उस समय, ममालोचना आयः पत्तपातपूर्ण ही होती थी श्रौर समालोचना का लत्त्य कृति न होकर व्यक्ति-विशेष रहता था। इस कथन की पुष्टि बाबू स्याससन्दरदास के एक पत्र से होती है जो उन्होंने सन् १८६६ में द्विवेदी जी को लिखा था। द्विवेदीजी ने एक यथार्थ समालोचना सभा के द्वारा प्रकाशित कराने के लिए भेजी थी। उसी के उत्तर में मंत्री की हैसियत से वावृजी ने पत्र तिखा था।

काशी, २६-४-१८६

''पूउपवर,

हमारी सभा और विशेष कर हमारे समाज की श्रवस्था विचित्र है। ये ही यहे भाग्य हैं कि सभा श्रव तक चली जाती है। देप श्रीर द्रोह सब स्थानों में नाश का मूल कारण हुन्ना। उसकी हमारे यहाँ न्यूनता नहीं है - लोगों के प्रसन्न रखना बढ़ा कठिन हैं -श्रप्रसन्न करने में विजम्ब नहीं लगता—सभालोचनाश्रों के यथार्थ रूप में करने से हम किसी की भी सन्दुष्ट न कर सकेंगे (यह वाक्य रालत फा० ह गुण, रूपक आदि की छानवीन—की ओर, पहले से ही. ध्यान दिया जा रहा था। मारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय में हम एक ओर वँगला-साहित्य से और दूसरी ओर ऋँगरेजी-साहित्य से परिचित हुए। इसके दो सुपरिणाम हुए। पहला वँगला, ऋँगरेजी, संस्कृत आदि अन्य भाषाओं के प्रंथों का अनुवाद हिन्दी में किया जाने लगा। यह शौक़ इतना वढ़ता गया कि कालान्तर में अच्छे और चुरे सभी प्रंथों का अनुवाद होने लगा। पर यह हमारी चीज नहीं थी और न हम इस पर अभिमान ही कर सकते थे। दूसरा सुपरिणाम यह हुआ कि साहित्य-सेवी मौलिक प्रंथ लिखने की ओर प्रयन्नशील हुए।

विदेशी साहित्य के सम्पर्क में आने से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि हम अपनी भाषा तथा अपने साहित्य की वास्तविक दशा से परिचित हो सके और यह भी जान सके कि हमारे लिए किस प्रकार का साहित्य उपयोगी होगा। यों दर-वारी समालोचना-पद्धित में उनयोगितावाद की पुट भी दिखाई देने लगी। वीसवीं शतान्दी के आरंभ में होनेवाली साहित्य और समालोचना की पद्धित का अध्ययन करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है।

प्रवृत्ति, उद्देश्य श्रीर श्रादर्श

इसके कुछ वर्ष पहले ही हिन्दी-साहित्य-चेत्र में द्विवेदीजी का प्रादुर्भाव हो चुका था। आरम्भ से उनकी प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति आलोचनात्मक थी। सम्पादन-कार्य प्रह्णा करने के पूर्व ही उन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' तथा अन्यान्य पत्र-पित्रकाओं में कितपय पुस्तकों की आलोचना की थी। पाठक जी के कई काव्यों की भी वे मार्मिक और विस्तृत समालोचना कर चुके थे। उनके इन कार्यों की आलोचना करने के पहले यहाँ हम उनकी प्रवृत्ति

गुण, रूपक आदि की छानवीन—की ओर, पहले से ही. ध्यान दिया जा रहा था। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय में हम एक ओर वॅगला-साहित्य से और दूसरी ओर अँगरेजी-साहित्य से परिचित हुए। इसके दो सुपरिणाम हुए। पहला वँगला, अँगरेजी, संस्कृत आदि अन्य भाषाओं के प्रंथों का अनुवाद हिन्दी में किया जाने लगा। यह शौक इतना वढ़ता गया कि कालान्तर में अच्छे और बुरे सभी प्रंथों का अनुवाद होने लगा। पर यह हमारी चीज नहीं थी और न हम इस पर अभिमान ही कर सकते थे। दूसरा सुपरिणाम यह हुआ कि साहित्य-सेवी मौलिक प्रंथ लिखने की ओर प्रयत्नशील हुए।

विदेशी साहित्य के सम्पर्क में ज्ञाने से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि हम अपनी भाषा नथा अपने साहित्य की वास्तविक दशा से परिचित हो सके और यह भी जान सके कि हमारे लिए किस प्रकार का साहित्य उपयोगी होगा। यों दर-वारी समालोचना-पद्धित में उपयोगिताबाद की पुट भी दिखाई देने लगी। बीसबीं शताब्दी के आरंभ में होनेवाली साहित्य और समालोचना की पद्धित का अध्ययन करने से यह बात अप्ट हो जाती है।

प्रवृत्ति, उद्देश्य श्रीर श्रादर्श

इसके कुछ वर्ष पहले ही हिन्दी-साहित्य-चेत्र में द्विवेदीजी का प्रादुर्भाव हो चुका था। आरम्भ से उनकी प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति आलोचनात्मक थी। सम्पादन-कार्य प्रहण करने के पूर्व ही उन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' तथा अन्यान्य पत्र-पित्रकाओं में कित्पय पुस्तकों की आलोचना की थी। पाठक जी के कई काव्यों की भी वे मार्मिक और विस्तृत समालोचना कर चुके थे। उनके इन कार्यों की आलोचना करने के पहले यहाँ हम उनकी प्रवृत्ति लोगों की कुपा-दृष्टि संस्कृत की त्रोर भी गई त्रौर उन्होंन, देखा-देखी संस्कृत के प्रसिद्ध प्रन्थों का अनुवाद करना त्रारम्भ कर दिया।

द्विवेदी जी इस अंतिम वात की सहन नहीं कर सके। उस समय संस्कृत का वे अध्ययन करते थे और जानते थे कि इस भाषा का साहित्य पाश्चात्य देशों के विद्वानों की लुभा चुका हैं; वे उसे वड़े श्रादर श्रीर सम्मान की दृष्टि से देखते थे। श्रतः उन्होंने सोचा कि यदि अनुवाद और टीका करने की याग्यता न रखनेवाले व्यक्तियों ने इस श्रोर क़द्म बढ़ाया श्रौर संस्कृत के प्रन्थों का अनुवाद या उनकी टीका करके उनके वास्तविक महत्त्व और सौन्दर्य का नष्ट कर दिया, तो उन प्रन्थकारी के ही नहीं, संस्कृत-भाषा त्रौर उसके साहित्य के प्रति भी हमारे हृदयों में निरादर-भाव पैदा हो जायगा श्रीर इसका प्रभाव हमारी भावी संतित पर बहुत बुरा पड़ेगा। उनका यह विचार ही संस्कृत के अनुवादों और टीकाओं की कटु-छालोचना का कारण हुआ। हिवेदी जी का स्वयं ऐसे अनुवादकों या टीकाकारों से कोई द्वेष नहीं था जैसा कि उनके एक पत्र से स्पष्ट होता है। लाला सीताराम ने संस्कृत के कुछ यन्थों की टीका की। द्विवेदी जी ने उनकी तीत्र आलोचना की। इस पर लालाजी की ऋोर से किसी ने द्विवेदी जी का एक पत्र लिखा, जिसके उत्तर में द्विवेदी जी ने लिखा—

"I have no enmity with Lala Sita Ram, nor is there any misunderstanding between us, as you suppose. I have certainly made no attacks on him; you are no doubt, mistaken in this respect,

भावार्थ यह है कि द्विवेदी जी ने किसी द्वेप-भावना से

लोगों की कृपा-दृष्टि संस्कृत की त्रोर भी गई त्रौर उन्होंन, देखा-देखी संस्कृत के प्रसिद्ध प्रन्थों का अनुवाद करना त्रारम्स कर दिया।

द्विवेदी जी इस अंतिम वात की सहन नहीं कर सके। उस समय संस्कृत का वे अध्ययन करते थे और जानते थे कि इस भाषा का साहित्य पाश्चात्य देशों के विद्वानों की लुभा चुका हैं: वे उसे वड़े श्रादर श्रीर सम्मान की दृष्टि से देखते थे। श्रतः उन्होंने सोचा कि यदि अनुवाद और टीका करने की याग्यता न रखनेवाले व्यक्तियों ने इस स्रोर क़द्म बढ़ाया स्रोर संस्कृत के प्रन्थों का ऋनुवाद या उनकी टीका करके उनके वास्तविक महत्त्व ऋौर सौन्दर्य काे नष्ट कर दिया, तो उन प्रन्थकाराें के ही नहीं, संस्कृत-भाषा श्रीर उसके साहित्य के प्रति भी हमारे हृदयों में निरादर-भाव पैदा हो जायगा ऋौर इसका प्रभाव हमारी भावी संतति पर बहुत बुरा पड़ेगा। उनका यह विचार ही संस्कृत के अनुवादों और टीकाओं की कटु-त्र्यालोचना का कारण हुआ। द्विवेदी जी का स्वयं ऐसे अनुवादकों या टीकाकारों से कोई द्वेष नहीं था जैसा कि उनके एक पत्र से स्पष्ट होता है। लाला सीताराम ने संस्कृत के कुछ यन्थों की टीका की। द्विवेदी जी ने उनकी तीव्र त्रालोचना की। इस पर लालाजी की श्रोर से किसी ने द्विवेदी जी के एक पत्र लिखा, जिसके उत्तर में द्विवेदी जी ने लिखा-

"I have no enmity with Lala Sita Ram, nor is there any misunderstanding between us, as you suppose. I have certainly made no attacks on him; you are no doubt, mistaken in this respect,

भावार्थ यह है कि द्विवेदी जी ने किसी द्वेप-भावना से

बिवेदी जो का यह आदर्श अन्त तक वना रहा। समयानुनार वे और भी आगे वड़ गये। जब लोगों ने बहुत धाँधली मचाई तब उन्होंने 'समालोचना का सत्कार'-शोर्षक एक लेख दिसम्बर १६१७ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया। यह लेख कुछ घाँघली मचानेवालों की खबर लेने के लिए लिखा गया था। बाबू कालिदास जो कपूर ने उसके प्रतिवाद में 'समालोचना'-शीर्षक एक लेख लिखा और 'सरस्वती' में ही प्रकाशित होने के लिए भेजा। इस लेब की स्वीकृति लिखते हुए द्विवेदी जी ने ३१-१-१६१ को जो पत्र लिखा उसका कुछ अंश यों है—

'मेरा लेख कुछ ख़ास श्रादिमयों की लध्य करके लिखा गया हैं। उन की धूर्नता का हाल श्रापको मालूम हे। तो शायद श्राप श्रपना लेख लिखने ही नहीं। ख़ैर, मतभेत द्वरा नहीं।''

इतना ही नहीं, जो पुस्तकें द्वियंदी जी के पास समा-लोचनार्थ नहीं भी आती थीं और उनमें कोई दोप होता था तो वे स्वयं खरोदकर उन्हें पड़ते थे और जनता के सामने उनके दोप स्मष्ट भाषा में रख देते थे। इन पुस्तकों की मूचना द्वियंदी जी को अपने मित्रों से मिल जाया करती थी।

खेर, उक्त उद्देश्य और विचार पर हृढ़ रहना वड़े साहस का कार्य था; कम से कम तत्कालीन साहित्यिक वातावरण में रहकर तीव्र और सत्य आलोचना करना आसान नथा। पर द्विवेदी जी अपने विचार पर डटे रहे। यहाँ हम एक लेख ऐसा उद्धृत करते हैं जिससे उनके समालोचना-सन्वन्धी आदर्श पर प्रकाश पड़ेगा। लेख कुछ चड़ा अवश्य हैं, पर उससे हम उस समय के साहित्यसेवियों के विचारों से भी परिचित हो सकेंगे और द्विवेदी जी ने उनकी सममाकर राह पर लाने की जी चेष्टा की उससे भी। लेख यों हैं—

दिवेदी जी का यह आदर्श अन्त तक वना रहा। समयानुसार वे और भी आगे वड़ गये। जब लोगों ने वहुत धाँधली मचाई तव उन्होंने 'समालोचना का सत्कार'-शोर्पक एक लेख दिसम्बर १६१७ की 'सरस्वता' में प्रकाशित किया। यह लेख कुछ धाँधली मचानेवालों की खबर लेने के लिए लिखा गया था। वाबू कालिदास जो कपूर ने उसके प्रतिवाद में 'समालोचना'-शीर्पक एक लेख लिखा और 'सरस्वती' में ही प्रकाशित होने के लिए भेजा। इस लेख की स्वीकृति लिखते हुए द्विवेदी जी ने ३१-१-१६१ को जो पत्र लिखा उसका कुछ अंश यों है—

' मेरा लेख कुछ ख़ास श्रादितयों की लक्ष्य करके लिखा गया है। उन की धूर्नता का हाल श्रापको मालूम हे(ता तो शायद श्राप श्रपना लेख लिखने ही नहीं। ख़ैर, मतभेत द्वरा नहीं।''

इतना ही नहीं, जो पुस्तकें द्विवेदी जी के पास समा-लोचनार्थ नहीं भी आती थीं और उनमें कोई दोप होता था तो वे स्वयं खरोदकर उन्हें पड़ते थे और जनता के सामने उनके दोप स्वष्ट भाषा में रख देते थे। इन पुस्तकों की सूचना द्विवेदी जी कें। अपने मित्रों से मिल जाया करती थी।

खेर, उक्त उद्देश्य और निचार पर दृढ़ रहना वड़े साहस का कार्य था; कम से कम तत्कालीन साहित्यिक वातावरण में रहकर तीन्न और सत्य आलोचना करना आसान न था। पर द्विवेदी जी अपने विचार पर उदे रहे। यहाँ हम एक लेख ऐसा उद्घृत करते हैं जिससे उनके समालोचना-सन्वन्धी आदर्श पर प्रकाश पड़ेगा। लेख कुछ वड़ा अवश्य हैं, पर उससे हम उस समय के साहित्यसेवियों के विचारों से भी परिचित हो सकेंगे और द्विवेदी जी ने उनके। समभाकर राह पर लाने की जी चेष्टा की उससे भी। लेख यों है—

को भी, हिन्दी की छोड़कर, अन्य भाषाओं के साहित्य-सेवियों की अदालत से सज़ा मिलती है।"

- सरस्वती अप्रैल १६११)

द्विवेदीजी ने 'कालिदास की निरंकुराता'-शीर्षक अपनी प्रसिद्ध लेखमाला में, पुराने समालोचकों के कथन के आधार पर, कालिदास की कृतियों में कुछ दोष दिखाये थे। उनके समकालीन संस्कृत के विद्वानों ने इसका बड़ा विरोध किया। उत्तर में द्विवेदीजी ने 'प्राचीन कवियों के काव्यों में दोपोद्धावना'-शीर्षक एक निवन्ध लिखा। यह अप्रेल, मई और जून (१६११) की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इसी लेख की भूमिका के तौर पर उक्त वाक्य लिखे गये हैं। रेखांकित स्थलों की व्याख्या करने का तो यहाँ स्थान नहीं है; हाँ उन पर ग़ौर करने से परिस्थित और उत्तर हमारी समभ में आ सकता है। अस्तु।

द्विवेदीजी ने अपने इसी विचार को एक जगह स्पष्ट राज्दों में इस प्रकार लिखा है—

"मित्रता के कारण किसी पुस्तक की अनुचित शशंसा करना विज्ञापन देने के सिवा और कुछ नहीं। ईप्या-द्वेप अथवा शत्रुभाव के वशीभूत होकर किसी की कृति में अमूलक दोपोट्भावना करना उससे भी बुरा काम है."

--- सरस्वती

यह तो हुई समालोचना-संबंधी आदर्श की बात। अब लेखक के आदर्श पर, जैसा उन्होंने समका था या वे चाहते थे, ग़ौर कीजिए।

पुस्तक के तीन मुख्य त्रंग होते हैं—विषय, भाषा और रीली। द्विवेदीजी ने त्रपने उद्देश्य और खादर्श के खनुसार इन नीनें। को भी, हिन्दी के। छोड़कर, अन्य भाषाओं के साहित्य-सेवियों की यदालत से सज़ा मिलती है।"

- सरस्वती अभैल १६११)

द्विदीजी ने 'कालिदास की निरंकुराता'-शीर्षक अपनी प्रसिद्ध लेखमाला में, पुराने समालोचकों के कथन के आधार पर, कालिदास की कृतियों में कुछ दोष दिखाये थे। उनके समकालीन संस्कृत के विद्वानों ने इसका वड़ा विरोध किया। उत्तर में द्विवेदीजी ने 'प्राचीन कियों के काव्यों में दोपोद्भावना'-शीर्षक एक निवन्ध लिखा। यह अप्रेल, मई और जून (१६११) की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इसी लेख की भूमिका के तौर पर उक्त वाक्य लिखे गये हैं। रेखांकित स्थलों की व्याख्या करने का तो यहाँ स्थान नहीं हैं; हाँ उन पर ग़ौर करने से परिस्थिति और उत्तर हमारी समभ में आ सकता है। अस्तु।

द्विवेदीजी ने त्रापने इसी विचार को एक जगह स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार लिखा है—

"मित्रता के कारण किसी पुस्तक की श्रनुचित प्रशंसा करना विज्ञापन देने के सिवा श्रीर कुछ नहीं। ईप्यो-द्वेप श्रयवा शत्रुभाव के वशीभूत होकर किसी की कृति में श्रमुलक दोपोद्भावना करना उससे भी बुरा काम है,"

— सरस्वती

यह तो हुई समालोचना-संबंधी आदर्श की बात। अब लेखक के आदर्श पर, जैसा उन्होंने समका था या वे चाहते थे, ग़ौर कीजिए।

पुस्तक के तीन मुख्य ऋंग होते हैं—विषय, भाषा और शैली। द्विवेदीजी ने अपने उद्देश्य और आदर्श के अनुसार इन नीनेंा प्रकाश पड़ता है। भाषा वे सरल चाहते थे, शुद्ध भी। श्रारम्भ में प्रायः दोनों ही बातें हिंदी में नहीं थीं। उन्हें इससे दुःख होता था। फलतः पिएडताऊ भाषा लिखनेवालों पर कटाच करने में वे कोई कोरकसर न करते थे श्रीर व्याकरण श्रादि के दोष दिखाने में भी वड़ी तत्परता से काम लेते थे। स्थूल रूप से इन्हीं तीन बातों की परिचयात्मक श्रालोचना वे किया करते थे।

समालोचना

उपर कहा जा चुका है कि आरंभ से ही द्विवेदीजी की अकृति आलोचनात्मक रही है। स्वभावतः अपने साहित्यिक जीवन-काल में उन्होंने सैकड़ें पुस्तकों की अपने ढंग से आलोचना की। इन आलोचनाओं को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) संस्कृत के ग्रंथों की श्रालोचना

संस्कृत के प्रसिद्ध प्रंथों की टीकायें शताब्दियों पहले से होती आ रही थीं। राजा लक्ष्मणसिंह के समय से विद्वानों का ध्यान प्रसिद्ध प्रंथों का अनुवाद करने की ओर भी गया। फलतः कुछ विद्वानों ने कालिदास के कुछ प्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया। द्विवेदी जी के इन अनुवादों में मूल-प्रंथों के भाव और चित्र न मिले। अनुवाद करने की प्रथा कुछ समय पहले ही हिंदी में अनुवाद करने की प्रथा कुछ समय पहले ही हिंदी में आई थी। अतः अनुवादों में दोप रह जाना, किसी सीमा तक, स्वाभाविक ही था। द्विवेदी जी ने इन्हों दोषों को हूँ इना शुरू किया। संवत् १६५४ (सन् १८६७) में उन्होंने 'श्रीवेंकटेश्वर-समाचार पत्र" तथा कालाकाँकर के 'हिंदोस्थान' में लाला सीताराम वी० ए०

प्रकाश पड़ता है। भाषा वे सरल चाहते थे, शुद्ध भी। श्रारम्भ में प्रायः दोनों ही बातें हिंदी में नहीं थीं। उन्हें इससे दुःख होता था। फलतः पिएडताऊ भाषा लिखनेवालों पर कटा इत करने में वे कोई कोरकसर न करते थे श्रीर व्याकरण श्रादि के देष दिखाने में भी वड़ी तत्परता से काम लेते थे। स्थूल रूप से इन्हीं तीन बातों की परिचयात्मक श्रालीचना वे किया करते थे।

समालोचना

उपर कहा जा चुका है कि आरंभ से ही द्विवेदीजी की अकृति आलोचनात्मक रही है। स्वभावतः अपने साहित्यिक जीवन-काल में उन्होंने सैकड़ों पुस्तकों की अपने ढंग से आलोचना की। इन आलोचनाओं की हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) संस्कृत के ग्रंथों की ग्रालोचना

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथों की टीकायें शतान्दियों पहले से होती आ रही थीं। राजा लक्ष्मणसिंह के समय से विद्वानों का ध्यान प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद करने की ओर भी गया। फलतः कुछ विद्वानों ने कालिदास के कुछ ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया। द्विवेदी जी को इन अनुवादों में मूल-ग्रंथों के भाव और चित्र न मिले। अनुवाद करने की प्रथा कुछ समय पहले ही हिंदी में आई थी। अतः अनुवादों में दोप रह जाना, किसी सीमा तक, स्वामाविक ही था। द्विवेदी जी ने इन्हीं दोषों को हूँ दना शुरू किया। संवत् १९४४ (सन् १८६७) में उन्होंने 'श्रीवेंकटेश्वर-समाचार पत्र" तथा कालाकाँकर के 'हिंदोस्थान' में लाला सीताराम वी० ए०

'स्तुति-अंथ' तक कहने में संकोचनहीं करते। तत्पश्चात् 'कालि-दास की निरंकुशता' के दर्शन हुए। इस आलोचनात्मक निवन्ध में कालिदास की कृतियों में कितपय दोप—उपमा की हीनता-उद्वेगजनक उक्ति, अनौचित्य-दर्शक उक्ति, व्याकरण-संबंधी अनौचित्य, नाम-संबंधी अनौचित्य, इतिहास-संबंधी अनौ-चित्य, यति-भंग, पुनरुक्ति, अधिकपदत्व, श्रुति-कटुत्व, क्रमभंगता आदि के दोप दिखाये हैं। यद्यपि पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने 'मनसाराम' के नाम से इस निवन्ध के विरोध में 'निरंकुशता-निदर्शन' शीर्षक एक लम्बा-चौड़ा लेख 'भारतिमन्न' में लिखा और बाद में अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की टिप्पिण्यों के साथ उसे पुस्तकाकार प्रकाशित भी कराया, तथापि समस्त हिंदी-भापा-मर्मज्ञों पर द्विवेदीजी की धाक वैठ गई; सवने उनका लोहा मान लिया।

यदापि 'नैषध-चिरत-चर्चा' के लिए श्री राधाकृष्णदास ने नागरी-प्रचारिणी सभा से १ जनवरी सन् १८६६ में लिखा था कि "यह लेख अद्वितीय हुआ है ऐसे (ऐ एक लाइन में है और से दूसरी में) ही लेख भाषा का गौरव बढ़ा सकते हैं," तथापि द्विवेदीजी के इन समालोचनात्मक निवन्धों में जिस आलोचना-पद्धित का अनुसरण किया गया है, आधुनिक दृष्टि से वह विशेष महत्त्व की न भी हो तो भी हिन्दी-साहित्य-सेवियों के लिए उस समय वही बहुत थी। लेखक या किव के हृद्य में बैठ कर पात्र, परिस्थिति और वस्तु आदि की विवेचना करना तो दूर, अपने हृद्य के भावों को आलोचना का रूप देकर साहस और निर्भयतापूर्वक व्यक्त कर देने की यह पद्धित भी, हिन्दी के लिए उस समय नई ही थी। समालोचक के लिए आलोच्य विषय का पूर्ण पंडित होना तो आवश्यक है ही, पर स्वभाव व प्रकृति की निर्भयता और विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों को उकराकर

'स्तुति-श्रंथ' तक कहने में संकोचनहीं करते। तत्परचान् 'कालि-दास की निरंकुशता' के दर्शन हुए। इस आलोचनात्मक निवन्ध में कालिदास की कृतियों में कितपय दोप—उपमा की हीनता-उद्देगजनक उक्ति, अनौचित्य-दर्शक उक्ति, व्याकरण-संबंधी अनौचित्य, नाम-संबंधी अनौचित्य, इतिहास-संबंधी अनौ-चित्य, यित-भंग, पुनकक्ति, अधिकपदत्व, श्रुति-कटुत्व, क्रमभंगता आदि के दोप दिखाये हैं। यद्यपि पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने 'मनसाराम' के नाम से इस निवन्ध के विरोध में 'निरंकुशता-निदर्शन' शीर्षक एक लम्बा-चौड़ा लेख 'भारतिमत्र' में लिखा और बाद में अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की टिप्पिण्यों के साथ उसे पुस्तकाकार प्रकाशित भी कराया, तथापि समस्त हिंदी-भाषा-मर्मज्ञों पर द्विवेदीजी की धाक वैठ गई; सवने उनका लोहा मान लिया।

यद्यपि 'नैपध-चरित-चर्चा' के लिए श्री राधाकृष्णदास ने नागरी-प्रचारिणी सभा से ४ जनवरी सन् १८६६ में लिखा था कि "यह लेख श्रद्धितीय हुआ है ऐसे (ए एक लाइन में है श्रीर से दूसरी में) ही लेख भाषा का गौरव वढ़ा सकते हैं," तथापि द्विवेदीजी के इन समालोचनात्मक निवन्धों में जिस श्रालोचना-पद्धित का श्रनुसरण किया गया है, श्राधुनिक दृष्टि से वह विशेष महत्त्व की न भी हो तो भी हिन्दी-साहित्य-सेवियों के लिए उस समय वही बहुत थी। लेखक या किव के हृद्य में बैठ कर पात्र, परिस्थिति श्रीर वस्तु श्रादि की विवेचना करना तो दूर, श्रपने हृदय के भावों को श्रालोचना का रूप देकर साहस श्रीर निर्भयतापूर्वक व्यक्त कर देने की यह पद्धित भी, हिन्दी के लिए उस समय नई ही थी। समालोचक के लिए श्रालोच्य विषय का पूर्ण पंडित होना तो श्रावश्यक है ही, पर स्वभाव व शकृति की निर्भयता श्रीर विभिन्न शकार के श्रलोभनों को ठुकराकर बात जो उस समय वे देखा करते थे, विषय-संबंधी थी। यदि लेखक ने किसी नये विषय पर प्रकाश डाला है और भारती-यता और प्राचीन संस्कृति के भावों का आदर किया है तो दिवेदीजी, ऐसी पुस्तक की प्रायः प्रशंसा किया करते थे। यदि लेखक अपनी मातृ-भाषा, आर्य-संस्कृति-विषयक विचारों का विरोध करता था तो द्विवेदीजी उसे वुरी तरह फटकारते थे।

दूसरी श्रोर हिंदी-लेखक भाषा श्रोर शैली के विषय में विलक्कत श्रसावधान रहते थे। व्याकरण की दृष्टि से शुद्धता, शेली की दृष्टि से स्थिरता श्रोर विचारों की संवद्धता उनकी पुस्तकों में नहीं दिखाई देती थी। द्विवेदीजी ने इस वात की समभा श्रोर समालोचनार्थ श्राई हुई पुस्तकों में तत्संवंधी तुटियों को दूँ इ-दूँ इकर निकालना शुरू किया। जिस लेखक ने इम विषय में धाँधली की उसकी उन्होंने बुरी तरह से ख़बर ली। फलत: नये विषयों पर पुस्तकों लिखी जाने लगीं श्रीर लेखक भाषा की शुद्धता श्रीर विचारों की स्पष्टता पर समुचित ध्यान देने लगे।

यहाँ एक वात स्मरण रखनी चाहिए। द्विवेदीजी हिंदी के पचपाती थे ख्रीर प्राचीन संस्कृत के भक्त भी। पर हिंदी का मस्तक जिन कियों ने ऊँचा किया है, जिन कियों को हम गर्व ख्रीर गौरव की टिंट से देखते हैं, जन तुलसीदास, स्रदास ख्रादि के काव्यों की उन्होंने खालाचना नहीं की। इसका प्रधान कारण यही जान पड़ता है कि ख्रारंभ में वे संस्कृत-कियों का ख्रध्ययन करते रहे ख्रीर जब 'सरस्वती' के मंपादक हो गये तब उन्हें इतना ख्रवकाश ही नहीं मिला कि हिंदी के कियों की क्रितियों का समुचित रूप से ख्रध्ययन करके विस्तृत खालोचना करते।

बात जो उस समय वे देखा करते थे, विषय-संबंधी थी। यदि लेखक ने किसी नये विषय पर प्रकाश डाला है और भारती-यता और प्राचीन संस्कृति के भावों का आदर किया है तो दिवेदीजी, ऐसी पुस्तक की प्रायः प्रशंसा किया करते थे। यदि लेखक अपनी मातृ-भाषा, आर्य-संस्कृति-विषयक विचारों का विरोध करता था तो द्विवेदीजी उसे बुरी तरह फटकारते थे।

दूसरी श्रोर हिंदी-लेखक भाषा श्रोर शेली के विषय में विलक्ठल श्रसावधान रहते थे। व्याकरण की हिंदि से शुद्धता, शेली की हिंदि से स्थिरता श्रीर विचारों की संवद्धता उनकी पुस्तकों में नहीं दिखाई देती थी। द्विवेदीजी ने इस वात को समभा श्रीर समालोचनार्थ श्राई हुई पुस्तकों में तत्संबंधी शृटियों को हूँद-हूँद्कर निकालना शुरू किया। जिस लेखक ने इस विषय में धाँधली की उसकी उन्होंने बुरी तरह से ख़बर ली। फलत: नये विषयों पर पुस्तकें लिखी जाने लगीं श्रीर लेखक भाषा की शुद्धता श्रीर विंचारों की स्पष्टता पर समुचित ध्यान देने लगे।

यहाँ एक वात स्मरण रखनी चाहिए। द्विवेदीजी हिंदी के पत्तपाती थे और प्राचीन संस्कृत के भक्त भी। पर हिंदी का मस्तक जिन कियों ने ऊँचा किया है, जिन कियों को हम गर्व और गौरव की दृष्टि से देखते हैं, उन तुलसीदास, स्रदास आदि के काव्यों की उन्होंने आलोचना नहीं की। इसका प्रधान कारण यही जान पड़ता है कि आरंभ में वे संस्कृत-कियों का अध्ययन करते रहे और जब 'सरस्वती' के मंपादक हो गये तब उन्हें इतना अवकाश ही नहीं मिला कि हिंदी के कियों की कृतियों का समुचित रूप से अध्ययन करके विस्तृत आलोचना करते।

किंचित् व्यंग्य की पुट दे देने से उनकी इस शैली में विशेष रोचकता आगई। इस शैली का एक उदाहरण 'नैपध-चरित-चर्चा और सुदर्शन' शीर्पक लेख हैं। 'सरस्वती' में शायद यही उनका सबसे पहला लेख था। यह १६०१ के आक्टोबर मास की सरस्वती (भाग १, संख्या १०) में प्रकाशित हुआ था। इसमें द्विवेदी जी ने सुदर्शन-संपादक की 'नेपध-चरितचर्चा' की आलो-चना का उत्तर दिया है। भाषा में प्रौढ़ता है, विचारों में दढ़ता और तार्किक व्यंग्य—

''श्रीहर्ष ने क्या हमारा घोड़ा खोला था जो हम उस पर अप-सन्न होते।''

इस शैली का दूसरा रूप 'कालिदास की निरंकुशता' के विरुद्ध लिखी गई लेखमाला के उत्तर में लिखा हुआ 'प्राचीन कवियों के काठ्यों की दोषोद्भावना'-शीर्षक लेख है। यह १६११ के अप्रैल, मई और जून मास की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में द्विवेदी जी ने विभिन्न भाषा-मर्मक्षों के दिखाये हुए संस्कृत-कियों के दोषों को उद्धृत करके तर्क-द्वारा यह प्रमाणित करने की चेष्टा की थी कि प्राचीन किययों के दोष दिखाना कोई पाप नहीं है, जैसा उनके कुझ विरोधी सममते थे। इस शैली का तीसरा उदाहरण 'हिंदी-भाषा की उत्पत्ति'-शीर्षक निवंध है।

(२) दूसरे प्रकार की शैली व्यंग्यपूर्ण है। यों तो द्विवेदी जी व्यंग्य के वादशाह ही थे; उनके प्रायः प्रत्येक नोट में कुछ न कुछ व्यंग्य अवश्य मिलेगा। यहाँ हम नीचे उनकी इस प्रकार की शैली के कुछ नमूने देते हैं—

'भाषापद्मव्याकरण' की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं— फा० ७ किंचित् व्यंग्य की पुट दे देने से उनकी इस शैली में विशेष रोचकता आगई। इस शैली का एक उदाहरण 'नैपध-चरित-चर्चा और सुदर्शन' शीर्पक लेख हैं। 'सरस्वती' में शायद यही उनका सबसे पहला लेख था। यह १६०१ के आक्टोबर मास की सरस्वती (भाग १, संख्या १०) में प्रकाशित हुआ था। इसमें द्विवेदी जी ने सुदर्शन-संपादक की 'नैपध-चरितचर्चा' की आलो-चना का उत्तर दिया है। भाषा में प्रौढ़ता है, विचारों में दढ़ता और तार्किक व्यंग्य—

''श्रीहर्ष ने क्या हमारा घोड़ा खोला था जो हम उस पर अप्र-सन्न होते।''

इस शैली का दूसरा रूप 'कालिदास की निरंकुशता' के विरुद्ध लिखी गई लेखमाला के उत्तर में लिखा हुआ 'प्राचीन कवियों के काव्यों की दोषोद्भावना'-शिर्षक लेख है। यह १६११ के अप्रैल, मई और जून मास की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में द्विवेदी जी ने विभिन्न भाषा-मर्भक्कों के दिखाये हुए संस्कृत-कवियों के दोषों को उद्धृत करके तर्क-द्वारा यह प्रमाणित करने की चेष्टा की थी कि प्राचीन कवियों के दोष दिखाना कोई पाप नहीं है, जैसा उनके कुझ विरोधी समभते थे। इस शैली का तीसरा उदाहरण 'हिंदी-भाषा की उत्पत्ति'-शीर्षक निवंध है।

(२) दूसरे प्रकार की शैली व्यंग्यपूर्ण है। यों तो दिवेदी जी व्यंग्य के वादशाह ही थे; उनके प्रायः प्रत्येक नोट में कुछ न कुछ व्यंग्य अवश्य मिलेगा। यहाँ हम नीचे उनकी इस प्रकार की शैली के कुछ नमूने देते हैं—

'भाषापद्यव्याकरण' की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं

फा० ७

"थार्य-समान की कृपा से सनातनधर्मियों में भी धनेक संरचक उत्पन्न हो गये हैं। शास्त्रार्थ करना, लेक्चर देना और ज़रूरत पड़ने पर कीचड़ उछालना भी ये लोग ृख्व सीख गये हैं। कानपुर ज़िले के 🗙 अम में 🗙 🗙 राम शाखी नाम के एक महीपदेशक हैं। 'यार्य-समाजियों के महासोह-निवारणार्थ ईश्वर अर्ध और शास्रविचार में रत हैं। श्रीर सबसे बड़ी बात यह कि श्रपने प्रतिपत्ती समाजियों की बरह श्राप भी बड़े मधुरभाषी हैं। 'साइंस' के भी श्राप उत्कट ज्ञाता मालूम होते हैं, क्योंकि आपने जिखा है कि-"चन्द्रमा विजक्त बुढ़ा हो गया है। वह ज़्यादा से ज़्यादा पर्मंच सौ वर्ष तक काम दे सकेगा।" थापकी राय है-"चैतन्यता (!) से ईश्वर-सिद्धि पुष्ट है, श्रकाट्य है, श्रतएव मान्य है"। ऐसे विद्वान् श्रीर ऐसे संश्कृतज्ञ के तकों और सिद्धा-तों पर हम जैसे अल्पन क्या कह सकते हैं! शास्त्री जी ने पहली प्रस्तक के ५० प्रष्ट लिखकर, प्रस्तुत विषय का उपसंहार किये विना हो. उसकी समाप्ति कर दी है, श्रीर टाइटिल पेन लगाकर उसकी श्रतग पुस्तक बना डाली है। दूसरी पुस्तक का श्रारम्म विना कुछ कहे सुने या भूमिका लिखे फिर मा वें पृष्ट से किया है। इसका कारण समक्त में नहीं थाया । थान-कल तो इस तरह पुस्तक लिखी नहीं जातीं। येदों के ज़माने में लिखी जाती रही हों तो मालम नहीं !"

 \times \times \times \times

पर व्यक्तिगत कटा इ करते समय वे व्यंजना से अधिक सहायता लेते हैं। सण्ट है कि इस शैली से प्रहार करने में वितरहा बढ़ने की कम संभावना रहती है और चोट भी ठीक निशाने पर वैठती है। इस ढंग के नमूने देखिए—

"खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट-जिस खोज की यह रिपोर्ट है, उसके सुपिरंटेंहेंट थे श्रीयुत पंडित स्थामविहारी मिश्र, एम० ए० अ

"थार्य-समान की कृपा से सनातनधर्मियों में भी धनेक संरचक उत्पन्न हो गये हैं। शास्त्रार्थ करना, लेक्चर देना छौर ज़रूरत पड़ने पर कीचड़ उद्यालना भी ये लोग खून सीख गये हैं। कानपुर ज़िले के 🗙 अाम में 🗙 🗙 राम शाखी नाम के एक महीपदेशक हैं। 'श्रार्य-समाजियों के महामोह-निवारणार्थ ईरवर श्रर्थ श्रीर शास्रविचार में रत हैं। श्रौर सबसे बड़ी वात यह कि श्रपने प्रतिपत्ती समाजियों की तरह त्राप भी बड़े मधुरभाषी हैं। 'साइंस' के भी त्राप उत्कट ज्ञाता मालूम होते हैं, क्योंकि आपने लिखा है कि-"चन्द्रमा विलक्षक . बूढ़ा हो गया है। वह ज़्यादा से ज़्यादा पाँच सौ वर्ष तक काम दे सकेगा।" त्यापकी राय है--"चैतन्यता (!) से ईश्वर-तिद्धि पुष्ट है, श्रकाट्य है, श्रतएव मान्य है"। ऐसे विद्वान् श्रीर ऐसे संस्कृतज्ञ के तकों श्रीर सिद्धान्तों पर हम जैसे श्रत्पत्र क्या कह सकते हैं! शास्त्री की ने पहली पुस्तक के ५० पृष्ट लिखमर, प्रस्तुत विषय का उपसंहार किये विना हो, उसकी समाप्ति कर दी है, श्रीर टाइटिल पेन लगाकर उसकी श्रलग पुस्तक बना दाली है। दूसरी पुस्तक का श्रारम्भ विना कुछ कहे सुने या भूमिका लिखे फिर ८३ वें पृष्ठ से किया है। इसका कारण समक में नहीं थाया। थाज-कल तो इस तरह पुरनकें लिखी नहीं जातीं। वेदों के ज़माने में लिखी जाती रही हों तो मालूम नहीं !"

 \times \times \times \times

पर व्यक्तिगत कटा त करते समय वे व्यंजना से ऋधिक सहायता लेते हैं। सफ्ट है कि इस शैली से प्रहार करने में वितर वादने की कम संभावना रहती है और चोट भी ठीक निशाने पर बैठती है। इस ढंग के नमूने देखिए—

"खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट—जिस खोज की यह रिपोर्ट है, उसके सुपरिंटेंडेंट थे श्रीयुत पंडित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० ३ 'सरकार की हितेयणा और दान-दयालुता की एक वात लिखना हम मूलं ही गये। उसने पागलों के मनोरंजन के लिए भी यहुत से प्रबंध कर रखे हैं। पागलों के लिए पनीसी, शतरंज और ताश खेज के लिए वक्त मुकरर है। वे लोग फुट्याज और टेनिस भी खेलते हैं व हर रिवार के। ढोलक यजती है, मॅं जीरे की भी किट किट होती है और साथ ही दिल लुभानेवाला गाना भी होता है। जनावेश्वाली, रंडियाँ भी कभी-कभी पागलखानों में लुमालुम करती हुई पधराई जाती हैं। वे नाचते समय अपने हावमाव दिलाकर और गानर सुनाकर हर कला के पागलों के दिमाग की ठिकाने लाने की चेष्टा करती हैं। पर एक वात की कमी है। पागलखानों में कुछ ब्रामोकों भी रहने चाहिए। उन पर बजाने के लिए और रेकार्डों के साथ एक एक रिकार्ड पीछे से बजाने के लिए, यह भी रहना चाहिए—

राज करें थंगरेज़ सदा ही।"

(सरस्वती, चान्टोवर १६२७)

किसी विलायती डाक्टर ने आँसुओं की कीटासु-नाशक शक्ति का पता लगाकर अनेक रोगों पर उसके सफल प्रयोगों का अनुभव प्राप्त किया। विलायती पत्रों ने भी उस आविष्कार का ख़ूब विज्ञापन किया। सामयिक वात थी और अनोखी भी थी, अतः द्विवेदी जो भी उसकी उपयोगिता की प्रशंसा कैसे न करते। पर उनकी प्रशंसा का ढङ्ग बड़ा चुटीला था व तारीफ के सिल्सिले में वे लिखते हैं—

"श्रोपिधयों में काम श्राने के लिए श्रभी जैसे बहुत से श्रादमीर श्रपना रक्त वेचते हैं, वैसे ही रुवकड़ कुमारियाँ श्रीर कामिनियाँ घरों श्राँसू वेचा करेंगी। इससे उन्हें न कोई कप्ट होगा श्रीर न कोई हानि ही होगी। सुबह उठीं श्रीर रोका श्राँसुश्रों से एक गिलास भर दिया। ''सरकार की हितेवणा और द्रान-दयालुता की एक वात लिखंना हम भूलं ही गये। उसने पागलों के मनोरंजन के लिए भी यहुत से प्रबंध कर रखे हैं। पागलों के लिए पचीसी, शतरंज और ताश खेजने के लिए वक्त मुकरर है। वे लोग फुटयाल और टेनिस भी खेलते हैं। हर रिववार के। डोलक यजती है, मँजीरे की भी किट किट होती है और साथ ही दिल लुभानेवाला गाना भी होता है। जनावेश्राली, रंडियाँ भी कभी-कभी पागलखानों में छुमाछुम करती हुई पधराई जाती हैं। वे वाचते समय अपने हावमाव दिलाकर और गानर सुनाकर हर कन्ना के पागलों के दिमाग के। ठिकाने लाने की चेटा करती हैं। पर एक बात की कमी है। पागलखानों में छुछ शामोफ़ोन भी रहने चाहिए। उन पर वजाने के लिए और रेकाडों के साथ एक एक रिकार्ड पीछे से बजाने के लिए, यह भी रहना चाहिए—

राज करें श्रेंगरेज़ सदा ही।"

(सरस्वती, छाक्टोवर १६२७)

किसी विलायती डाक्टर ने ऋाँ मुझों की कीटा गु-नाशक शक्ति का पता लगाकर अनेक रोगों पर उसके सफल प्रयोगों का अनुभव प्राप्त किया। विलायती पत्रों ने भी उस आविष्कार का ख़ूब विज्ञापन किया। सामयिक वात थी और अनोखी भी थ़ी, अतः द्विवेदी जो भी उसकी उपयोगिता की प्रशंसा कैसे न करते। पर उनकी प्रशंसा का ढङ्ग बड़ा चुटीला था । तारीफ के सिलसिले में वे लिखते हैं—

"श्रोपिधयों में काम थाने के लिए श्रभी जैसे बहुत से श्रादमी श्रपना रक्त वेचते हैं, वैसे ही रुवकड़ कुमारियाँ श्रीर कामिनियाँ घरों श्रास् वेचा करेंगी। इससे उन्हें न कोई कष्ट होगा और न कोई हाति ही होगी। सुबह उठीं श्रीर रोका श्रासुश्रों से एक गिलास भर दिया। The language of the criticism as that of a mimic.

कहकर कटाच किया गया था। द्विवेदी जी ने इसका उत्तर देते हुए लिखा था—

If such is really the case the public have no reason to complain; on the other hand, they should thank me for belending instructions with amusenments.

हिनेदी जी की व्यंग्य-शेजी का यही प्रधान उद्देश्य था। समालोचना करते समय किमी लेखक या किव की हँसी, उसका अपमान करने के लिए वे नहीं करते थे। उनका उद्देश्य केवल यह था कि लेखक सावधान हो जायँ खोर कोई ऐसा काम न करें जो खाचार्यत्व या पाण्डित्य के खनुरूप न हो।

(३) उनकीं रौली का तीसरा हुप त्रोजप्रधान है। लेखकों ने जब-जब भारतीयता की भावना का विरोध किया या त्रमुचित प्रशंसा त्रथवा दोपारोपण करने की चेष्टा की, तब-तब द्विवेदी जी ने उनकी दुरी तरह फटकारा। इस प्रकार के कथन में त्रोज का होना स्वाभाविक भी है। यहाँ हम उनकी इस शैली का एक उदाहरण देते हैं। एक महाराय ने 'आँगरेजी राज्य के सुख'-शीपक एक पुस्तक लिखी। उसकी भूमिका का कुछ त्रंश यों है—

Behind and below the ostensible manifestations of loyalty and devotion, there runs an under-current of discontent and unrest brought The language of the criticism as that of a mimic.

कहकर कटाच किया गया था। द्विवेदी जी ने इसका उत्तर देते हुए लिखा था—

If such is really the case the public have no reason to complain; on the other hand, they should thank me for belending instructions with amusenments.

द्विवेदी जी की व्यंग्य-शेजी का यही प्रधान उद्देश्य था। समालोचना करते समय किमी लेखक या किव की हँमी, उसका अपमान करने के लिए वे नहीं करते थे। उनका उद्देश्य केवल यह था कि लेखक सावधान हो जायँ श्रोर कोई ऐसा काम न करें जो श्राचार्यत्व या पारिडत्य के श्रनुरूप न हो।

(३) उनकीं रौली का तीसरा रूप खोजप्रधान है। लेखकों ने जब-जब भारतीयता की भावना का बिरोध किया या ख्रजुचित प्रशंसा ख्रथवा दोपारोपण करने की चेष्टा की, तब-तब द्विवेदी जी ने उनको बुरी तरह फटकारा। इस प्रकार के कथन में खोज का होना स्वाभाविक भी है। यहाँ हम उनकी इस शिली का एक उदाहरण देते हैं। एक महाराय ने 'खँगरेजी राज्य के सुख'-शीपक एक पुस्तक लिखी। उसकी भूमिका का कुछ खंश यों है—

Behind and below the ostensible manifestations of loyalty and devotion, there runs an under-current of discontent and unrest brought सभी दूध के धोये हैं; किसी में विरोध-भावना है ही नहीं। वे तो लेखक को यह मुभाना चाहते थे कि इस प्रकार, विना समभो-त्रुभे, वेतुकी वातें, केवल निज स्वार्थसाधन-हेतु, करना निन्दनीय है। साहित्य-सेबी होने का दावा करनेवाले महानुभावों ने भी जब इसी प्रकार की अनर्गल वातें वकी हैं तब द्विवेदी जी ने इसी शेली का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों में उनका उद्देश्य केवल यह रहता था कि लेखक स्वयं लिजन हो और स्थिति तथा अपना उत्तरदायित्व समभक्तर काम करे।

दूसरों के विचार

द्विवेदी जी की इस श्रालोचना-पद्धति की स्वयं विवेचना करने के पहले उसके विषय में दूसरों के विचार जान लेना श्रावश्यक है। जब द्विवेदी जी ने 'कालिदास की निरंकुशता' दिखाने का प्रयत्न किया तब विद्वानों ने उन पर तरह-तरह के श्राचेप किये श्रोर कुछ तो जिरोधावेश में सज्जनता की सीमा भी पार कर गये। 'सद्धर्म-प्रचारक'-नामक पत्र के सम्पादक ने तो यहाँ तक कह डाला—

"प्रयाग को सरस्वती, पिछले वर्ष, श्रपने योग्य संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी के रोगार्त हो जाने से फीकी पड़ गई थी। श्रव दो मास से फिर द्विवेदी जी ने उसका संपादन कार्य थारंभ कर दिया है। श्रापका समालोचनारूपी नश्तर दिनपिविदन तेज हो रहा है। पहले थापने उससे पाट्य पुस्तकों थीर यानू सीताराम की किवताथों के श्रंगों की चीर-फाइ की थी। उसके पीछे भारतेन्द्र हिरिचंद्र जी तथा यायू गदाधरसिंह थादि पुराने लेखकों की सड़ी दुई भाषा के कीढ़े श्रापने निकाले थे। श्रव, किवकुलगुरु कालिदास की बारी शाई है। ऐसा दीखता है कि किवकुलगुरु की भाषा पुरानी

सभी दूध के धोये हैं; किसी में विरोध-भावना है ही नहीं। वे तो लेखक का यह सुभाना चाहते थे कि इस प्रकार, विना समभे-वृभे, वेतुकी वातें, केवल निज स्वार्थसाधन-हेतु, करना निन्दनीय है। साहित्य-सेवी होने का दावा करनेवाले महानुभावों ने भी जब इसी प्रकार की अनर्गल वातें वकी हैं तब द्विवेदी जी ने इसी शेली का प्रयोग किया हैं। ऐसे स्थलों में उनका उद्देश्य केवल यह रहता था कि लेखक स्वयं लिजन हो और स्थित तथा अपना उत्तरदायित्व सममकर काम करे।

दूसरों के विचार

द्विवेदी जी की इस श्रालोचना-पद्धित की स्वयं विवेचना करने के पहले उसके विषय में दूसरों के विचार जान लेना श्रावर्यक है। जब द्विवेदी जी ने 'कालिदास की निरंकुशता' दिखाने का प्रयत्न किया तब विद्वानों ने उन पर तरह-तरह के श्राचेप किये और कुछ तो िरोधावेश में सज्जनता की सीमा भी पार कर गये। 'सद्धम्म-प्रचारक'-नामक पत्र के सम्पादक ने तो यहाँ तक कह डाला—

''श्रयाग को सरस्वती, पिछले वर्ष, छपने योग्य संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी के रोगार्त हो जाने से फीकी पड़ गई थी। छव दो मास से फिर द्विवेदी जी ने उसका संपादन कार्य धारंभ कर दिया है। छापका समालोचनारूपी नरतर दिनष्रतिदिन तेज हो रहा है। पहले छापने उससे पाठ्य पुस्तकों छौर वाबू सीताराम की कित्ताशों के छंगों की चीर फाइ की थी। उसके पीछे भारतेन्दु हिरश्चंद्र जी तथा वाबू गदाधरसिंह छादि पुराने लेक्कों की सड़ी हुई भाषा के कीड़े छापने निकाले थे। छव, किवकुलगुरु का जिदास की बारी छाई है। ऐसा दीखता है कि किवकुलगुरु की भाषा पुरानी

भी समालोचना करेंगे। जो दोग प्राचीनों की पुस्तकों की समा-लोचना के ख़िलाफ हैं वे, थौर, कतिपय हमारे थन्य मिश्र भी ऐक्षी ही तर्कना करते हैं।"

इस टिप्पणी में जा संकेत किया गया है वही व्यव-हार द्विवेदी जी के साथ, संस्कृत-कवियों के दोप दिखाने पर, किया गया था। इस विरोध का कारण जानने के लिए मैंने द्विवेदी जी की 'कालिदास की निरंकुराता' भी ग़ौर से देखी और मनसाराम जी की 'निरंकुशता-निदर्शन' का भी अध्ययन किया। ठंडे दिल से दोनों पत्तों के विद्वानों की कुछ सम्मतियाँ भी देख गया। द्विवेदी जी ने जो दोप दिखाये हैं वे दोप हैं या नहीं, मनसाराम जी ने उनका जो खंडन किया है, वह यथार्थ है या नहीं, इस विषय पर तो कुछ कहने की हममें याग्यता नहीं। हाँ, इतना लिखना हम आवश्यक समभते हैं कि पन्न-विपन्न के बहुत-से विद्वान द्विवेदी जी और उनके उद्देश्य की, कम से कम इस विषय में, समभे नहीं। द्विवेदी जी ने प्राचीन कवियों की समालोचना तो की ही नहीं है। उन्होंने तो संस्कृत-समालाचकों के कालिदास की कृतियों में दिखाये हुए दोपों का श्रनुवाद-सा करके पाठकों के सामने रख दिया है। यह बात उन्होंने अपने एक पत्र में वाबू कालिदास जी कपूर के। लिखी थी। पत्र ३१-१-१८ के। लिखा गया था। उसमें उन्होंने लिखा था-

"निरंकुशता का उद्देश्य निंदा नहीं। उसका श्रधिकांश क्या, श्रायः सर्वेश श्राचीन टीकाकारों का ही माल है।"

अतः विरोध की कहीं गुंजाइश ही नहीं थी और यदि विरोध किया जाना ही चाहिए था तो द्विवेदी जी का नहीं, बरन भी समालोचना करेंगे। जो दोग प्राचीनों की पुस्तकों की समा-लोचना के ख़िलाफ़ हैं ये, श्रीर, कतिपय हमारे श्रन्य मिश्र भी ऐसी ही तर्कना करते हैं!"

इस टिप्पणी में जा संकेत किया गया है वही व्यव-हार द्विवेदी जी के साथ, संस्कृत-कवियों के दोप दिखाने पर, किया गया था। इस विरोध का कारण जानने के लिए मैंने द्विवेदी जी की 'कालिदास की निरंकुशता' भी ग़ौर से देखी श्रोर मनसाराम जी की 'निरंकुशता-निदर्शन' का भी श्रध्ययन किया। ठंडे दिल से दोनों पत्तों के विद्वानों की कुञ्च सम्मतियाँ भी देख गया। द्विवेदी जी ने जो दोप दिखाये हैं वे दोप हैं या नहीं, मनमाराम जी ने उनका जो खंडन किया है, वह यथार्थ है या नहीं, इस विषय पर तो कुछ कहने की हममें याग्यता नहीं। हाँ, इतना लिखना हम आवश्यक सममते हैं कि पत्त-विपत्त के वहुत-से विद्वान् द्विवेदी जी श्रीर उनके उद्देश्य की, कम से कम इस विषय में, समफे नहीं। द्विवेदी जी ने प्राचीन कवियों की समालोचना तो की ही नहीं है। उन्होंने तो संस्कृत-समालाचकों के कालिदास की कृतियों में दिखाये हुए दोपों का अनुवाद-सा करके पाठकों के सामने रख दिया है। यह बात उन्होंने अपने एक पत्र में वाबू कालिदास जी कपुर की लिखी थी। पत्र ३१-१-१८ की लिखा गया था। उसमें उन्होंने लिखा था—

"निरंकुशता का उद्देश्य निंदा नहीं। उसका श्रिधकांश क्या, श्रायः सर्वेश्य प्राचीन टीकाकारों का ही माल है।"

श्रतः विरोध की कहीं गुंजाइश ही नहीं थी श्रीर यदि विरोध किया जाना ही चाहिए था तो द्विवेदी जी का नहीं, वरन ृख्ब विको होवे। श्रोर कोई कार्य ख़िद्मत मेरे याग्य होय ते। विविष् वसरोचरम तामील की जावेगी।

> इति ग्रुभम् । भवदीय पुस्तकाष्यच''

द्विवेदीजी ने कोई खिदमत योग्य कार्य लिखने के वजाय 'सरस्वती' (भाग १६, संख्या ४) में यह लिख दिया—

"प्क महाशय ने हिंदी का एक छोटा-सा व्यावस्य बनाया है। वह 'चात्रार्थ कहा थ' है। इस पुस्तक की एक पुरानी थौर महामैली कापी से हमें किसी ने कृतार्थ किया है। पुस्तक के थावरण-पृष्ठ की पोठ पर पेंसिल से लिखा हुआ उर्दू में कुछ हिसाब-किताब भी दर्ज है। इसके साथ ही एक पत्र हमें मिला है, जिस पर किसी के दस्तख़त नहीं हैं।"

यह स्पष्टवादिता लोगों को उनका विरोधी न बना देती तो क्या करती ? 'विश्वकाप' की आलोचना करते हुए द्विवेदी जी . ने जून, १६२७ की सरस्वती में लिखा—

'श्रालोचना से प्रकाशकों का मतलय इस कोप की देवल प्रशंसा या विज्ञापन से है। उनके पत्र से यही बात सूचित होती है; क्योंकि उन्होंने ग्रपने पत्र में लिखा है—

A good deal of the prospects of the book depends on your appreciation of its merit and public announcements of the same.

परन्तु हमारा कर्तव्य हिन्दी-विश्व-कीप के प्रकाशकों की श्राज्ञा का पालन करने के सिवा श्रीर भी कुछ है। जो सजन इस लेख को ुख्व विको होवे। श्रौर केाई कार्य ख़िदनत मेरे याग्य होग ता खिखिए वसरोचरम तामील की लावेगी।

> इति ग्रुभम्। भवदीय पुस्तकाष्यच''

द्विवेदीजी ने कोई खिदमत योग्य कार्य लिखने के वजाय 'सरस्वती' (भाग १६, संख्या ४) में यह लिख दिया—

"एक महाशय ने हिंदी का एक छोटा-सा व्याकरण बनाया है। वह 'चात्रार्थ कहा थ' है। इस पुस्तक की एक पुरानी छोर महामैली कापी से हमें किसी ने कृतार्थ किया है। पुस्तक के धावरण-पृष्ठ की पीठ पर पेंसिल से लिखा हुआ उद् में कुछ हिसाय-किताव भी दर्ज है। इसके साथ ही एक पत्र हमें मिला है, जिस पर किसी के दस्तख़त नहीं हैं।"

यह स्पष्टवादिता लोगों को उनका विरोधी न बना देती तो क्या करती ? 'विश्वकीप' की आलोचना करते हुए द्विचेदी जी ने जून, १६२७ की सरस्वती में लिखा—

"श्रालोचना से प्रकाशकों का मतलय इस कोप की देवल प्रशंसा या विज्ञापन से है। उनके पत्र से यही वात सूचित होती है; क्योंकि उन्होंने ग्रपने पत्र में लिखा है—

A good deal of the prospects of the book depends on your appreciation of its merit and public announcements of the same.

परन्तु हमारा कर्तन्य हिन्दी-विश्व-केष के प्रकाशकों की श्राज्ञा का पालन करने के सिवा श्रीर भी कुछ है। जो सज्जन इस लेख को हिन्दी-पुस्तकों की आलोचना से होनेवाले लाए की तो उनके विरोधियों ने भी स्वीकार किया था। वे जानते थे कि उनकी की हुई आलोचना का हिन्दी में ही नहीं, उसके दाहर भी बड़ा आदर है, और जिस पुस्तक की आलोचना 'सरस्वती' में निकल जायगी उसकी थोड़ी-बहुत प्रतियाँ अवश्य विक जायगी। 'पुस्तकाध्यच' तथा 'हिंदी-विश्व-कोप" के प्रकाराकों के उक्त पत्रों से भी यह वात स्तृष्ट हो जाती है। न्ययं द्विवेदी जी ने ही इस वात को कई वार कहा था। जनवरी, सन् १६०० में ही उन्हें अपनी आलोचना-विषयक सफलता कर अनुमान हो गया था। माँसी से उन्होंने लिखा था—

The public acknowledged the good result produced by my work as a critice, and the fact of not a single newspaper contradicting the defects of the books that I have exposed, proves that the public has accepted my views. That my reviews have done ample service to the saqse of Hindi literature is evident from the action of the reviser of the 3rd Hindi Reader who has adopted nearly three-fourths of the suggestions made by me.

प्रभाव श्रीर समीचा

यद्यपि द्विवेदी जी का समालोचना-सम्बन्धी आदर्श वहुत ऊँचा था, तथापि उनकी समालोचनायें विवेचनात्मक न होकर केवल परिचयात्मक ही हैं, मनन की विशेष सामग्री उनमें नहीं हैं। इस बात की स्वीकार करते हुए उन्होंने एक पत्र वाबू कार्ति- हिन्दी-पुस्तकों की आलोचना से होनेवाले लाग की तो उनके विरोधियों ने भी स्वीकार किया था। वे जानते थे कि उनकी की हुई आलोचना का हिन्दी में ही नहीं, उसके दाहर भी बड़ा आदर है, और जिस पुस्तक की आलोचना 'सरस्वती' में निकल जायगी उसकी थोड़ी-चहुत प्रतियाँ अवश्य विक जायँगी। 'पुस्तकाध्यच्च' तथा 'हिंदी-विश्व-केषि" के प्रकाराकों के उक्त पत्रों से भी यह वात स्मष्ट हो जाती है। न्वयं द्विवेदी जी ने ही इस वात को कई वार कहा था। जनवरी, सन् १६०० में ही उन्हें अपनी आलोचना-विषयक सफलता कर अनुमान हो गया था। माँसी से उन्होंने लिखा था—

The public acknowledged the good result produced by my work as a critice, and the fact of not a single newspaper contradicting the defects of the books that I have exposed, proves that the public has accepted my views. That my reviews have done ample service to the saqse of Hindi literature is evident from the action of the reviser of the 3rd Hindi Reader who has adopted nearly three-fourths of the suggestions made by me.

प्रभाव श्रीर समीचा

यद्यपि द्विवेदी जी का समालोचना-सम्वन्धी आदर्श वहुत ऊँचा था, तथापि उनकी समालोचनायें विवेचनात्मक न होकर केवल परिचयात्मक ही हैं, मनन की विशेष सामग्री उनमें नहीं है। इस बात की स्वीकार करते हुए उन्होंने एक पत्र वावू कालि- श्रीर महेश तीनों की श्रावश्यकता रही है श्रीर रहेगी। यदि ब्रह्मा श्रीर विष्णु का काम होता रहा श्रीर शिव श्रास्ते वालों को साथ लेकर अपने संहार-कार्य में सं रान र हुए तो साहित्य-सृष्टि के सभी कार्य श्रव्यवस्थित हो नष्ट हा जायगे।

हाँ, यह दूसरी बात है कि एक सावारण सामाजिक व्यक्ति के लिए निष्पत्त न्यागाधीश बन जाना सरल नहीं है। सा हत्नी- न्नित की सात्त्विक प्रेरणा से प्रेरित होकर जो द्विवेदों जा समा- लोचना किया करते थे, स्वयं उनके विषय में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे संदेव निष्पत्त रहे हैं। निष्पत्त विवेचना का दम भरनेवालों को श्रीयुत नवीनचन्द्र का यह कथन रमरण रखना चाहिए—

'यह तो निश्चित है ही कि कोई मी मनुष्य अपने चिर नालाजित संस्कारों और धारणाओं के किन्द्र कोई बात लिख ही नहीं सन्ता। तब उसकी समाजोचना निष्मत कैने हो सकतो है ? हमारा की यह ज्याल है कि जो लोग निष्मत होने का दावा रखते हैं, वे मार्गो अपनी हिस्सारता सिद्ध करना चाहते हैं।''

—सरस्वती (भा० २३, सं० १, ५० १७)

फिर मी हम यही कहेंगे कि सचा समालोचक साहित्य और समाज को निष्पत्त होकर आलोचना करता है। वह चाहता है कि साहित्य और समाज में छाई हुई निस्तव्यता भंग कर दी जाय और लेखकों तथा समाज के व्यक्तियों की उनकी हीनना और तुटि से इस प्रकार परिचित करा दिया जाय कि वे उन देशों और तुटियों की दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जायँ। दिवेदी जी ने भी यही किया। समाज की वात जाने दीजिए, साहित्यिक च्रेत्र में आरंभ से ही उनका उद्देश्य उच कोटि के साहित्य की और जनता का ध्यान आकर्षित करता रहा है। श्रीर महेश तीनों की श्रावश्यकता रही है श्रीर रहेगी। यदि ब्रह्मा श्रीर विष्णु का काम होता रहा श्रोट शिव श्रवने गर्णों को साथ लेकर श्रवने संहार-कार्य में सं रान । हुए तो साहित्य-सृष्टि के सभी कार्य श्रव्यवस्थित हो नष्ट हा जायगे।

हाँ, यह दूसरी बात है कि एक सावारण सामाजिक व्यक्ति के लिए निष्पत्त न्यायाधीरा बन जाना सरल नहीं है। सा हत्यी-त्रित की सात्त्विक प्रेरणा से प्रेरित होकर जो दिवेदों जा समालोचना किया करते थे, स्वयं उनके विषय में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे सदैव निष्पत्त रहे हैं। निष्पत्त विवेचना का दम भरनेवालों को श्रीयुत नवीनचन्द्र का यह कथन रमरण रखना चाहिए—

'यह तो निश्चित है ही कि कोई भी मनुष्य अपने चिर प्तावाजित संस्कारों और धारणाओं के क्विद्ध कोई बात लिख ही नहीं एकता। तब उसकी समाजोचना निष्मत कैके हो सकती है ? हमारा ते। यह स्वाल है कि जो लोग निष्मत होने का दावा रखते हैं, वे मार्गों अपनी रिस्सारता सिद्ध करना चाहते हैं।''

—सरस्वती (भा० २३, सं० १, ५० १७)

फिर भी हम यही कहेंगे कि सबा समालोचक साहित्य और समाज को निष्पत्त होकर आलोचना करता है। वह चाहता है कि साहित्य और समाज में छाई हुई निस्तव्यता मंग कर दी जाय और लेखकों तथा समाज के व्यक्तियों को उनको ही नना और तुटि से इस प्रकार परिचित करा दिया जाय कि वे उन देखों और तुटियों के। दूर करने के लिए कटिवद्ध हो जायँ। दिवेदो जी ने भो यही किया। समाज की वात जाने दीजिए, साहित्यिक चेत्र में आरंभ से ही उनका उद्देश्य उच कोटि के साहित्य की और जनता का ध्यान आकर्षित करता रहा है। बड़े, सभी प्रकार के दोपों का दिग्दर्शनमात्र कराया था तथा आगे चलकर संस्कृत के अनेक सुप्रसिद्ध कवियों की विशेषता-परिचायक सभीचा की थी, जिसे. देखकर हिंदी-साहित्य-चेत्र में धाँधली मचानेवाले अनिधकारी लोगों ने अनिधकार की चर्चा करना ही छोड़ दिया, वह कालांतर में पूर्ण हुआ और समा-लोचना साहित्य का प्रधान अंग समभी जाने लगी। फलतः साहित्य-सेवियों का ध्यान साहित्य के इस नवीन अंग की पूर्ति की ओर भी गया। छुझ ही दिनों में आलोचना विषय पर अनुवादित और मौलिक प्रथ हिंदी में दिखाई देने लगे जिससे उच कोटि के साहित्य की पुस्तकें भी लिखी जाने लगीं।

बड़े, सभी प्रकार के दोपों का दिग्दर्शनमात्र कराया था तथा त्रागे चलकर संस्कृत के अनेक सुप्रसिद्ध कियों की विशेषता-परिचायक समीन्ना की थी, जिसे. देखकर हिंदी-साहित्य-चेत्र में धाँधली मचानेवाले अनिधकारी लोगों ने अनिधकार की चर्चा करना ही छोड़ दिया, वह कालांतर में पूर्ण हुआ और समा-लोचना साहित्य का प्रधान अंग समभी जाने लगी। फलतः साहित्य-सेवियों का ध्यान साहित्य के इस नवीन अंग की पूर्ति की और भी गया। कुछ ही दिनों में आलोचना विषय पर अनुवादित और मौलिक पंथ हिंदी में दिखाई देने लगे जिससे उच कोटि के साहित्य की पुस्तकें भी लिखी जाने लगीं। लिखे थे, जिनमें पंडित प्रतापनारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट के नाम विशेष श्रादर से लिये जाते हैं। मिश्र जी प्रायः सामाजिक श्रीर राजनैतिक विषयों पर लिखा करते थे; उनके साहित्यिक लेख श्रिधिक नहीं हैं। भट्ट जी के लेख श्रिधिकतर गंभीर श्रीर भावपूर्ण हैं; उनमें घनिष्ठता श्रीर व्यक्तित्व की छाप प्रत्यच्च परिलिच्चित होती है। इन्हें हम साहित्यिक श्रीर कल्पना सापेच्च कह सकते हैं। इनकी समता श्रॅगरेजी के सुप्रसिद्ध निवंधलेखक चार्ल्स लैम्ब से की जा सकती हैं।

इनके श्रांतिरिक्त श्रौर भी दो-चार छोटे-मोटे निवन्ध-लेखक इस समय में हुए, पर वे इतनी प्रसिद्धि न पा सके। कारण यह था कि इन लेखकों का सारा ध्यान साहित्य के इसी महत्त्वपूर्ण श्रंग की पूर्त्ति की श्रोर न था। ये लोग कभी श्रखवार निकालते थे, कभी उपन्यास श्रौर नाटक लिखते थे श्रीर कभी कविता की श्रालोचना श्रथवा इतिहास की खोज करते थे। मिश्र जी श्रौर भट्ट जी के बाद बावू वालमुकुन्द गुप्त, पंडित गोविंदनारायण मिश्र श्रौर पंडित माधवप्रसाद मिश्र श्रादि का नाम श्राता है। इनमें गुप्त जी तो निवंधलेखक की हैसियत से प्रसिद्ध हैं श्रौर शेप दोनों लेखक श्रपनी शैलियों की विशेषता के कारण। यही लेखक हमें द्विवेदी-युग में ले जाते हैं।

उपर के कथन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि द्विवेदी जी के प्रादुर्भाव के समय हिंदी में अन्य भाषाओं की अपेज़ा साहित्यिक निबंध बहुत कम थे। जिस समय उन्होंने 'सरस्वती' का संपादनकार्य प्रहण किया, उस समय किसी के। यह आशा न थी कि वे साहित्य के इस रिक्त अंश की लिखे थे, जिनमें पंडित प्रतापनारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट के नाम विशेष त्रादर से लिये जाते हैं। मिश्र जी प्रायः सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर लिखा करते थे; उनके साहित्यिक लेख अधिक नहीं हैं। भट्ट जी के लेख अधिकतर गंभीर और भावपूर्ण हैं; उनमें घनिष्ठता और व्यक्तित्व की छाप प्रत्यच्च परिलच्चित होती है। इन्हें हम साहित्यिक और कल्पना सापेच्च कह सकते हैं। इनकी समता अँगरेजी के सुप्रसिद्ध निवंधलेखक चार्ल्स लैम्ब से की जा सकती हैं।

इनके अतिरिक्त और भी दो-चार छोटे-मोटे निवन्धं-लेखक इस समय में हुए, पर वे इतनी प्रसिद्धि न पा सके। कारण यह था कि इन लेखकों का सारा ध्यान साहित्य के इसी महत्त्वपूर्ण अंग की पूर्त्ति की ओर न था। ये लोग कभी अखबार निकालते थे, कभी उपन्यास और नाटक लिखते थे और कभी कविता की आलोचना अथवा इतिहास की खोज करते थे। मिश्र जी और भट्ट जी के बाद बावू वालमुकुन्द गुप्त, पंडित गोविंदनारायण मिश्र और पंडित माधवप्रसाद मिश्र आदि का नाम आता है। इनमें गुप्त जी तो निवंधलेखक की हैसियत से प्रसिद्ध हैं और शेप दोनों लेखक अपनी शैलियों की विशेषता के कारण। यही लेखक हमें द्विवेदी-युग में ले जाते हैं।

उपर के कथन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि द्विवेदी जी के प्रादुर्भाव के समय हिंदी में अन्य भाषाओं की अपेज़ा साहित्यिक निबंध बहुत कम थे। जिस समय उन्होंने 'सरस्वती' का संपादनकार्य प्रहण किया, उस समय किसी की यह आशा न थी कि वे साहित्य के इस रिक्त अंश की ऐसे लेख न छपते हों। जनता के लिए ये विषय नये थे, जतः वह इन्हें विशेष छादर की हाष्ट्र में देखती थी।

हियेदी जी के नियंधों में मुख्य पाँच विभाग किये जा सकते हैं—

१-साहित्यक।

२--जीवनियाँ।

३--- आविष्कार और विज्ञान-संबंधी।

४—पुरातन्य श्रौर इतिहासि-संबंधी।

५-- श्रारचर्य-जनक श्रीर कौतृहल-वर्द्धक ।

६--साहिन्यिक--

द्वियेदी जी के साहित्य-विषयक नियंध ४० के उपर हैं। ये विशेष खादर की हिंदि ने देखे जाते हैं। इनमें से छुछ तो भाषा खोर व्याकरण पर लिखे गये हैं, छुछ साहित्य-विवेचन पर। छुछ में यंथों का खालोचनात्मक परिचय है खोर छुछ में भाषा व साहित्य-शास्त्रीय परिचय। इस प्रकार हम इनके चार भाग पर सकते हैं—

(क) हिंदी भाषा खोर व्याकरण-संबंधी—उस समय लेखक भाषा खोर व्याकरण के नियमों की विशेष परवा नहीं करते थे, छतः उनके लेखों में भाषा छोर व्याकरण-संबंधी दोवों की भरमार रहती थी। द्विवेदी जी ने ऐसे लेखकों की मावधान करने के लिए भाषा छोर व्याकरण के दोप', भाषा की खनस्थिरता' खादि लेख लिखे। इन लेखों के द्वारा उन्होंने लोगों के सामने भाषा की खुद्धता का प्रश्न रक्खा। हिंदी-संसार में खपूर्व जागृति दिखाई देने लगी छोर भाषा व व्याकरण-संबंधी वादविवाद उठ खड़े हुए। इन विवादों से भाषा छोर राज्यों के म्यों में वहत

ऐसे लेख न छपते हों। जनता के लिए ये विषय नय थे, ज्यतः वह इन्हें विशेष आदर की हृष्टि से देखती थी।

हियेदी जी के नियंधों में मुख्य पाँच विभाग किये जा सकते हैं—

१-साहित्यक।

२—जीवनियाँ।

३--- आविष्कार और विज्ञान-संबंधी।

४--पुरातत्त्व श्रौर इतिहास-संबंधी।

४.—आश्चर्य-जनक श्रीर कौत्हल-वर्डक ।

६--साहित्यिक--

द्विवेदी जी के साहित्य-विषयक निवंध ४० के जपर हैं। ये विशेष आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इनमें से कुछ तो भाषा और व्याकरण पर लिखे गये हैं, कुछ साहित्य-विवेचन पर। कुछ में प्रंथों का आलोचनात्मक परिचय है और कुछ में भाषा व साहित्य-शास्त्रीय परिचय। इस प्रकार हम इनके चार भाग कर सकते हैं—

(क) हिंदी भाषा और व्याकरण-संवंधी—उस समय लेखक भाषा और व्याकरण के नियमों की विशेष परवा नहीं करते थे, अत: उनके लेखों में भाषा और व्याकरण-संवंधी दोषों की भरमार रहती थी। द्विवेदी जी ने ऐसे लेखकों को मावधान करने के लिए भाषा और व्याकरण के दोप', 'भाषाकी अनस्थिरता' आदि लेख लिखे। इन लेखों के द्वारा उन्होंने लोगों के सामने भाषा की शुद्धता का प्रश्न रक्खा। हिंदी-संसार में अपूर्व जागृति दिखाई देने लगी और भाषा व व्याकरण-संवंधी वादिववाद उठ

खड़े हुए। इन विवादों से भाषा और शब्दों के रूपों में वहुत

नहीं । हिन्दी का साहित्य इस प्रकार के नियन्थों से शून्य-सा हो रहा है। जैसे श्रीर श्रीर बातों में वेंगला श्रीर मराठी भाषा का साहित्य हिन्दी-साहित्य से बढ़ा हुशा है, वैसे ही बह इस विषय में भी है।"

दूसरे प्रकार के निवंध वे हैं जिनमें हिंदी-पुस्तकों की आलोचना की गई हैं। ये आलोचनायें हिन्दी की उन पुस्तकों की हैं जो द्विवेदी जी के समय में प्रकाशित होती और उनके पास समालोचनार्थ आती थीं। इनमें इतिहास, विज्ञान, भूगोल, गद्य-पद्य, नाटक, उपन्यास, जीवनचरित, धर्म आदि सभी विपयों की पुस्तकों हैं। द्विवेदी जी ने इन पुस्तकों की आलोचना करते समय नीर-चीर-विवेक का अच्छा परिचय दिया है। इनके अतिरिक्त सरकारी वार्षिक रिपोर्टों का भी आलोचनात्मक परिचय वे अपने पाठकों को समय समय पर दिया करते थे। इन समालोचनाओं से हिंदी-साहित्य के कूरा-करकट को आईटने और नये होनहार लेखकों का प्रोत्साहित करने का आधर्यजनक कार्य हुआ।

तीसरे प्रकार के निबंध अन्य भाषाओं के यंथों की आलोचना-संबंधी हैं। जैसे मराठी के रामायण और महाभारत नामक यंथों का आलोचनात्मक परिचय। ऐसी आलोचनाओं में न केवल उनके गुण-दोषों का विवेचन किया गया है प्रत्युत उनकी तुलना में हिन्दी-साहित्य में जो कमी थी उनका भी निदर्शन किया गया है—हिंदी-लेखकों के लिए ऐसी आलोचनायें मार्गप्रदर्शन का काम करती थीं।

(ग्र) साहित्य-शास्त्र — 'नाट्यशास्त्र', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' शीर्षक निवंध साहित्यशास्त्र-संवंधी लेख हैं। ये लेख कुछ वड़े हैं और अलग-अलग पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके नहीं । हिन्दी का साहित्य इस प्रकार के निवन्धों से शून्य-सा हो रहा है। जैसे और और बातों में वँगला और मराठी भाषा का साहित्य हिन्दी-साहित्य से बढ़ा हुआ है, बैसे ही वह इस विषय में भी है।"

दूसरे प्रकार के निबंध वे हैं जिनमें हिंदी-पुस्तकों की आलोचना की गई है। ये आलोचनायें हिन्दी की उन पुस्तकों की हैं जो द्विवेदी जी के समय में प्रकाशित होती और उनके पास समालोचनार्थ आती थीं। इनमें इतिहास, विज्ञान, भूगोल, गद्य-पद्य, नाटक, उपन्यास, जीवनचरित, धर्म आदि सभी विपयों की पुस्तकों हैं। द्विवेदी जी ने इन पुस्तकों की आलोचना करते समय नीर-चीर-विवेक का अच्छा परिचय दिया है। इनके अतिरिक्त सरकारी वार्षिक रिपोर्टी का भी आलोचनात्मक परिचय वे अपने पाठकों को समय समय पर दिया करते थे। इन समालोचनाओं से हिंदी-साहित्य के कूरा-करकट को छाँटने और नये होनहार लेखकों को प्रोत्साहित करने का आध्यर्यजनक कार्य हुआ।

तीसरे प्रकार के निवंध अन्य भाषाओं के यंथों की आलोचना-संवंधी हैं। जैसे मराठी के रामायण और महाभारत नामक यंथों का आलोचनात्मक परिचय। ऐसी आलोचनाओं में न केवल उनके गुण-दोपों का विवेचन किया गया है प्रत्युत उनकी तुलना में हिन्दी-साहित्य में जो कमी थी उनका भी निदर्शन किया गया है—हिंदी-लेखकों के लिए ऐसी आलोचनायें मार्गप्रदर्शन का काम करती थीं।

्य) साहित्य-शास्त्र – 'नाट्यशास्त्र', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' शीर्षक निवंध साहित्यशास्त्र-संवंधी लेख हैं। ये लेख कुछ वड़े हैं और ज्ञलग-ज्ञलग पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके जायत हो और इस दिशा में उन्हें प्रोत्साहन मिले। दूसरे प्रकार की जीवनियाँ—यथा मायकेल मधुसूदनदत्त, नवीन-चन्द्र राय व रवीन्द्रनाथ ठाछुर की इस उद्देश्य से लिखी गई थीं कि इन महापुरुषों की देश-विदेश में जो ख्याति प्राप्त हुई है उससे प्रमावित होकर लोग हिंदी-सेवा की त्रोर फुकें और साथ ही यह भी देख सकें कि इन मनस्वियों की सेवा और आराधना से इनकी मातृभाषा कैसी श्रीसम्पन्न हो गई है और हमारी मातृभाषा हिंदी अब तक कैसी रंक और हीन वनी हुई है। इस प्रकार के लेख 'सुकवि-संकीर्तन' में संगृहीत हैं।

- (ख) विद्वानों, इतिहास-वेत्ताओं और वक्ताओं की जीवनियाँ—द्विवेदी जी ने ऐसे जिन व्यक्तियों के विषय में लिखा
 है, वे प्राय: सभी भारतवासी थे; पर अधिकांश अपनी मातृ-भापा
 कें। छोड़कर विदेशी भाषाओं में लिखा करते थे। उनका
 संनिप्त परिचय देकर द्विवेदी जी उनसे अपनी मातृभाषा कें।
 अपनाने और उसी में लिखने का अनुरोध किया करते थे।
 उनके इस उद्योग से हिंदी को कई प्रतिभाशाली लेखक प्राप्त
 हो गये थे। यहामहोषाध्याय डाक्टर गंगानाथ का का
 नाम भी उन्हीं लेखकों में आता है, जो पहले अँगरेजी
 में ही लिखते थे, पर द्विवेदी जी की प्रेरणा से हिंदी में भी
- (ग) शाहों, सुल्तानों श्रौर श्रमीरों की जीवनियाँ—इनमें से जो ऐतिहासिक हैं उन हे लिखने का उद्देश्य यह था कि उनसे पाठकों का मनोविनोद भी हो श्रौर साथ ही साथ उन्हें इतिहास का भी ज्ञान हो। कुछ जीवनियों में ऐसे तथ्य भी दिये गये हैं जिन्हें किसी कारणवश उस समय के इतिहास-लेखक छिपाना चाहते थे। फलतः इतिहास के विद्यार्थियों

जायत हो और इस दिशा में उन्हें प्रोत्साहन मिले। दूसरे प्रकार की जीवनियाँ—यथा मायकेल मधुसूदनदत्त, नवीन-चन्द्र राय व रवीन्द्रनाथ ठाछुर की इस उद्देश्य से लिखी गई थीं कि इन महापुरुषों को देश-विदेश में जो ख्याति प्राप्त हुई है उससे प्रमावित होकर लोग हिंदी-सेवा की त्रोर भुकें और साथ ही यह भी देख सकें कि इन मनस्वियों की सेवा और आराधना से इनकी मातृभाषा कैसी श्रीसम्पन्न हो गई है और हमारी मातृभाषा हिंदी त्रव तक कैसी रंक त्रोर हीन वनी हुई है। इस प्रकार के लेख 'सुकवि-संकीर्तन' में संगृहीत हैं।

- (ख) विद्वानों, इतिहास-वेत्ताओं और वक्ताओं की जीव-तियाँ—द्विवेदी जी ने ऐसे जिन व्यक्तियों के विषय में लिखा है, वे प्रायः सभी भारतवासी थे; पर ऋधिकांश ऋपनी मातृ-भापा की छोड़कर विदेशी भाषाओं में लिखा करते थे। उनका संचिप्त परिचय देकर द्विवेदी जी उनसे ऋपनी मातृभाषा की ऋपनाने और उसी में लिखने का ऋनुरोध किया करते थे। उनके इस उद्योग से हिंदी की कई प्रतिभाशाली लेखक प्राप्त हो गये थे। महामहोषाध्याय डाक्टर गंगानाथ भा का नाम भी उन्हीं लेखकों में ऋाता है, जो पहले ऋँगरेजी में ही लिखते थे, पर द्विवेदी जी की प्रेरणा से हिंदी में भी लिख ने
- (ग) शाहों, सुल्तानों श्रौर श्रमीरों की जीवनियाँ—इनमें से जो ऐतिहासिक हैं उन हे लिखने का उद्देश्य यह था कि उनसे पाठकों का मनोविनोद भी हो श्रौर साथ ही साथ उन्हें इतिहास का भी ज्ञान हो। कुछ जीवनियों में ऐसे तथ्य भी दिये गये हैं जिन्हें किसी कारणवश उस समय के इतिहास-लेखक छिपाना चाहते थे। फलतः इतिहास के विद्यार्थियों

विरुद्ध उन्होंने कई स्वतंत्र लेख व कवितायें लिखी थीं। उस समय के सुधारकों का परिचय लिखने में भी द्विवेदी जी का खास ध्येय यही था जि जनता समाजगत बुराइयों के। समभ जाय और सुधारकों के वतलाये हुए मार्ग पर चलकर अधिक से अधिक उन्नति कर सके।

३—ग्रा६िष्कार श्रीर विज्ञान-संबंधी—

विज्ञान हिंदी के लिए विलक्कल ही नया विषय था और पहले-पहल द्विवेदी जी ने ही इस पर लिखना शुरू किया। इस प्रकार के निवंध भी अधिकतर 'सरस्वती' के संपादनकाल में ही लिखे गये थे। इनका लिखने में दूसरी पुस्तकों—विशेष कर अँगरेजी पत्र-पत्रिकाओं—से विशेष सहायता ली गई थी। आविष्कार और विज्ञान-संवंधी लेखों की आवश्यकता और महत्ता पर 'शिज्ञा' नाम की पुस्तक की भूमिका (प्र० ४,४) में द्विवेदी जी लिखते हैं—

"त्यापार-धंधा करके यथेष्ट धन-संपादन का जा मार्ग स्पेन्सर ने वतलाया है वह थौर भी अधिक महत्त्व-पूर्ण है। क्योंकि, इस समय, इस विषय में इमारे देश की दशा थ्रत्यन्त हीन है। रही है। हम लोगों को पेट भर खाने तक की नहीं मिलता। इस श्रवस्था में, सामाजिक या राजनैतिक विषयों की उन्नति होना प्रायः असंभव है। जा भूखा है वह समाज का क्या सुधार करेगा? उससे राजनैतिक विषयों की उन्नति की आशा रखना केवल दुराशा है। इसलिए इम लोगों को उदरपूर्ति के लिए पहले प्रवत्न करना चाहिए। इस विषय में इमारा एक-मात्र त्राता विज्ञान है। वैज्ञानिक शिक्ता को स्पेन्सर ने इसा लिए प्रधानता दो है और सब तरह की शिक्ताओं में इसी को सबसे श्रधिक उपयोगी बतलाया है। इस शिक्ता की श्रोर ध्यान देना प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तच्य होना चाहिए।"

विरुद्ध उन्होंने कई स्वतंत्र लेख व कवितायें लिखी थीं। उस समय के सुधारकों का परिचय लिखने में भी द्विवेदी जी का खास ध्येय यही था जि जनता समाजगत वुराइयों के समभ जाय और सुधारकों के वतलाये हुए मार्ग पर चलकर अधिक से अधिक उन्नति कर सके।

३-- श्रा६िष्कार श्रीर विज्ञान-संवंधी--

विज्ञान हिंदी के लिए विलक्जल ही नया विषय था और पहले-पहल द्विवेदी जी ने ही इस पर लिखना शुरू किया। इस प्रकार के निवंध भी अधिकतर 'सरस्वती' के संपादनकाल में ही लिखे गये थे। इनको लिखने में दूसरी पुस्तकों—विशेष कर अँगरेजी पत्र-पत्रिकाओं—से विशेष सहायता ली गई थी। आविष्कार और विज्ञान-संवंधी लेखों की आवश्यकता और महत्ता पर 'शिन्ता' नाम की पुस्तक की भूमिका (पृ० ४,४) में द्विवेदी जी लिखते हैं—

"व्यापार-धंधा करके यथेष्ट धन-संपादन का जो मार्ग स्पेन्सर ने बतलाया है वह धौर भी अधिक महत्त्व-पूर्ण है। क्योंकि, इस समय, इस विषय में हमारे देश की दशा घत्यन्त हीन है। रही है। हम लोगों को पेट भर खाने तक की नहीं मिलता। इस प्रवस्था में, सामाजिक या राजनैतिक विषयों की उन्नति होना प्रायः असंभव है। जो भूखा है वह समाज का क्या सुधार करेगा? उससे राजनैतिक विषयों की उन्नति की धाशा रखना केवल दुराशा है। इसलिए हम लोगों को उदरपूर्ति के लिए पहले प्रवत्न करना चाहिए। इस विषय में हमारा एक-मात्र त्राता विज्ञान है। वैज्ञानिक शिका को स्पेन्सर ने इसा लिए प्रधानता दो है और सब तरह की शिकाओं में इसी को सबसे अधिक उपयोगी बतलाया है। इस शिक्षा की और ध्यान देना प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तव्य होना चाहिए।"

संगृहीत हैं। यह पुस्तक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ, से प्रकाशित हुई है। इसमें 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि', 'आकाश में निराधार स्थिति', 'अंत:सानित्व-विद्या', 'परलोक से प्राप्त हुए पत्र', 'एक ही शरीर में अनेक आत्मायें' आदि अनेक आश्चर्य-जनक एवं कौतृह्ल-वर्ष्ठक विषयों पर लिखे हुए निवंधों का समावेश है। इस पुस्तक के आरंभ में परिचय देते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है—

'इस संग्रह में २२ लेख हैं। कुछ पुराने हैं, कुछ थोड़े ही ममय पूर्व के लिखे हुए हैं। जे। पुराने हैं. वे पुराने होकर भी पुराने नहीं। एक तो भूकी हुई पुरानी बात भी सुनने पर नई मालूम होती है। दूसरे, इस पुस्तक में जिन विषयों का उल्लेख है, उनमें में ध्रधिकांश पुराने हो ही नहीं सकते।''

इन नियंधों की उपयोगिता पर भी हम श्रपनी श्रोर से कुछ न कह कर द्विवेदी जी का कथन ही दोहरा देना उचित सम-भते हैं—

''कामों से छुटी मिलने 'पर, मनोरंजन की इच्छा रखनेवाले पुस्तकप्रेमी इसके पाठ से थपने समय का सद्व्य कर सकते हैं; धौर सम्भव है, इससे उन्हें कुछ नई वातें मालूम हो नायें।'

संत्रेष में द्विवेदी जी ने प्रायः सभी विषयों पर लेख लिखे हैं। उनमें से अनेक थिपय तो उस समय के लिए विलक्कत नये ही थे। यदि उनका इतना प्रचार हो गया है तो इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय ? वीसवीं शताब्दी के आरंभ में निवंध-रचना की ओर साहित्य-सेवियों का ध्यान आकृष्ट करनेवाले द्विवेदी जी ही थे। उनको रास्ता दिखाने के लिए उन्होंने लार्ड बेकन के कुछ निवंधों का विकन-विचार- संगृहीत हैं। यह पुस्तक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ, से प्रकाशित हुई हैं। इसमें 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि', 'श्राकाश में निराधार स्थिति', 'श्रांत:सानित्व-विद्या', 'परलोक से प्राप्त हुए पत्र', 'एक ही शरीर में श्रातेक श्रात्मायें' श्रादि श्रानेक श्राश्चर्य-जनक एवं कीतृहल-वर्द्धक विपयों पर लिखे हुए निवंधों का समावेश है। इस पुस्तक के श्रागंभ में परिचय देते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है—

'इस संग्रह में २२ लेख हैं। कुछ पुराने हैं, कुछ थाड़े ही समय पूर्व के जिसे हुए हैं। जो पुराने हैं. वे पुराने होकर भी पुराने नहीं। एक तो भूजी हुई पुरानी बात भी सुनने पर नई मालूम होती है। दूसरे, इस पुरतक में जिन विषयों का उल्लेख है, उनमें से प्रधिकांश पुराने हो ही नहीं सकते।''

इन निवंधों की उपयोगिता पर भी हम ऋपनी ऋोर से कुछ न कह कर द्विवेदी जी का कथन ही दोहरा देना उचिन सम-भते हैं—

''कार्मों से छुटी मिलने 'पर, मनोरंजन की इच्छा रखनेवाले पुस्तकप्रेमी इसके पाठ से घपने समय का सद्वय कर सकते हैं; घौर सरभव है, इससे उन्हें कुछ नई वातें मालूम हा जायें।'

संत्रेप में द्विवेदी जी ने प्रायः सभी विपयों पर लेख लिखे हैं। उनमें से अनेक विपय तो उस समय के लिए विलक्कल नये ही थे। यदि उनका इतना प्रचार हो गया है तो इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय ? वीसवीं शताब्दी के आरंभ में निवंध-रचना की ओर साहित्य-सेवियों का ध्यान आकृष्ट करनेवाले द्विवेदी जी ही थे। उनको रास्ता दिखाने के लिए उन्होंने लार्ड बेकन के कुछ निवंधों का विकन-विचार- हिंदी-साहित्य के रिक्त अंगों की पूर्ति करने के लिए उत्साहित किया। अपने इस प्रयत्न में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली। उनकी इच्छा पूर्ण हुई और हिंदी की दिन-दिन उन्नति होने लगी। एक शब्द में द्विवेदी जी के लेखों का यही महत्त्व है।

पुस्तकॅ

सुप्रसिद्ध चँगरेजी लेखक जानसन की सब पुस्तकें प्रकाशित होने के बाद फांस, जर्मनी और इटली के बड़े-बड़े विद्वानों ने आश्चर्य से कहा था—इतना काम तो कई साहित्यक संस्थाओं का होना चाहिए—शायद कई 'अकेडमी' मिल कर भी इतने थोड़े समय में इतना नहीं लिख सकतीं जितना इस एक व्यक्ति ने चपने जीवनकाल में लिखा है। यही बात द्विबेदी जी के विपय में भी कही जा सकती है। मोटे तौर पर दो-एक विद्वानों ने, जिनमें श्रीयुत शिवपूजनसंहाय जी और पंडित यज्ञ-दत्त जी शुक्त बी० ए० का नाम विशेष 'उल्लेखनीय है, हिसाव लगाकर अनुमान किया है कि लगभग रेप्र वर्ष के चंदर द्विवेदी जी ने लगभग २४ हजार पृष्ठ—एक वर्ष में लगभग १ हजार पृष्ठ—लिखे हैं। इनमें अधिकांश लेख हैं, जो प्रायः सभी पुस्तकों के रूप में संकलित हो चुके हैं। संपादकीय टिप्पिएयाँ और एक-एक, दो-दो सकों के छोटे-छोटे नोट च्यभी वाकी हैं। उनकी पुस्तकों की सूर्चा इस प्रकार है—

पद्य

(१) विनय-विनोद (१८८६) (२) विहार-झाटिका (१८६०) (३) स्तेहमाला (१८६०) (४) ऋतु-तरंगिणी (१८६१) (५) गंगालह्री (१८६१ अनुवाद) (६) देवीस्तुतिशतक (१८६२) (७) महिम्न-स्तोत्र (८) कुमार-संभय-सार (कालिदास के 'कुमार फा० ६ हिंदी-साहित्य के रिक्त अंगों की पूर्ति करने के लिए उत्साहित किया। अपने इस प्रयव में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली। उनकी इच्छा पूर्ण हुई और हिंदी की दिन-दिन उन्नति होने लगी। एक शब्द में द्विवेदी जी के लेखों का यही महत्त्व है।

पुस्तकं

सुप्रसिद्ध श्रॅगरेजी लेखक जानसन की सब पुस्तकें प्रकाशित होने के बाद फांस, जर्मनी श्रीर इटली के बड़े-बड़े विद्वानों ने श्राश्चर्य से कहा था—इतना काम तो कई साहित्यिक संस्थाश्रों का होना चाहिए—शायद कई 'श्रकेडमी' मिल कर भी इतने थोड़े समय में इतना नहीं लिख़ सकतीं जितना इस एक व्यक्ति ने श्रपने जीवनकाल में लिख़ा है। यही बात द्विवेदी जी के विषय में भी कही जा सकती हैं। मोटे तौर पर दो-एक विद्वानों ने, जिनमें श्रीयुत शिवपूजनसंहाय जी श्रीर पंडित यझ-दत्त जी श्रुक्त बी० ए० का नाम विशेष 'उल्लेखनीय हैं, हिसाब लगाकर श्रमुमान किया है कि लगभग रंप्र वर्ष के श्रंदर द्विवेदी जो ने लगभग रंप्र हजार पृष्ठ—एक वर्ष में लगभग १ हजार पृष्ठ—िलखे हैं। इनमें श्रिकांश लेख हैं, जो प्रायः सभी पुस्तकों के रूप में संकलित हो चुके हैं। संपादकीय टिप्पिएयाँ श्रीर एक-एक, दो-दो सकों के छोटे-छोटे नोट श्रभी वाकी हैं। उनकी पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—

पद्म

(१) विनय-विनोद (१८८६) (२) विहार-वाटिका (१८६०) (३) स्नेहमाला (१८६०) (४) ऋतु-तरंगिणी (१८६१) (५) गंगालहरी (१८६१ अनुवाद) (६) देवीस्तुतिशतक (१८६२) (७) महिम्न-स्तोत्र (८) कुमार-संभव-सार (कालिदास के 'कुमार फा० ६

परिचय भी है। 'किरातार्जुनीय के कतिपय दोप और गुगा शीर्षक नोट बड़े महत्त्व का है। यह भूमिका ४४ पृष्ठों सं समाप्त हुई है। (२०) त्र्यालोचनांजलि (१६२० लेखां का संग्रह) (२१) त्राख्यायिका सप्तक (१६२७ वँगता, त्राँगरेजी त्रीर संस्कृत-भाषात्रों की भिन्न-भिन्न पुस्तकों के त्राधार पर १६०२, ३,४ श्रीर १३ में लिखी हुई सात कथा-प्रधान कहानियाँ) (२२) के विद-कीर्तन (१६२७) (२३) विदेशी विद्वान् (१६२७, लेखों का संप्रह) (२४) प्राचीन चिह्न (१६२७) (२४) चरित-चर्या (लेखों का संग्रह) (२६) पुरावृत्त (१६२७) (२७) लोबार प्राइमरी रीडर (२८) अपर प्राइमरी रीडर (२६) शिचा-सरोज (रीडर पाँचवाँ भाग) (३०) वालवोध या वर्ग-वोध (प्राइमर) (३१) जिले कानपुर का भूगोल (३२) आध्यात्मिकी (१६२६) (३३) श्रौद्योगिकी (१६२०) (३४) रसज्ञ-रंजन (१६२०) (कविता विष-यक लेखों का संग्रह) (३४) कालिटास (१६२०) (३६) वैचिन्न्य चित्रण (३७) विज्ञानवार्ता (१६३०, विज्ञानसंवंधी लेखों का संप्रह) (३८) चरित्र-चित्रण (जून १६२६ लेखों का संप्रह) (३६) विज्ञ-विनोद (४८) समालोचना-समुचय (त्रालोच-नात्मक लेखों का संमह-१६२=), (४१) वांग्विलास, (४२) साहित्य-संदर्भ (१६२४--पुरातन विषयों त्रौर पुरातन पुस्तकों-संबंधी २० त्रालोचनात्मक लेखों का संयह) (४३) वनिता-विलास १६१६-१६०३,४, १३ में लिखे हुए १० स्त्रियों के परिच-यात्मक जीवनचरितों का संयह) (४४) सुकवि-संकीर्तन (१६२२-लेखों का संप्रह) (४४) प्राचीन पंडित और कवि (१६५ अन्य भाषाओं—विशेष कर मराठी और अँगरेजी—के आधार पर लिखे हुए जीवन-चरित) (४६) संकलन ∙(१६३१) (४०) विचार्-विमर्श (१६३१) (४८) पुरातत्त्वप्रसंग (जनवरी १६२६—इसी विषय के लेखों का संग्रह) (४६) साहित्यालाप (लेखों का संग्रह)

परिचय भी है। 'किरातार्जुनीय के कतिपय दोप और गुरा शीर्षक नोट वड़े महत्त्व का है। यह भूमिका ४४ पृष्ठों में समाप्त हुई है। (२०) त्रालोचनांजलि (१६२० लेखों का संग्रह) (२१) त्राख्यायिका सप्तक (१६२७ वँगला, श्रॅंगरेजी श्रौर संस्कृत-भाषात्रों की भिन्न-भिन्न पुस्तकों के त्राधार पर १६०२, ३,४ श्रीर १३ में लिखी हुई सात कथा-प्रधान कहानियाँ) (२२) के विद-कीर्तन (१६२७) (२३) विदेशी विद्वान (१६२७, लेखों का संप्रह) (२४) प्राचीन चिह्न (१६२७) (२४) चरित-चर्या (लेखों का संग्रह) (२६) पुरावृत्त (१६२७) (२७) लोत्र्यर प्राइमरी रीडर (२८) अपर प्राइमरी रीडर (२६) शिचा-सरोज (रीडर पाँचवाँ भाग) (३०) वालवोध या वर्ग्य-वोध (प्राइमर) (३१) जिले कानपुर का भूगोल (३२) आध्यात्मिकी (१६२६) (३३) श्रीद्योगिकी (१६२०) (३४) रसज्ञ-रंजन (१६२०) (कविता विप-यक लेखों का संप्रह) (३४) कालिग़स (१६२०) (३६) वैचित्र्य चित्रण (३७) विज्ञानवार्ता (१६३०, विज्ञानसंवंधी लेखों का संप्रह) (३८) चरित्र-चित्रण (जून १६२६ लेखों का संप्रह) (३६) विज्ञ-विनोद (४०) समालोचना-समुचय (त्रालोच-नात्मक लेखों का संग्रह--१६२८), (४१) वांग्विलास, (४२) साहित्य-संदर्भ (१६२४--पुरातन विषयों श्रोर पुरातन पुस्तकों-संबंधी २० त्रालोचनात्मक लेखों का संग्रह) (४३) वनिता-विलास १६१६–१६०३,४, १३ में लिखे हुए १० कियों के परिच-यात्मक जीवनचरितों का संप्रह) (४४) सुकवि-संकीर्तन (१६२२-लेखों का संप्रह) (४५) प्राचीन पंडित और कवि (१६५): अन्य भाषात्रों-विशेष कर मराठी और अँगरेजी-के आधार पर लिखे हुए जीवन-चरित) (४६) संकलन (१६३१) (४७) विचार्-विमर्श (१६३१) (४८) पुरातत्त्वप्रसंग (जनवरी १६२६-इसी विपय के लेखों का संप्रह) (४६) साहित्यालाप (लेखों का संप्रह)

वेदना' (नेपध-चरित-चर्चा पर 'सरस्वती'—२५-५-५१२) में मिल सकते हैं। वास्तव में उनके प्रायः सभी अनुवादित पंथों में उनकी भाषा-राली क्रमशः विकृतिन हुई है। इन सबमें भाषा-संस्कार के इतिहास की प्रचुर सामग्री भिलगी; किंतु इनमें द्वियेदी जी का यह व्यक्तित्व यहुत-कुछ हूँ दुने पर ही मिलेगा जो इस समय हम लोगों के सामने विशद रूप में आया है। उन्हें पड़कर साहित्य का कोई विद्यार्थी संभवत: यह नहीं कह सकेगा कि यह दिवेदी जी की ही लेखनी है, श्रीर किसी की नहीं। स्राज से सी वर्ष के वाद का विद्यार्थी तो कदाचित स्रोर भी द्विविधा में पड़ेगा। बात यह है कि द्विवेदी जी ने खड़ी बोली की भाषा-राली की व्यवस्था अवश्य की है; उसमें निश्चय ही उनका निजत्य हो, किंतु यह व्यवस्था उनकी क़लम के मँजने पर ही हुई है और वह निजत्य आते-आते आया है। उन्होंने फेवल दूसरों की भाषा का ही नहीं, श्रपनी भाषा का भी मार्जन किया हैं। उनकी शब्द-संपत्ति स्त्रीर भाषा की संघटित प्रतिमा कालां-तर में प्रतिष्ठित हुई है। * परंतु यह होते हुए भी हमें मान्ना पड़ेगा कि उनके अनुवादित ग्रंथ भी मौतिक का-सा आनंद देते हैं ऋौर उनसे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-प्राप्ति भी होती है।

द्धिः अः अंथः पृः १ प्रस्तावना ।

वेदना' (नैप्ध-चरित-चर्चा पर 'सरस्वती'—२५-५ ५१२) में मिल सकते हैं। वास्तव में उनके प्रायः सभी अनुवादित पंथी में उनकी भाषा-राली क्रमशः विकियत हुई है। इन सबमें भाषा-संस्कार के इतिहास की प्रचुर सामगी मिलंगी; किंतु इनमें द्वियेदी जी का यह व्यक्तित्व बहुत-कुछ हूँ ढ़ने पर ही मिलेगा जो इस समय हम लोगों के सामने विशद म्प में आया है। उन्हें पड़कर साहित्य का कोई विद्यार्थी संभवतः यह नहीं कह सकेगा कि यह द्विवेदी जी की ही लेखनी है, त्र्यौर किमी की नहीं। आज से सौ वर्ष के बाद का विद्यार्थी तो कदाचित और भी द्विविधा में पड़ेगा। बात यह है कि द्विवेदी जी ने खड़ी बोली की भाषा-राली की व्यवस्था अवश्य की है; उसमें निश्चय ही उनका निजत्व हो, किंतु यह व्यवस्था उनकी क़लम के मँजने पर ही हुई है और वह निजत्व आते-आते आया है। उन्होंने केवल दूमरों की भाषा का ही नहीं, श्रपनी भाषा का भी मार्जन किया हैं। उनकी शब्द-संपत्ति स्त्रीर भाषा की संघटित प्रतिमा कालां-तर में प्रतिष्ठित हुई है। परंतु यह होते हुए भी हमें मान्ना पड़िगा कि उनके अनुवादित ग्रंथ भी मौलिक का-सा आनंद देते हैं ऋौर उनसे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-प्रापि भी होती है।

द्धि० अ० मंथ० पृ० १ प्रस्तावना।

कंपादिक शैतादिशन कीशी भई विनास की निश्चिर निरुक्त भवे कीन्त्री धनल प्रकार ॥ इम शास्य स्वयुक्त सुद् एउ ध्या यक्त दानि । इटि फार धर्यो गर्भी सम्बन्ध लागत उलानि॥ वानि यसास्थिति धन सर्घ नर सुग नयम विहान । उदर दिमायन कान एति फहत येन अति दीन ॥ या दिन की जीच्या नविद करों न पछ विचार । तुचि मत कन कुन की घर तू जानु धनार॥ शासकान रविकित्य सम कीमज लाले पान। कर शरपा अरु चन् नहीं पड़ी प्रवा दरवान ॥ शनि स्थायत शिविके ने जे नर शिय प्रमात। तिनक्त कब्हें गामहं सूनि न वर्त सुनात॥ प्रतिबन धति धन पान्यनि धाये सरवस्तुन्द । हारहम फल सब फाठा में देत लेन धार्नद्र॥ द्यान राम मरिता निकट नपुर खुशांतल पारि। वेकि सुद्रुल कीमना नवडा फीजे सेन सँवारि॥ तक मीच तन पन हितै जाय धनीन हुवार। भोगत यह संताप धर सहत कलेस धपार ॥ शैज शिला विस्तीर्ण शित शब्या सुखद बनाय। धरत ध्यान तय शुक्रुधित कानन काम नमाय॥ श्रवनी-श्रवनी पर गये जे दिन माँगत प्यान। हैं सि प्रावन तथ सुमिरि तिन सकत गात पुलकात ॥ योगीखर विज योगवज्ञ समदरशी सम्र काल। चिदानंद चिंतन चतुर परत न मायाजाल ॥ जिन तन सन धारपन कियो रहे ज्ञान मह पूरि । तिन चरणन की रेखका मेरी जीवन-मूरि॥

कंपादिक शेतादिशन कॅओं भहें विनास की गिरिवर निरम्म भवे कीन्द्री धनमा प्रकाश ॥ इस शारा रमयुक्त संदुषात्र धर यहाल दानि । हृदि फाह धरणी यमी समुख्य लागत उलानि॥ वानि ययास्थिति इन सर्च नर द्वा नयम विहास । उदर दिगापन सान हति फहत येन अति दीन ॥ या दिन की जींग्या नवदि करों न पष्टु विदार। वृत्ति मृत कन कुन मंत धय यू नानु धनार॥ प्रातकान रविकिरण सम कीमन लाले पान। कर शरपा धर चलु नहीं गई। महा द्रमान ॥ शति व्याकत श्रिपिक ने जै नर निस्य प्रमात। तिनकर कबर्ट गामाँ सूचि न दर्त सुनात॥ प्रतिबन द्यति धन पत्रवनि द्याये सरवातृन्द् । धारहत फल सब पाक में देत लेन प्यानंद् ॥ द्यम राम मस्ति। निकट मधुर सुशांतल वारि। वंकि सुदूल कोमल नवर कोजे सेन सँवारि॥ तक नीच जन धन हिर्त जाय धनीन दुवार। भोगत यह संताप धर सहत कलेस धपार ॥ शैज शिला विस्तीर्ण शित शब्या सुलद बनाय। धरत ध्यान तय शुक्रुधित कानन काम नमाय ॥ श्रपनी-श्रपनी कर गये जे दिन माँगत म्यात । हैं मि श्रावत तथ सुमिरि तिन सकल गात पुलकात ॥ योगीखर निज योगवल समदरशी सब काल। चिदानंद चिंतन घतुर परत न मायाजाल ॥ जिन तन मन धारपन कियो रहे ज्ञान मह पूरि । तिन चरणन की रेग्रुका मेरी जीवन-मूरि॥

नहीं रह गया है। फलतः उन्होंने प्रजभाषा को छो। कर छारी वाली में कविता करना श्वारंन कर दिया। खड़ी बोली की उनकी पहली कविना 'बलीवर्द' नाम की हैं। यह १६ ध्याक्टोबर सन १६०० में 'श्रीवेङ्गटेरवर-समाचार'में छुपी थी। नव वे कॉमी में जीव आईव पीव रेलवे के दक्षा में काम करने थे। उनकी रचनार्ये 'भारत-भित्र'. 'हिंद्-वंगवासी' 'त्रादि तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुआ करनी थीं । 'सरम्थती' के प्रकाशित होने पर उन्होंने उसमें भी छुपने को श्रपनी रचनायें भेजी। 'हीपर्वान्यचन-वागा-वर्ला' (फिरातार्जुनीय के प्रथम सर्गान्तर्गन युधिष्ठिर है। द्रीनदी की उक्ति)-शीर्षक उनकी कविना 'सरस्वती' (नवस्वर १६००) में छुपी थी। इसके तमभग तीन वर्ष,पहले (१२ हिमंबर सन १८६६ में) उन्होंने शीधर-सपक्ष नामक काँवता लिखी थी, जिसमें पाठक जी की कीमल-कांत-पदावली. भाषा की नकाई, उक्तियों की मुन्दर तथा मार्भिक व्यंजना और काव्य-माधुर्क्य पर मुग्ध होकर द्विवेदी जी ने उन्हें गीतगोविंद के रचयिता 'जयदेव' का अवतार और खड़ी बोली के आधुनिक प्रगति-युग का त्राद्याचार्य माना था। इस 'सप्तक' से हमें द्विवेदी जी की मनोवृत्ति का भीषता लग जाता है; क्योंकि सकी वोली की दीन-हीन दशा का चित्र मीचते हुए उन्होंने पाठक जी में इस कलंक का थाने की प्रार्थना की थी।

'सरस्वती' के संपादक होने के बाद उन्होंने स्वयं इस कभी को दूर करने का प्रयत्न किया और अन्य कियों को भी खड़ी बोली में ही किवता करने के लिए प्रोत्साहन दिया। उनकी फुटकर किवताओं का पहला संप्रह 'काव्य-मंजूपा' के नाम सं १६०३ में प्रकाशित हुआ था। उनमें सन् १८६५ से १६०२ तक की ३३ रचनायें—१६ ब्रजमापा की, द संस्कृत की और ६ खड़ी

नहीं रह गया है। फननः उन्होंने प्रजभाषा को छो कर छारी वाली में कविता करना आरंग कर दिया। खड़ी बोली की उनकी पहली कविना 'बलीवर्द' नाम की हैं। यह १६ 'प्राक्टोबर सन १६०० में 'श्रीवेद्देटरवर-गमाचार'में खुपी थी। नव वे काँसी में जीव आईव पीव रेलवे के दक्षा में काम काने थे। उनकी रचनायें 'भारत-मित्र', 'हिंदी-बंगवामी' 'श्रादि तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं । 'सर्वती' के प्रकाशित होने पर उन्होंने उसमें भी छपने को अपनी रचनायें भेजी। 'हीपर्ा-यचन-वागा-वलीं (किरातार्जुनीय के प्रथम सर्गान्तर्गन युधिष्ठिर रे द्रीपदी को उत्ति)-शीर्षक उनकी कविना 'सरस्वनी[?] (नत्रम्बर १६००) में छपी थी । इसके तमभग तीन वर्ष,पहले (१२ दिसंबर सन १८६६ में) उन्होंने शीधर-सप्रका नामक कांबता लिखी थी, जिसमें पाठक जी की कोमल-कांत-परावली, भाषा की नकाई, उक्तियों की मुन्दर तथा मार्मिक व्यंजना फ्रीर काव्य-माधुर्य्य पर मुग्ध होकर द्विवेदी जी ने उन्हें गीतगोविंद के रचयिता 'जयदेव' का अवतार और खड़ी बोली के आधुनिक प्रगति-युग का आद्याचार्य माना था। इस 'सप्तक' से हमें द्विवेदी जी की मनोवृत्ति का भी पना लग जाता है; क्योंकि सकी वोली की दीन-हीन दशा का चित्र खींचते हुए उन्होंने पाठक जी में इस कलंक का थाने की प्रार्थना की थी।

'सर्चती' के संपादक होने के बाद उन्होंने म्बयं इस कभी को दूर करने का प्रयत्न किया छोर छन्य कवियों को भी खड़ी बोली में ही कविता करने के लिए प्रोत्साहन दिया। उनकी फुटकर कविताछों का पहला संप्रह 'काव्य-मंजूपा' के नाम सं १६०३ में प्रकाशित हुआ था। उसमें मन् १८६१ से १६०२ तक की ३३ रचनायें—१६ ब्रजभाषा की, द संस्कृत की छोर ६ खड़ी मेरे इसंद्रास्त्राति । स्वः गर्गास् सित्तातिमने । मृत्यु रोतें पुसंस्थास मार्ग्ये म् तिमालिकाः । विद्यासुर्गः सर्विधि रोजसलयमः । व्यवस्तानः

---यररपर्वा

स्वर्गीय पंडित पड़मानिंद रामी की मृत्यु से उपना जाता २० जुलाई, सम १६३२ के उन्होंने की क्लोफ किस्पे रें। वे धानान १६३२ के 'विशाल-नामा' के 'ज्ञानिंद-प्रेट' के सुन्ध्रिष्ठ पर प्रकाशित हुए से । बरोब इस मगार हैं—

याते दिवं गर्याव सुरुष्ट वर्णात्वंह

निव्यत्ता अस्ति। अपि नर्ने । सन्ते ।

मयार्थं भवारशमयन्त्रभूभितिकां

प्राप्त हमेन विधिना बहुपश्चितेन ॥

🗴 🛪 🗴 🗴 🗡 संस्कृत्य नेज्य संस्थात नथाकतार्षे

सम्बं बद्दानि हर्द्यं शतथा श्रमति । श्रानंत्र्य निर्मत्पृतेर्मन नेश्वशास्य ध्वस्यक्षियो सहस्तेत्र विनिद्दिननेसि ॥

एक पत्र पर श्लोक में दी हुई उनकी सम्मति इस प्रकार है—

सुरेश्वरः श्रीभगवागगन्तः सुरेशविंहस्य यशस्त्रभेतु । यस्य प्रसादास्त्रपटीयभूग पत्रं प्रशन्तं च कुमारनाम ।

द्विवेदी जी की उक्त कवितायें किस कोटि की हैं, हिंदी-साहित्य में उनको कोई म्धान दिया जा सकता है या नहीं, दूसरों के विचार उनकी कविता के संबंध में क्या रहे हैं, ख्रादि की विवेचना करने के पहले हम विषय, भाषा ख्रीर छंद-विषयक ऐसा ही विषय द्विवेदी जी को पसंद था और उसी प्रकार के भावों को व्यक्त करनेवाले वावू मैं शिलीशरण गुप्त का वे झादर करते थे। उनकी 'भारत-भारती' का उन्होंने हृदय से अधिनंदन किया था। साथ ही समाज में प्रचलित अन्य क्रिशतियों का विश्व खींचकर उन्हें दूर कराने का भी उन्होंने प्रयत्न किया। ऐसी कविताओं के लिए व्यंग्य की आवश्य कता होती हैं। इसका एक उदा-हरण यहाँ हम देते हैं। कान्यकुट्य बाह्यणों का एक 'कनौजिया सम्मेलन' सन् १६०५ में होली के दिनों में हुआ था। इसमें दिवेदों जी ने ठहरौनी की निंदा करते हुए एक मजाक किया था—

इरा देर के लिए समिम्प थाप पोडशी काँरी हैं, चमा कीनिए खसभ्यता वह, हम आमीए खनारी हैं। मान लीनिए, नेन्न आपके कानों तक वह आहे हैं, पीन परोधर देख आपके कुंनर कुंम लगाये हैं।

साहित्य-चेत्र में धाँधली मचानेवाले प्रंथकारों की खबर लेने के लिए उन्होंने 'प्रंथकार-लक्त्या' शीर्षक एक कविता लिखी थी, जो 'सरस्वती' (भा० २, सं० ८) में छपी थी। इसका छुछ ग्रंश यों है—

> इधर-उधर से जोड़ बटोर लिखते हैं जो तोड़-मरोड़

इस प्रदेश में वे ही पूरे ग्रंथकार कहलाते हैं।

'विधि-विडंबना'-शीर्षक कविता में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—

> गुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनकाे नहीं विचार। विख्वताता है उनके कर से नये नये अख़बार।।

ऐसा ही विषय द्विवेदी जी को पसंद था और इसी प्रकार के भावों को व्यक्त करनेवाले वावू मैं थेलीशरण गृप्त का वे आदर करते थे। उनकी 'भारत-भारती' का उन्होंने हृदय से अभिनंदन किया था। साथ ही समाज में प्रचलित अन्य कुरीतियों का विश्व खींचकर उन्हें दूर कराने का भी उन्होंने प्रयत्न किया। ऐसी कवि-ताओं के लिए व्यंग्य की आवश्य कता होती है। इसका एक उदा-हरण यहाँ हम देते हैं। कान्यकुट्य बाह्यणों का एक 'कनौजिया सम्मेलन' सन् १६०४ में होली के दिनों में हुआ था। इसमें हिवेदो जी ने ठहरीनी की निंदा करते हुए एक मजाक किया था—

इस देर के लिए समिम्प थाप पोडशी काँरी हैं, चमा कीनिए श्रसभ्यता यह, हम ग्रामीण श्रनारी हैं। मान लीनिए, नेत्र शापके कानों तक वह श्रापे हैं, पीन परोधर देख श्रापके कुंनर कुंम लगाये हैं।

साहित्य-चेत्र में धाँधली मचानेवाले यंथकारों की खबर लेने के लिए उन्होंने 'ग्रंथकार-लक्ष्ण' शीर्षक एक कविता लिखी थी, जो 'सरस्वती' (भा० २, सं० ८) में छपी थी। इसका कुछ ग्रंश यों है—

> इधर-उधर से जोड़ वटोर लिखते हैं जो तोड़-मरोड़

इस प्रदेश में वे ही पूरे प्रथमार कहलाते हैं।

'विधि-विडंवना'-शीर्षक कविता में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है-

> शुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनकी नहीं विचार। विखवाता है उनके वर से नये नये श्रखनार।।

सुरम्यता ही जमधीन बांति है; श्रम्भ श्रारमा रम है मग्रेहरे। शरीर तेरा सब शब्दमान है; नितांत निष्मर्पः वहीं, यहीं, यहीं।

ऊपर कहा गया है कि इएरंभ में द्वितेशी ही व्रज्ञापा में किवता किया करते थे; बाद में उन्होंने खड़ी दोली को अपना लिया। पर खड़ी वोली की उनकी प्रारंभिक किवता हों ये स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक जी तथा स्वर्गीय पंडित नाथूराम शंकर जी की रचनाओं में कहीं कहीं ब्रज्ञभापा की पुट सिलती है। किसी सीमा तक यह स्वाभाविक भी था। द्विवेदी जी तब सस्क्रत-कियों का अध्ययन कर रहे थे। इसका भी उनके विचारों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यहाँ उनकी उन समय की एक किवता उदाहरणार्थ दी जाती है। विषय पर संस्क्रत-साहित्य के दाशीनिक विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। और भापा—

क्या वस्तु मृत्यु ? जिसके भय से विचारे।
होते प्रकंप परिपूर्ण मनुष्य सारे।
क्या विह्न है ? विणिख है ? यहि है विपारी ?
किंवा विद्यालं तमं तोम द्वांगधारी ?
पृथ्वी - रामुद्र - संरिता - नर - नाग - सृष्टि;
मांगल्य - मूल - मय वारिद्र वारिष्ट्रीष्ट।
कर्तार कीन इन्क़ा ? किस हेतु नाना—
व्यापार - भार सहता - रहता महाना ?
विस्तीर्ण विश्व रच लाभ न जो उठाता;
स्रष्टा समर्थ फिर क्यों उसके। बनाता ?
जो हानि-लाभ कुछ भी उसके। न होता;
तो मूल्यवान् फिर क्यों निज़ काल खेता ?

सुरम्यता ही जमगीन नांति है; श्राह्तय खारण रस है मगेहरे। शरीर तेरा सब शब्दम,ण हैं; नितांत निष्कर्ष, यही, यही,

ऊपर कहा गया है कि इल्संभ में द्वितेशी की विज्ञाणा में किवता किया करते थे; वाद में उन्होंने खड़ी देग्ली की अपना लिया। पर खड़ी वोली की उनकी प्रारंभिक कविताओं से स्वर्णिय पंडित श्रीधर पाठक जी तथा स्वर्णीय पंडित नाथ्राम शंकर जी की रचनाओं में कहीं कहीं व्रज्ञभाषा की पुट मिलती है। किसी सीमा तक यह स्वाभाविक भी था। द्विवेशी जी तब सस्कत-कियों का अध्ययन कर रहे थे। इसका भी उनके विचारों पर वड़ा प्रभाव पड़ा। यहाँ उनकी उन समय की एक किता उदाहरणार्थ दी जाती है। विषय पर संस्कृत-साहित्य के दाशीनक विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। और भाषा—

क्या वस्तु मृत्यु ? जिसके भय से विचारे । होते प्रकंप परिपूर्ण मजुष्य सारे । क्या विह्न है ? विणिख है ? यहि है विपारी ? किंवा विद्यालं तमं नोम टड़ांगधारी ? पृथ्वी - रामुद्र - 'सरिता - नर - नाग - सृष्टि; मांगलय - मृल - मय ' वारिद्र वारितृष्टि । कर्तार कीन इनका ? किस हेतु नाना— व्यापार - भार सहता - रहता महाना ? विस्तीर्या विश्व रच लाभ न जो उठाता; सप्टा समर्थ फिर क्यों उसका चनाता ? जो हानि-लाभ कुछ भी उसका न होता; तो मृल्यवान फिर क्यों निज़ काल खेता ? त्रपोबली हुनजों के अपर एक व्यक्ष की लक्ष्मा है, मेरा तूप्रसोध साधव है, सभी कही तू आजा है।

भाषा की शुद्धता के बाद भगत की राग्नता का प्रस्त उपस्थित हुआ। पहले लोग ज्वड़ी बोलो में कांबना करनेवाली का ही विरोध करते थे। पर तव खड़ी धोलो का उत्तार तढ़ने लगा और बहुतों ने जजभाषा को छीड़कर दूसो में क्रियता करना शुरू कर दिया तय लोगों ने यह भगड़ा उठामा कि कविता की भागा सरल हो या क्रिप्ट ! द्विवेदी जी के रासकालीन बहुत-से विद्वान् क्षिष्ट भाषा के पत्तपाती थे। आरंभ की द्विनेदी जी की कविताओं की भाषा भी किए ही है; इसके दो-एक उदाहरण 'कविता-कलाप' में भी मिलने हैं। पर कालान्तर में वे सरल भाषा के पद्माती हो गये। उनका कथन था कि हिंदी के अतिरिक्त सभी उन्नत भाषाओं में भन्न और पद, दोनों की भाषा एक ही है। श्रतः हमारा कर्तव्य भी यही है कि श्रन्य सभ्य समाजों की तरह जिस भाषा में गद्य लिखा जाता है उसी में कविता भी करें। दूसरा कारण यह भी था कि द्विवेदी जी हिंदी-भाषा को लरल बनाकर उसका प्रचार-प्रकार 'वढ़ाना चाहते थे। यहाँ 'कबिया-कलाप' से उनकी बोलवाल की भाषा की कविता का एक नजूना दिया. जाता है—

^{*} इनते हैं, उनक मन में उस समय जिलियम वर्ड स्वर्थ का यह पुराना सिद्धान्त भी कुछ जम गया था कि गव और पद्य का जिन्यास पद्य ही प्रकार का होना चाहिए। वर्ड स्वर्थ अपने इस सिद्धान्त पर स्थिर न रह सका, कालान्तर में उसका यह सिद्धान्त असंगत सिद्ध हुपा—उरक्रप्ट कविताओं में उसका पालन न असा जा सका। द्विवेदी जी ने भा वरावर उक्त निद्धान्त के अनुकूल रचना नहीं की है। अपनी किवता में अनुप्रास व कामलकातपदावली का व्यवहार उन्होंने किया है।

तपोबली इतजों के अपर एक व्यक्ष हो। क्षता है, मेरा तूफ्रमोध साधव है, राक्ष कहीं तू नाता है।

भाषा की शुद्धता के वाद भगत की राम्नता का प्रस्त उपस्थित हुआ। पहले लोग ज्वड़ी बोलो में कांवना करनेवाली का ही विरोध करते थे। पर तब खुरी धोलो का एनार नढ़ने लगां और बहुतों ने जनभाषा की हिंजिकर द्यां ने कियता करना शुरू कर दिया तव लोगों ने यह भगड़ा उठापा कि कविता की भागा सरल हो या क्षिष्ट । द्विनेदी जी के रासकालीन बहुत-से विद्वान् क्षिष्ट भाषा के पत्तपाती थे। आरंभ की दिलेवी जी की कविताओं की भाषा भी क्रिष्ट ही है; इसके दो-एक उदाहरण 'कविता-कलाप' में भी मिलने हैं। पर कालान्तर में वे सरत मापा के पदमाती हो गये। उनका कथन या कि हिंदी के अतिरिक्त सभी उन्नत भाषाओं में भन्न छौर पद्य, श्रन्य सभ्य समाजों की तरह जिस भाषा में गद्य तिखा जाता है उसी में कविता भी करें। दूसरा कारण यह भी था कि द्विवेदी जी हिंदी-भाषा को लरल वनाकर उसका प्रचार-प्रकार वढ़ाना चाहते थे। यहाँ 'कविता-कलाप' से उनकी बोलवाल की भाषा की कविता का एक नमूना दिया. जाता है—

^{*} जुनते हैं, उनक मन में उस भमय विलियम वर्डस्वर्थ का यह पुराना सिद्धान्त भी कुछ जम गया था कि गव छोर पछ का विन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए। वर्डस्वर्थ अपने इस सिद्धान्त पर स्थिर न रह सका, कालान्तर में उसका यह सिद्धान्त असंगत सिद्ध हुचा—उत्क्रष्ट कविताओं में उसका पालन न उसका यह सिद्धान्त असंगत सिद्ध हुचा—उत्क्रष्ट कविताओं में उसका पालन न किया जा सका। द्विवेदी जो ने भा दरावर उक्त निद्धान्त के अनुकृत रचना नहीं की है। अपनी कविता में अनुप्रास व कामलकांतपदावली का व्यवहार उन्होंने किया है।

वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। पहले तो लोग द्विवेदी जी की वातों का विरोध करते रहे; पर अंत में उन्होंने उनका कहना मान लिया। यह बात उन्होंने स्वसम्पादित 'कविता-कलाप' को भूमिका में, २ फरवरी, १६०६ में लिखी हे—

"किसी-किसी की राय है कि वोल-चाल की भाषा में श्रव्छी किता नहीं हो सकती।प्र इस पुस्तक में श्रिध गंश कितायें वोल-चाल की भाषा में हैं श्रीर उनमें शब्दों का श्रंग-भंग बहुत कम हुआ है। इस नये ढंग की कितायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होते देख बहुत लोग श्रव इंनकी नक्षज श्रिकता से करने लगे हैं।"

द्विवेदी जी के इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि वे व्रजमापा या अन्य भाषा की किंवताओं का आदर नहीं करते थे। संस्कृत की किंवता का तो उन्होंने अनुवाद किया ही है; व्रजमापा और उर्दू की किंवता का भी वे आदर करते थे। इस कथन की पुष्टि उनके इस वाक्य से होती है—

"कविता यदि सरस श्रीर भावमयो है ता उसका श्रवश्य श्रादर होगा—भाषा उसकी चाहे बन की है। चाहे उर्दू ।"

—सरस्वती (१४-४-२२**८**)

साहित्य-सेवा में पदार्पण करने के पहले, विद्यार्थी की हैसियत से, द्विवेदी जी कुछ दिनों तक वंबई की छोर रहे थे। वहाँ उनका परिचय मराठी-भाषा से हुआ था। उन्होंने उसका थोड़ा-बहुत अध्ययन किया। इस भाषा के साहित्य से वे बड़े प्रभावित हुए। मराठी-कविता में संस्कृत के छंदों का अधिकतर ज्यवहार होता. है। द्विवेदी जी संस्कृत के विद्यार्थी थे और उसके कवियों की सरस छोर मनोहर उक्तियों का आनंद ले

वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। पहले तो लोग द्विवेदी जी की वातों का विरोध करते रहे; पर अंत में उन्होंने उनका कहना मान लिया। यह वात उन्होंने स्वसम्पादित 'कविता-कलाप' को भूमिका में, २ करवरी, १६०६ में लिखी है—

"किसी-किसी की राय है कि बोल-चाल की भाषा में अच्छी किवता नहीं हो सकती।प्र इस पुस्तक में अधिकांश किवतायें बोल-चाल की भाषा में हैं और उनमें शब्दों का खंग-भंग बहुत कम हुआ है। इस नये ढंग की किवतायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होते देख बहुत लोग खब इंनकी नक्षत अधिकता से करने लगे हैं।"

द्विवेदी जी के इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि वे व्रजमापा या अन्य भाषा की किवताओं का आदर नहीं करते थे। संस्कृत की किवता का तो उन्होंने अनुवाद किया ही है; व्रजमापा और उर्दू की किवता का भी वे आदर करते थे। इस कथन की पुष्टि उनके इस वाक्य से होती हैं—

"कविता यदि सरस श्रीर भावमयो है ता उसका श्रवश्य श्रादर होगा—भाषा उसकी चाहे बन की हो चाहे उद्दें।"

--- सरस्वती (१४-४-२२**८**)

साहित्य-सेवा में पदार्पण करने के पहले, विद्यार्थी की हैसियत से, द्विवेदी जी कुछ दिनों तक वंवई की छोर रहे थे। वहाँ उनका परिचय मराठी-भाषा से हुआ था। उन्होंने उसका थोड़ा-बहुत अध्ययन किया। इस भाषा के साहित्य से वे बड़े प्रभावित हुए। मराठी-कविता में संस्कृत के छंदों का अधिकतर ज्यवहार होता. है। द्विवेदी जी संस्कृत के प्रिचार्थी थे और उसके किवयों की सरस और मनोहर उक्तियों का आनंद ले

तक पहुँचाया जाय. जिससे हिंदी का प्रचार-प्रमार वह । संस्कृत-भाषा और हिंदू-मंस्कृति के पत्तपाती वे थे ही । उनके इस आदर्श की दूसरों ने भी समका और बहुतों ने संस्कृत के वृत्तों की अपना लिया ।

पर द्विवेदी जी छंद की किश्रता की आतमा नहीं मानते थे। उनका कथन था कि छंद किश्ना के लिए उसी प्रकार है, जैसा कामिनी का सौंदर्य बढ़ाने के लिए अलंकार। कुछ लोग कहा करते हैं कि विशेष छंदों का प्रयोग करने से ही किश्ना में माधुर्य रहना है। द्विवेदी जी ऐसे कथन का भी विरोध करने थे। वे 'अभित्राचर' के भी पत्तपाती थे। संभव है, इसका कारण उनका संस्कृत का अध्ययन हो। इस बात को उन्होंने वंग-किश्न माइकेल मधुसूद्दनद्त्त के जीवनचरित में स्वीकार किया था। उन्होंने लिया है—

'वय इस प्रकार के (श्रमित्राचर) छंद्र घँगका में लिखे जा सकते हैं श्रीर यही योग्यता से जिखे जा सकते हैं तथ हिंदी में भी उनका लिखा जाना संभव है। लियनेवाला श्रव्हा श्रीर योग्य होना चाहिए।''

---सग्स्वती (जुनाई-स्थास्त, १६०३)

प्राचीन दरवारी-त्रालोचना-प्रणाली के पत्पाती कविता सें शुभाशुभ गणों का बहुत क्षिषिक ध्यान रखते थे। सुनते हें, त्रशुभ गणों के कविता के क्षारंभ में त्राज्ञाने से लेखक या उनके संवंधियों की बुरा फल भुगतना पड़ता है। जिनके ऐसे विचार हैं वे छंद में एक मात्रा के भी बड़ जाने पर हाय-जीवा मचा देते हैं। इसका एक उदाहरण हैं—

> पाद पीठ की शोभित करते हुए इन्द्र ने इतने पर

तक पहुँचाया जाय. जिससे हिंगी का प्रचार-प्रसार वह । संस्कृत-भाषा और हिंदू-संस्कृति के पत्तपाती वे थे ही । उनके इस स्प्राहर्श के। दूसरों ने भो समका और बहुतों ने संस्कृत के वृत्तों के। स्थना लिया।

पर द्विवेदी जी छंद को कविता की छात्मा नहीं मानते थे। उनका कथन था कि छंद कविता के लिए उसी प्रकार है, जैसा कामिनी का सोंदर्य बढ़ाने के लिए छालंकार। कुछ लोग कहा करते हैं कि विशेष छंदों का प्रयोग करने से ही कविता में माधुर्य रहता है। द्विवेदी जी ऐसे कथन का भी विरोध करते थे। वे 'श्रमित्राचर' के भी पच्चपाती थे। संभव है, इसका कारण उनका संस्कृत का छाध्ययन हो। इस बात को उन्होंने बंग-किय माइकेल माधुसृद्नदत्त के जीवनचरित में स्वीकार किया था। उन्होंने लिखा है—

'' अय इस प्रकार के (श्रमित्राचर) छुंद बँग आ में लिखे जा सकते हें श्रीर यदी योग्यता से लिखे जा सकते हैं तब हिंदी में भी उनका लिखा जाना संभव हैं। लिखनेयाला श्रद्धा श्रीर योग्य होना चाहिए।''

--- सग्हवती (जुनाई-खगस्त, १६०३)

प्राचीन दरवारी-स्रालीचना-प्रणाली के पद्माती कविता में शुभाशुभ गणों का बहुत स्रिधिक ध्यान रखते थे। सुनते हैं, स्रशुभ गणों के कविता के स्रारंभ में स्राजाने से लेखक या उनके संविधियों की बुरा फल भुगतना पड़ना हैं। जिनके ऐसे विचार हैं वे छंद में एक मात्रा के भी वड़ जाने पर हाय-तोवा मचा देते हैं। इसका एक उदाहरण हैं—

पाद पीठ के। शोभित करते हुए इन्द्र ने इतने पर Sanskrit in Hindi. Above all it is certain and admitted by all connected with Hindi Literature that you have shown a path, quite new and better to the persent generation of Hindi writers.

-Baij Nath Gyani Dutt

संस्कृत-कविता के प्रेमी संस्कृत-वृत्तों की हिंदी में प्रचलित होते देखकर बड़े प्रसन्न हुए। श्री राधाचरण गोस्वामी भी ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। वे वैजनाथ ज्ञानीदत्त जी से भी आगे चढ़ गये। अपने पत्र के साथ, द्विवेदी जी की प्रशंसा में, उन्होंने कई छंद लिखकर भेजे थे। उस पत्र में उन्होंने द्विवेदी जी से निवे-दन करते हुए लिखा—

'श्रापकी सहद्रयता, मर्मज्ञता, कान्यासिकता ने मुक्ते प्रापकी. स्तुति करने को प्रोत्ताहित किया श्रीर विशेषतः श्राप व्यवन्ततिलका छुंदों में को किता-रचना वरते हैं, यहुत ही मधुर हैं। पर इसका श्रास्वादन यहुत थोड़ा मिला। कुछ विशेष किता इन्हीं छुंदों में की जिए ते। यहा सुख हो।

9

श्रहो महाबीरणसाद भाई जो तें नई कान्यसुधा वहाई पीवें तक तृप्ति न नेक श्राई करें कहाँ जों तुमरी वहाई

₹

समंज्ञ हो सहद्यी रसिकायगण्य हिंदीहितैपि जन तो सम नाहिं श्रन्य Sanskrit in Hindi. Above all it is cert in and admitted by all connected with Hindi Literature that you have shown a path, quite new and better to the persent generation of Hindi writers.

. -Baij Nath Gyani Dutt

संस्कृत-कियता के प्रेमी संस्कृत-वृत्तों के। हिंदी में प्रचितत होते देखकर बड़े प्रसन्न हुए। श्री राधाचरण गोस्वामी भी ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। वे वैजनाथ ज्ञानीदत्त जी से भी आगे बढ़ गये। अपने पत्र के साथ, द्विवेदी जी की प्रशंसा में, उन्होंने कई छंद लिखकर भेजे थे। उस पत्र में उन्होंने द्विवेदी जी से निवे-दन करते हुए लिखा—

"आपकी सहदयता, मर्भज्ञता, काव्यरसिकता ने मुक्ते आपकी, स्तुति करने को प्रोस्ताहित किया और विशेषतः आप वसन्ततिलका छुंदों में को कविता रचना करते हैं, बहुत ही मधुर हैं। पर इसका आस्वादन बहुत थोड़ा मिला। कुछ विशेष कविता इन्हीं छुंदों में की जिए ते। बढ़ा सुल हो।

3

थहो महावीरप्रसाद भाई जो तें नई कान्यसुधा वहाई पीवें तक सृप्ति न नेक थाई करें कहाँ लों तमरी वहाई

ર

ममंज्ञ हो सहद्वी रसिकाश्रगण्य हिंदीहितैषि जन तो सम नाहिं श्रन्य िद्विवेदी जी की ७० वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आज सं लगभग ६ वर्ष पहले यह लिखा गया था। लेख का कुछ श्रंश यों है—

"श्रीमान हिनेदो जी ने श्राजनम सरस्वती की उपासना करके, प्रेमियों के सारस्वतपान कराकर ऐसा श्रपना लिया है कि "बसुधेव कुटुम्बकम्' होकर श्राप बैठ गये। श्रापने श्रनेक निषयों पर हृद्वयाम काच्य लिखे हैं। श्रापका वैशिष्ट्य यह है कि पहले हिंदी के लिए जो छंद श्रपित्वत थे श्रथांत – शार्ट्रल विक्रीहित, सम्धरा, मालिनी, शिखरिणी श्रादि, हनमें भाषा काच्य लिखकर श्रापने छंदःशास्त्र की महिमा बढ़ाई है। श्रापनी कृति श्रत्यन्त सरल, सुगम व उद्योधक है। जरावस्था को उद्देश्य कर इस नरदेह का जो लिखन वर्णन करके भगवदनुग्रह की श्राकांचा प्रदर्शित की है, वह श्रापका काच्य हिन्दी-ग्रान-मण्डल में प्रतिभासंपत्र है।"

- हंस, श्रमिनंदर्नाक (श्रप्रैल १६३३, प्रष्ट १३)

इन तीनों श्रयतरणों से एक वात वड़े महत्त्व की जात होती है। यह यह कि तीनों ही लेखकों ने द्विवेदी जी को इसी कारण इतना महत्त्व दिया है कि उन्होंने संस्कृत के छंदों का हिंदी में प्रचार किया, जैसा उनके पहले प्रायः किसी ने नहीं किया था। इन लेखकों ने न तो उनके मार्वों की प्रशंसा की है श्रीर न भाषा की। वास्तव में १८०० तक की उनकी रचनायें भाषा और भाव की दृष्टि से विशेष श्रनुकरणीय थीं भी नहीं। उनका उद्देश्य श्रीर लद्य भी निश्चित नहीं था। इसी से इस विषय के संबंध में स्वयं वैजनाथ जी ने श्रपन उपर्यक्त पत्र में लिखा है—

But to make your influence felt deeply it is necessary that you should lay the G...dalation

िद्विवेदी जी की ७० वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आज से लगभग ६ वर्ष पहले यह लिखा गया था । लेख का कुछ अंश यों है—

"श्रीमान द्विवेदों जी ने श्राजन्म सरस्वती की उपासना करके, प्रेमियों के सारस्वतपान कराकर ऐसा श्रपना लिया है कि "वसुधेव कुटुम्बकम्' होकर श्राप बैठ गये। श्रापने श्रनेक विषयों पर हृद्यगम काच्य लिखे हैं। श्रापका वैशिष्ट्य यह है कि पहले हिंदी के लिए जो छंद श्रपरिचित थे श्रथांत् – शार्ट्र्ल विकीहित, स्नग्धरा, मालिनी, शिखरिशी श्रादि, इनमें भाषा काच्य लिखकर श्रापने छंदःशास्त्र की महिमा बढ़ाई है। श्रापनी कृति श्रस्यन्त सरल, सुगम व उद्योधक है। जरावस्था को उद्देश्य कर इस नरदेह का जो लिखत वर्णन करके भगवदनुग्रह की श्राकांचा प्रदर्शित की है, वह श्रापका काच्य हिन्दी-गगन-मण्डल में प्रतिभासंपन्न है।"

- हंस, श्रमिनंदर्नाक (श्रप्रैल १६३३, पृष्ट १३)

इन तीनों अयतरणों से एक वात वड़े महत्त्व की जात होती है। यह यह कि तीनों ही लेखकों ने द्विवेदी जीं को इसी कारण इतना महत्त्व दिया है कि उन्होंने संस्कृत के छंदों का हिंदी में प्रचार किया, जैसा उनके पहले प्रायः किसी ने नहीं किया था। इन लेखकों ने न तो उनके भावों की प्रशंसा की है और न भाषा की। वास्तव में १८०० ते कि उनकी रचनायें भाषा और भाव की दृष्टि से विशेष अनुकरणीय थों भी नहीं। उनका उद्देश्य और लच्य भी निश्चित नहीं था। इसी से इस विषय के संबंध में स्वयं वैजनाथ जी ने अपने उपर्युक्त पत्र में लिखा है—

But to make your influence felt deeply it is necessary that you should lay the G...dalation

में सफल हो सकेगा, इसमें सन्देह है। द्विवेदी जी में कल्पना की विशेष उड़ान तो नहीं थी, पर सुधार करने की सात्त्विक भावना उनमें इतनी प्रवल थी कि अवसर पाने पर वे अपने को रोक ही न पाते थे; उनका स्वभाव ही ऐसा था। वे चाहते थे कि जितने भी व्यक्तियों का उनसे संबंध है उनमें किसी प्रकार का भी अवगुण न रह जाय। 'सरस्वनी' के संपादक, हिंदी-भाषा-भाषी और अंत में भारतीय होने के नाते उनका संबंध भारत के निवासियों तक ही सीमित नहीं था और वे सभी के। अपना संदेश सुनाना चाहते थे ! यहाँ तक कि उनके प्रायः प्रत्येक परिच्छेद में किसी न किसी प्रकार का उद्देश्य अवश्य निहित है और कविता के लिए तो प्रायः वे विषय ही ऐसा चुनते थे जिसमें उन्हें खूव उपदेश देने का अवसर प्राप्त हो सके। यही कारण है कि उनकी कवितायें काव्य-कला की कसौटी पर कसे जाने पर खरी न उतरीं। उनमें अंतरंग की शोभा की अपेना भाव-विन्याम का चमत्कार ही ऋधिक है। 'वे उपदेशप्रधान हैं, वस्तु की व्यंजना करती हैं। श्रांतर के तारों का भनकारती नहीं, वाहर ही ठक-ठक करके चुप हो जाती हैं।' उनमें हृदय-स्पर्श करने की विशेष चमता नहीं। यों हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी को मुक्तक पद्यों की ऋपेचा छोटे-छोटे कथानकों में ऋधिक सफलता मिली है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला, द्विवेदी जी की उपदेशात्मक कथानकप्रियता! उनकी कविता में भारतेंदु हरिश्चंद्र की-सी कल्पना की कमनीय शक्ति के दर्शन नहीं होते। वारतव में घटना का सूत्र ऐसे कवियों के लिए अत्यंत आवश्यक है जो अन्य कार्यों में संलग्न रहकर कविता के लिए भी समय निकालना चाहता है। कथानक की रोचकता ही उसकी कविता का आकर्षण रहता है। फिर मुक्तक की प्रणाली

में सफल हो सकेगा, इसमें सन्देह है। द्विवेदी जी में कल्पना की विशेष उड़ान तो नहीं थी, पर सुधार करने की सात्त्विक भावना उनमें इतनी प्रवल थी कि अवसर पाने पर वे अपने को रोक ही न पाते थे; उनका स्वभाव ही ऐसा था। वे चाहते थे कि जितने भी व्यक्तियों का उनसे संबंध है उनमें किसी प्रकार का भी अवगुरण न रह जाय। 'सरस्वनी' के संपादक, हिंदी-भाषा-भाषी और अंत में भारतीय होने के नाते उनका संबंध भारत के निवासियों तक ही सीमित नहीं था और वे सभी के। ऋपना संदेश सुनाना चाहते थे ! यहाँ तक कि उनके प्रायः प्रत्येक परिच्छेद में किसी न किसी प्रकार का उद्देश्य अवश्य निहित है और कविता के लिए तो प्रायः वे विषय ही ऐसा चुनते थे जिसमें उन्हें ख़ूव उपदेश देने का अवसर प्राप्त हो सके। यही कारण है कि उनकी कवितायें काव्य-कला की कसौटी पर कसे जाने पर खरी न उतरीं। उनमें श्रंतरंग की शोभा की अपेता भाव-विन्याम का चमत्कार ही ऋधिक हैं। 'वे उपदेशप्रधान हैं, वस्तु की व्यंजना करती हैं। श्रंतर के तारों के। भनकारती नहीं, वाहर ही ठक-ठक करके चुप हो जाती हैं।' उनमें हृदय-स्पर्श करने की विशेष चमता नहीं। यों हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी को मुक्तक पद्यों की अपेचा छोटे-छोटे कथानकों में अधिक सफलता मिली है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला, द्विवेदी जी की उपदेशात्मक कथानकप्रियता। उनकी कविता में भारतेंदु हरिश्चंद्र की-सी कल्पना की कमनीय शक्ति के दर्शन नहीं होते । वास्तव में घटना का सूत्र ऐसे कवियों के लिए अत्यंत आवश्यक है जो अन्य कार्यों में संलग्न रहकर कविता के लिए भी समय निकालना चाहता है। कथानक की रोचकता ही उसकी कविता का त्राकर्पण रहता है। फिर मुक्तक की प्रणाली उसमें काव्यकला का वास्तविक जीवन-संदन क हैं। कहीं हैं"। ग्रस्तु।

इस विषय में द्विवेदी जी का वारतिवक महत्त्व यह है कि उनके "शुद्ध सात्त्विक आचार ने कविता के चेत्र को प्रभावित किया। इस चेत्र में उनकी सबसे बड़ी देन खड़ी बोली, भाषा की सफाई और लंस्कुनवृत्तों का प्रवेश हैं और सबके पीछ हैं वह सात्त्विक प्रेरणा, जो उनके जीवन के मूल से उच्छ्वसित होकर उनकी साहित्य-सेवा के कोने-कोने में फेल गई।" दूसरे शब्दों में उनके व्यक्तित्व ने अपने समय के प्रायः सभी कवियों पर कुछ न कुछ प्रभाव अवस्य डाला। 'सर्खिती' में जितनी कवितायें प्रकाशित होती थीं, उन पर द्विवेदी जी की छाप रपष्ट है। 'क्विता-कलाप' की भूमिका में उन्होंने लिखा है—

"चित्र-कला श्रीर कविता का यनिष्ठ संबंध है। दोनों में एक प्रकार का श्रने। सा साहरथ है। दोनों का नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के दश्यों श्रीर मनोविकारों की चित्रित करना है। जिस बात की चित्रकार चित्र द्वारा व्यक्त करता है, उसी बात की किब किवता द्वारा व्यक्त कर सकता है। किवता भी एक प्रकार का चित्र है। किवता के श्रवण से श्रानंद होता है; चित्र के दर्शन से। विव श्रीर चित्रकार में किसका श्रासन उद्य है इसका निर्णय करना कितन है; क्योंकि किसी चित्र के भाव की किवता द्वारा व्यक्त करने से जिस प्रकार श्रलोंकिक श्रानंद की वृद्धि होती है, उसी प्रकार के किवता-गत किसी भाव के चित्र देखने से नेत्र हारा स्पष्ट करने से भी उसकी वृद्धि होतो है। चित्र देखने से नेत्र हित होते हैं, किवता पढ़ने या सुनने से कान।"

पर विषय-संबंधी यह आदर्श और अंतःकरण की स्पर्श करनेवाली चमता दिवेदी जी और उनके शिष्य-वर्ग की उसमें काव्यकला का वास्तविक जीवन-स्पंत्रन क ही कहीं हैं"। त्रस्तु।

इस विषय में द्विवेदी जी का वारतियक नहत्त् यह है कि उनके "शुद्ध सात्त्विक ग्राचार ने कविता के चेत्र को प्रभावित किया। इस चेत्र में उनकी सबसे हड़ी देन खड़ी बोली, भाषा की सफाई ग्रीर जंस्कुनवृत्तों का प्रवेश हैं ग्रीर सबके पीछे हैं वह मात्त्विक प्रेरणा, जो उनके जीवन के मूल से उच्छ्वसित होकर उनकी साहित्य-सेवा के कीने-कोन में फेल गई।" दूसर शब्दों में उनके व्यक्तित्व ने श्रपने समय के प्रायः सभी कवियों पर कुछ न कुछ प्रभाव श्रवश्य डाला। 'सरस्वर्ता' में जितनी कवितायें प्रकाशित होती थीं, उन पर द्विवेदी जी की छाप रपष्ट है। 'कविता-कलाप' की भूमिका में उन्होंने लिखा है—

"चित्र-कला श्रीर कविता का घनिष्ठ संबंध है। दोनों में एक प्रकार का श्रनेखा साहरय है। दोनों का नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के दरयों श्रीर मनोविकारों के चित्रित करना है। जिस बात के चित्रकार चित्र द्वारा व्यक्त करता है, उसी बात के कि कि वात होरा व्यक्त कर सकता है। कविता भी एक प्रकार का चित्र है। कविता के श्रवण से श्रानंद होता है; चित्र के दर्शन से। विव श्रीर चित्रकार में किसका श्रासन उच है इसका निर्णय करना कि है; क्योंकि किसी चित्र के भाव के किवता द्वारा व्यक्त करने से जिस प्रकार श्रजोंकिक श्रानंद की वृद्धि होती है, उसी प्रकार के किवता-गत किसी भाव के चित्र द्वारा स्पष्ट करने से भी उसकी वृद्धि होती है। चित्र देखने से नेत्र नृक्ष होते हैं, कविता पढ़ने या सुनने से कान।"

पर विषय-संवंधी यह आदर्श और श्रंतःकरण के। स्पर्श करनेवाली चमता द्विवेदी जी और उनके शिष्य-वर्ग की साहित्य के विस्तृत प्रांगण में स्थापित कर आचार्य महावीर-प्रसाद जी द्विवेदी ने मंत्र-पाठ-द्वारा देश के नवयुववसमुदाय को एक अत्यंत शुभ मुहूर्त में आमंत्रित किया और उस घट में कविता की प्राण्-प्रतिष्ठा की।" आंज जिन सत्कवियों के द्वारा हिंदी-साहित्य के काव्य के अंग की पूर्ति हो रही हैं और जिन पर हमें अभिमान है वे किसी समय द्विवेदी जी के शिष्य रह चुके हैं। दूसरे शब्दों में पंडित श्रीधर पाठक की लगाई हुई जिस छोटी पौद को सींचने और अनुप्राणित करने में उन्होंने लगन और साधना से योग दिया था वही उनके जीवन के उत्तराई-काल में पह्नवित हो गई। साहित्य के विस्तृत प्रांगण में स्थापित कर आचार्य महावीर-प्रसाट जी द्विवेदी ने मंत्र-पाठ-द्वारा देश के नवयुवक समुदाय को एक अत्यंत शुभ मुहूर्त में आमंत्रित किया और उस घट में कविता की प्राण्-प्रतिष्ठा की।" आंज जिन सत्कवियों के द्वारा हिंदी-साहित्य के काव्य के अंग की पूर्ति हो रही है और जिन पर हमें अभिमान है वे किसी समय द्विवेदी जी के शिष्य रह चुके हैं। दूसरे शब्दों में पंडित श्रीधर पाठक की लगाई हुई जिस छोटी पीट को सींचने और अनुप्राणित करने में उन्होंने लगन और साधना से योग दिया था वही उनके जीवन के उत्तराई-काल में पह्नवित हो गई। श्रीर ध्यान नहीं देते श्रीर न उसके भावों के। समसने की ही चेष्टा करते हैं। भाषा की क्षिष्टता श्रीर दुरुहता से, वास्तव में, लेखक की विद्वत्ता भी प्रकट नहीं होती। वास्तविक विद्वत्ता तो जन-साधारण के। श्रपने विचारों से परिचित करा सकने में, श्रपना संदेश सभी तक पहुँचा सकने में, है। क्या कालिदास श्रीर तुलसीदास ऐसी रचना नहीं कर सकते थे जिसको बड़े-बड़े विद्वान भी न समस पाते १ पर उन्होंने वैसा नहीं किया, श्रपनी सरल श्रीर सरस रचना के लिए ही वे श्राज विश्व में प्रसिद्ध हैं।

द्विवेदी जी भी इसी सिद्धांत के पत्तपाती थे। उनके प्राद्धभीव के समय खड़ी बोली के तीन रूप मिलते थे। पहला भाषा का संस्कृतमय रूप जिसके जन्मदाता राजा लच्मण्सिंह सममे जाते थे। दूसरा हिंदी का वह रूप जिसमें अरवी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य था ऋौर राजा शिवप्रसाद जिसके पच्चपानी थे। हिंदी के इस रूप का प्रचार मुसलमानों में तो था ही, हिंदुओं को भी इसे प्रहण करना पड़ा था। तीसरे मन के प्रद-र्शक भारतेंद्र बाबू हरिश्चंद्र थे। उनके हृदय में देश-प्रेम का स्रोत प्रवाहित हो रहा था, वे भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वयं अनवरत परिश्रम करते थे और चाहते थे कि सभी भारतवासी इसे अपना कर्तव्य समभें। अपना यह संदेश दूसरों तक पहुँ-चाने के लिए उन्हें हिंदी के उस रूप का प्रचार करना पड़ा जिसे जन-प्राधारण सरलता से समक सके। इसलिए इनकी भाषा में त्रावश्यकतानुसार भावों को स्पष्ट करने के लिए ही शब्दों का प्रयोग होता था। ये शब्द संस्कृत के भी होते थे त्रीर अरबी-फारसी के भी-कुछ अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी होने लगा था। सर्वसाधारण की वोलचाल की भाषा यही थीं।

श्रीर ध्यान नहीं देते श्रीर न उसके भावों को सम्भने की ही त्रेष्टा करते हैं। भाषा की क्षिष्टता श्रीर दुरूहता से, वास्तव में, लेखक की विद्वत्ता भी प्रकट नहीं होती। वास्तविक विद्वत्ता तो जन-साधारण को श्रपने विचारों से परिचित करा सकने में, श्रिश सभी तक पहुँचा सकने में, है। क्या कालिदास श्रीर तुलसीदास ऐसी रचना नहीं कर सकते थे जिसको वड़े-बड़े विद्वान भी न समभ पाते ? पर उन्होंने वैसा नहीं किया, श्रपनी सरल श्रीर सरस रचना के लिए ही वे श्राज विश्व में प्रसिद्ध हैं।

द्विवेदी जी भी इसी सिद्धांत के पत्तपाती थे। उनके प्रादुर्भाव के समय खड़ी वोली के तीन रूप मिलते थे। पहला भाषा का संस्कृतमय रूप जिसके जन्मदाता राजा लद्मणसिंह समभे जाते थे। दूसरा हिंदी का वह रूप जिसमें ऋरवी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य था ऋौर राजा शिवप्रसाद जिसके पच्चपानी थे। हिंदी के इस रूप का प्रचार मुसलमानों में तो था ही, हिंदुओं की भी इसे प्रहण करना पड़ा था। तीसरे मप के पद-र्शक भारतेंदु वाबू हरिश्चंद्र थे। उनके हृद्य में देश-प्रेम का स्रोत प्रवाहित है। रहा था, वे भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वयं अनवरत परिश्रम करते थे और चाहते थे कि सभी भारतवासी इसे अपना कर्तव्य समभें। अपना यह संदेश दूसरों तक पहुँ-चाने के लिए उन्हें हिंदी के उस रूप का प्रचार करना पड़ा जिसे ्जन-साधारण सरलता से समफ सके। इसलिए इनकी भाषा में आवश्यकतानुसार भावों को स्पष्ट करने के लिए ही शब्दों का प्रयोग होता था। ये शब्द संस्कृत के भी होते थे और अरवी-फारसी के भी—कुछ अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी होने ृ लगा था। सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा यही थीं।

में प्रचितत भाषा की अपनाकर अपना संदेश भारत के बच्चे-वचे तक पहुँचा देना चाहा। कुछ लोगों ने इसका विरोध किया; पर बहुतों ने इसे अपनाया भी। द्विवेदी जी भी ऐसे ही लोगों में थे। वे सरल से सरल भापा लिखने के पद्म में थे—न संस्कृत शन्दों का विरोध या वहिष्कार करते थे, न अरवी-कारसी का ही। उनका मत था कि प्रचलित शब्दों के। अपना लेना ही हिंदी-भाषा-भाषियों के लिए उपयुक्त होगा, चाहे ये शब्द संस्कृत के हों, चाहे अरबी-फारसी या अँगरेजी के। इसी से उनकी भाषा में न तो संस्कृत के तत्कालीन पन्तपातियों का-सा सामासिक शब्द-जाल है त्रौर न उर्द्-लेखकों की भाषा की कलावाजियाँ या चुलवुलाहट। इनकी भाषा में सजीवता है और स्वाभाविकता भी, जिसका पढ़ कर और समभकर पाठक मुदित हो जाता है। उनकी भाषा के इस गुए पर वहुत से लोग लट्टू थे, और हैं भी। अक्टूबर सन् १६३४ के 'विशाल-भारत' में उसके संपादक पंडित वनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके एक पत्र की अपने नोट के साथ प्रकाशित किया था। यह पत्र उनके स्वभाव का द्योतक तो है ही, साथ ही, उनकी भापा का भी नमूना है। पत्र चतुर्वेदी जी की ही लिखा गया था जो इस प्रकार है-

दौलतपुर (रायवरेली)

१४-५-३४

''नमस्कार,

१९ मई का कार्ड मिला। यह जानकर वड़ी ख़ुशी हुई िक श्रापके वर्मा की मेरे पुराने मेहरवान वाबू कृष्णदास जी के भतीजे हैं।

में प्रचितत भाषा की अपनाकर अपना संदेश भारत के बच्चे-वचे तक पहुँचा देना चाहा। कुछ लोगों ने इसका विरोघ किया; पर बहुतों ने इसे अपनाया भी। द्विवेदी जी भी ऐसे ही लोगों में थे। वे सरल से सरल भापा लिखने के पन्न में थे—न संस्कृत शब्दों का विरोध या वहिष्कार करते थे, न अरवी-कारसी का ही। उनका मत था कि प्रचलित शब्दों की श्रपना लेना ही हिंदी-भाषा-भाषियों के लिए उपयुक्त होगा, चाहे ये शब्द संस्कृत के हों, चाहे अरबी-फारसी या अँगरेजी के । इसी से उनकी भाषा में न तो संस्कृत के तत्कालीन पत्तपातियों का-सा सामासिक शब्द-जाल है और न उर्दू-लेखकों की भाषा की कलावाजियाँ या चुलवुलाहट। इनकी भाषा में सजीवता है और स्वाभाविकता भी, जिसकी पढ़ कर और समभकर पाठक मुद्ति हो जाता है। उनकी भाषा के इस गुरा पर बहुत से लोग लट्टू थे, और हैं भी। अक्टूबर सन् १६३४ के 'विशाल-भारत' में उसके संपादक पंडित वनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके एक पत्र के। अपने नोट के साथ प्रकाशित किया था। यह पत्र उनके स्वभाव का द्योतक तो है ही, साथ ही, उनकी भापा का भी नमूना है। पत्र चतुर्वेदी जी को ही लिखा गया था जो इस प्रकार है—

दौलतपुर (रायवरेली)

१४-५-३४

''नमस्कार,

११ मई का कार्ड मिला। यह जानकर बड़ी , पुशी हुई कि श्रापके वर्मा जी मेरे पुराने सेहरवान बाबू कृष्णदास जी के भतीने हैं।

वे उसे अस्वीकार कर देते। 'श्रेष्ट', 'श्रेष्टतर' 'श्रेष्टतम' और 'सर्वश्रेष्ट' आदि के व्यवहार का उन्होंने विरोध किया। 'नोकदार नाक' के वदले 'नोकवती नासा' उन्हें नहीं रूच सकती थी। संस्कृत से एक श्रेग्री नीचे का अपभ्रंश, जो हिंदी में अपना लिया जाता है, द्विवेदी जी भी अपना लेते हैं, परंतु इसके आगे वे आप नहीं वढ़ते । यदि द्विवेदी जी पर उर्दू शब्दों को प्रहण करने का दोप लगाया जाता था तो भी वे शांत रह कर ही दोपारोपण करनेवालों को समभाया करते थे। यह वात लगभग २० वर्ष पहले उन्होंने वावू कालिदास जी कप्र, एम० ए०, एल० टी०, को एक पत्र में लिखी थी। पत्र यों है—

डाकखाना दौलतपुर (रायवरेली)

१४-३-१5

''महासयः

पत्र मिला; धन्यवाद । मेरी वही राय है जो श्रापकी है। मैं तद्रनुसार वर्ताय भी करता हूँ। सरल लिखने की चेष्टा करता हूँ। उर्दू भिन्न भाषा नहीं, श्ररवी-फ़ारमी के जो शब्द प्रचलित हैं उन्हें मैं हिंदी ही के शब्द समफता हूँ। मेरे लेख, इस बात के प्रमाण हैं। पहले लेग लिखा करते थे। कहते थे कि यह हिंदी के विगाद रहा है। पर श्रव नहीं चोजते। श्रीर लोग भी 'सरस्वती' का श्रनुकरण करने लगे हैं।

भवदीय म॰ प्र॰ द्विवेदीं⁹

^{*} द्वित्र अ० अ०—प्रस्तावना ।

वे उसे अस्वीकार कर देते। 'श्रेष्ट', 'श्रेष्टतर' 'श्रेष्टतम' और 'सर्वश्रेष्ट' आदि के व्यवहार का उन्होंने विरोध किया। 'नोकदार नाक' के वदले 'नोकयती नासा' उन्हें नहीं रूच सकती थी। संस्कृत से एक श्रेणी नीचे का अपभ्रंश, जो हिंदी में अपना लिया जाता है, द्विवेदी जी भी अपना लेते हैं, परंतु इसके आगे वे आप नहीं वढ़ते । यदि द्विवेदी जी पर उर्दू शक्दों को अहण करने का दोप लगाया जाता था तो भी वे शांत रह कर ही दोपारोपण करनेवालों के सममाया करते थे। यह वात लगभग २० वर्ष पहले उन्होंने वाबू कालिदास जी कप्र, एम० ए०, एल० टी०, को एक पत्र में लिखी थी। पत्र यों हैं—

डाकखाना दौलतपुर (रायवरेली)

१४-३-१=

''महाशयः

पत्र मिला; धन्यवाद । मेरी वही राय है जो आपकी है। मैं तदनुसार वर्लाव भी करता हूँ। सरल लिखने की चेष्टा करता हूँ। उद्िभन्न भाषा नहीं, अरवी-फ़ारमी के जो शब्द पचिलत हैं उन्हें मैं हिंदी ही के शब्द समभता हूँ। मेरे लेख, इस वात के प्रमाण हैं। पहले लोग लिखा करते थे। कहते थे कि यह हिंदी को विगाद रहा है। पर अब नहीं बोजते। और लोग भी 'सरस्वती' का अनुकरण करने लगे हैं।

भवदीय म० प्र० द्विवेदी^ग

:

^{*} द्वि » श्रव या --- प्रस्तावना ।

अन्य किसी राष्ट्रीय आपण से प्रमावित होकर उसे नहीं प्रहण किया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे राष्ट्रीयता या भारतीयता के विरुद्ध थे; उनका पुनीत उद्देश्य यह था कि यदि भाषा के सरल बना दिया जायगा तो जनता—केवल साधारण हिंदी जाननेवाली भी—यह जान सकेगो कि आज संसार में क्या हो रहा है; उसका ज्ञान दहेगा। उनका विश्वास था कि भाषा का मुख्य उद्देश्य यही है कि जन साधारण उसे समफ कर कुछ ज्ञानार्जन करे। 'सरस्वती' में (भाग १६, संख्या १ ए० ५१) उन्होंने इस बात की स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"हिंदी में यदि कुछ लिखना हो तो भाषा ऐसी लिखनी चाहिए लिसे केवल हिंदी जाननेवाले भी सहन हो में समम जायें। संस्कृत श्रौर श्रॅंगरेज़ी शब्दों से लदी हुई भाषा से पांडित्य चाहे भखे ही अकट हो पर उससे ज्ञान श्रामंदद्दान का उद्देश श्रीयक नहीं सिद्ध हो सकता।"

सन् १६२८ के अक्टूबर की 'सरस्वती' में 'भारतीय भाषाओं का अन्वेषण्' शीर्षक द्विवेदी जी का एक नोट प्रकाशित हुआ था। डाक्टर प्रियस्न साह्च ने (Sir George Abraham Grierson, K. C. I. E., Ph. D., D. Litt., L. L. D., I, C. S.—Retired—) भारत का भाषाओं और वोलियों के विषय में अन्वेषण करके १३ भागों में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसी के विषय में द्विवेदी जी का यह नोट था। प्रियस्न साह्व ने भारतीय भाषाओं की संख्या १७६ और वोलियों की संख्या १४४ वर्ताई। द्विवेदी जी ने इस विषय में कुछ नहीं कहा; पर उन्हें इसका दुःख अवश्य हुआ कि हिंदी या हिंदुस्तानी के प्रचार-प्रसार पर प्रियर्सन साह्य ने जानते हुए भी कुछ नहीं लिखा। अतः उन्होंने यह नोट दिया—

अन्य किसी राष्ट्रीय भाषण से प्रभावित होकर उसे नहीं प्रहण किया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे राष्ट्रीयता या भारतीयता के विरुद्ध थे; उनका पुनीत उद्देश्य यह था कि यदि भाषा को सरल बना दिया जायगा तो जनता—केवल साधारण हिंदी जाननेवाली भी—यह जान सकेगो कि आज संसार में क्या हो रहा है; उसका ज्ञान दहेगा। उनका विश्वास था कि भाषा का मुख्य उद्देश्य यही है कि जन साधारण उसे समक्ष कर कुछ ज्ञानार्जन करे। 'सरस्वती' में (भाग १६, संख्या १ पृ० ५१) उन्होंने इस बात की स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'हिंदी में यदि कुछ जिखना हो तो भाषा ऐसी जिखनी चाहिए जिसे केवल हिंदी जाननेवाले भी सहज ही में समक जायें। संस्कृत श्रीर श्रॅगरेज़ी शब्दों से लटी हुई भाषा से पांडित्य चाहे भले ही अकट हो पर उससे ज्ञान श्रानंदशन का उद्देश श्रिधक नहीं सिद्ध हो सकता।''

सन् १६२८ के अक्टूबर की 'सरस्वती' में 'भारतीय भाषाओं का अन्वेषण' शीर्षक द्विवेदी जी का एक नोट प्रकाशित हुआ था। डाक्टर प्रियर्सन साहब ने (Sir George Abraham Grierson, K. C. I. E., Ph. D., D. Litt., L. L. D., I, C. S.—Retired—) भारत का भाषाओं और वोलियों के विषय में अन्वेषण करके १३ भागों में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसी के विषय में द्विवेदी जी का यह नोट था। प्रियर्सन साहब ने भारतीय भाषाओं की संख्या १७६ और वोलियों की संख्या ४४४ बताई। द्विवेदी जी ने इस विषय में कुछ नहीं कहा; पर उन्हें इसका दुःख अवश्य हुआ कि हिंदी या हिंदुस्तानी के प्रचार-प्रसार पर प्रियर्सन साहब ने जानते हुए भी कुछ नहीं लिखा। अतः उन्होंने यह नोट दिया—

"जिस तरह शहरेर के पोषण और उत्यस के लिए जाइर के साध पदार्थों की श्रावश्यकता होती है, हैसे ही सजीव भाषाओं का बाद के लिए विदेशी अवदों और भाषों के मंग्रह भी श्रावश्यकता होती है। जो भाषा ऐसा नहीं करती या जिसमें ऐसा होना बंद हो जाता है, वह उपवास-सी करती हुई, किसी दिन सुदी नहीं तो निर्जीव-की ज़रूर हो जाती है। दूसरी भाषाओं के शब्दों और भाषों के ग्रहण कर जेने की शक्ति रहना ही सजीवता का कजाए में और जीवित भाषाओं का यह स्वभाव, प्रयस्न कम्ने पर भी, परिवास नहीं हो सकता।"

यहाँ तक वे परोज्ञ रूप में भूमिका के ढंग पर छपते उदेश्य से पाठकों को पिरियत कराते रहे, पर फिर अपने को रोक न सके और मानुभाषा हिंदी के प्रेम के आयेश में कह चले—

"हमारी हिंदी सजीव भाषा है। इसी से, संपर्क के प्रभाव में उसने श्ररवी-फ़ारसी श्रीर तुर्की भाषाओं तक के शब्द प्रहण कर लिये हें श्रीर श्रव श्रॅंगरेज़ी भाषा के भी शब्द प्रहण करनी जा रही है। इसे दोष नहीं गुण ही समझना चाहिए। क्योंकि श्रपणी इस ग्राहिका-शक्ति के प्रभाव से हिंदी घषनी वृद्धि ही कर रही है, हांच नहीं। क्यों-क्यों उसका प्रचार बढ़ेगा त्यों-त्यों उसमें नये-नये शब्दों का श्रामन होता जायगा। हमें केवल यह देखते रहना चाहिए कि इस संमिश्रण के कारण कहीं हमारी भाषा श्रपनी विशेषता को खो तो नहीं रही है—कहीं बीच-बीच में श्रन्य भाषाश्रों के वैमेल शब्दों के थोग से वह श्रपना रूप विकृत हो नहीं कर रही है।"

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हिंदी की माहिका-शक्ति के विषय में जनता का ध्यान त्राकपित करने और सरल भाषा "निस तरह शलेर के प्रेयण और उद्यस के लिए वादा के साध पदार्थों की आवश्यकता होती है, वैसे ही सजीव भाषाओं का बाद के लिए विदेशी शब्दों और भावों के संग्रह भी आवश्यकता होती है। जो भाषा ऐसा नहीं करती या जिसमें ऐसा होना वंद हो जाता है, वह उपवास-सी करती हुई. किसी दिन सुदी नहीं तो निर्जीव-सी जरूर हो जाती है। दूसरी भाषाओं के गब्दों और भावों के ग्रहण कर लेने की शक्त रहना ही सजीवता का नजगा है और जीवित भाषाओं का यह स्वभाव, प्रयस करने पर भी, परित्वक्त नहीं हो सकता।"

यहाँ तक वे परोच रूप में—भूमिका के ढंग पर—अपने उद्देश्य से पाठकों को परिचित कराते रहे, पर फिर अपने को रोक न सके और मातृभाषा हिंदी के प्रेम के आपेश में कह चले—

"हमारी हिंदी सजीव भाषा है। इसी से, संपर्क के प्रभाव में उसने अरबी-फारसी और तुर्की भाषाओं तक के शब्द प्रहण कर लिये हैं और अब धँगरेज़ी भाषा के भी शब्द प्रहण करती जा रही है। इसे दोष नहीं गुण ही समभ्रना चाहिए। क्योंकि अपभी इस प्राहिका-शक्ति के प्रभाव से हिंदी घषनी दृद्धि ही चर रही है, हम्म नहीं। उथों-उयों उसका प्रचार बढ़ेगा खों-रयों उसमें नये-नये शब्दों का आगमन होता जायगा। इमें केवल यह देखते रहना चाहिए कि इस संमिश्रण के कारण कहीं हमारी भाषा अपनी विशेषता के। सो तो नहीं रही है—कहीं बीच-बीच में अन्य भाषाओं के वैमेल शब्दों के योग से वह अपना रूप विकृत हो नहीं कर रही है।"

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हिंदी की प्राहिका-शक्ति के विषय में जनता का ध्यान ज्ञाकपित करने और सरल भाषा प्रचार के लिए भी सभी सुदूर प्रांतों में लोग संलग्न हैं। हिंदी को राष्ट्रभाषा समभा जाने लगा है और प्रायः सभी इस बात को स्वीकार भी करने लगे हैं। इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय? हिंदी-भाषा के विशाल और विस्तृत साम्राज्य की नींव डालनेवाला इनके अतिरिक्त हम किसे कह सकते हैं?

अचार के लिए भी सभी सुदूर प्रांतों में लोग संलग्न हैं। हिंदी को राष्ट्रभाषा समभा जाने लगा है और प्रायः सभी इस वात को स्वीकार भी करने लगे हैं। इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय? हिंदी-भाषा के विशाल और विस्तृत साम्राज्य की नींव डालनेवाला इनके अतिरिक्त हम किसे कह सकते हैं?

हो सकती हैं; लेकिन ऐसा होता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक प्रिय विषय होता है और उसी के अनुसार उसकी एक निजी शैली रहती है। द्विवेदी जी इस नियम के अपवाद माने जा सकते हैं। वे संपादक थे और उनका प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, अध्यात्मविद्या, संपत्तिशास्त्र, शासन-पद्धति त्रादि विपय न तो साहित्य के श्रंतर्गत ही समभे जाते थे श्रीर न इन विपयों के लेख ही प्रकाशित होते थे। जब उन्होंने ऐसे ही कुछ नवीन विषयों पर लेख लिखे और लिखवाये, तव उनकी विभिन्न शेलियों का प्रचितत हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसा प्रभाव उन पर उस समय नहीं पड़ सकता था जब पाश्चात्य देशों की तरह यहाँ उन्हें केवल संपादकीय कार्य करना पड़ता। उन देशों में उक्त सभी विषय साहित्य के अन्तर्गत समभे जाते हैं श्रीर पत्र-पत्रिका श्रों में इन विषयों के लेख प्रकाशित होते रहते हैं। पर वहाँ प्रधान संपादक के। ही सभी विषयों का मर्मज़ होने की आवश्यकता नहीं, उनकी सामान्य योग्यता ही अपेन्तित होती है त्रीर उसकी महायता के लिए, मुख्य-मुख्य विपयों के ज्ञाता अनेक उप-संपादक रहते हैं।

पर उपर्युक्त सभी विषय द्विवेदी जी के प्रिय विषय नहीं ये। उनका उद्देश्य और लच्य हिंदी-भाषा का परिष्कार, उनका प्रचार और हिंदी-साहित्य की उन्नति करना रहा था। इसके लिए उनका आलोचना के प्रचलित ढंग का आश्रय लेना पड़ा था। यो उन्होंने एक विशिष्ट लेखनराली—आलोचनात्मक— भो जन्म दिया जो उनकी निजी रीलो है। उनकी आलोचनात्मक रीली के हम ३ भेद कर सकते हैं—

⁽१) त्र्यादेशपूर्ण, (२) स्रोजपूर्ण. (३) भावपूर्ण ।

हो सकती हैं; लेकिन ऐसा होता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक प्रिय विषय होता है और उसी के अनुसार उसकी एक निजी शैली रहती है। द्विवेदी जी इस नियम के अपवाद माने जा सकते हैं। वे संपादक थे श्रीर उनका प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था जव इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, अध्यात्मविद्या, संपत्तिशास्त्र, शासन-पद्धति आदि विपय न तो साहित्य के श्रंतर्गत ही सममें जाते थे श्रोर न इन विपयों के लेख ही प्रकाशित होते थे। जब उन्होंने ऐसे ही कुछ नवीन विषयों पर लेख लिखे चौर लिखवाये, तव उनकी विभिन्न शेलियों का प्रचलित हो जाना केाई आश्चर्य की वात नहीं है। ऐसा प्रभाव उन पर उस समय नहीं पड़ सकता था जव पाश्चात्य देशों की तरह यहाँ उन्हें केवल संपादकीय कार्य करना पड़ता। उन देशों में उक्त सभी विषय साहित्य के अन्तर्गत समके जाते है श्रीर पत्र-पत्रिकाश्रों में इन विषयों के लेख प्रकाशित होते रहते हैं। पर वहाँ प्रधान संपादक के। ही सभी विषयों का मर्मन होने की आवश्यकता नहीं, उनकी सामान्य योग्यता ही अपेद्मित होती है ख्रीर उसकी महायता के लिए, मुख्य-मुख्य विपयों के ज्ञाता अनेक उप-संपादक रहते हैं।

पर उपर्युक्त सभी विषय द्विवेदी जी के प्रिय विषय नहीं थे। उनका उद्देश्य और लद्य हिंदी-भाषा का परिष्कार, उमका प्रचार और हिंदी-साहित्य की उन्नति करना रहा था। इसके लिए उनका आलोचना के प्रचलित ढंग का आश्रय लेना पड़ा था। यों उन्होंने एक विशिष्ट लेखनशंली—आलोचनात्मक— था। यों उन्होंने एक विशिष्ट लेखनशंली—आलोचनात्मक को जन्म दिया जो उनकी निजी शेलो हैं। उनकी आलोचनात्मक शेली के हम ३ भेद कर सकते हैं—

(१) त्रादेशपूर्णः (२) छोजपूर्णः (३) भावपूर्णः ।

"जी मनुष्य अपनी संतित के जोवन को ययाशक्ति सार्थक करने की येग्यता नहीं रखने अयदा जान बूक्त कर उम नरफ्रध्यान नहीं देते, उनके पिता बनने का अधिकार नहीं; उनको पुत्रोत्पादन करने का अधिकार नहीं; उनको विवाह करने का अधिकार नहीं।"

— 'शिचा' भूमिका पृ० २

इन अवतरणों के। यदि उचित ढंग से पेंदा जाय तो सुननेत्रालों पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। यही इस शैली की विशेषता है और यही इसका उद्देश्य।

(३) भावपूर्ण

तीयर। शैं भी भावपूर्ण है। भावावेश में मचे हृद्योद्गार इसी में प्रकट किये जाते है। इस प्रकार की शोली के जन्मदाता ठाकुर जगमोहनसिंह थे और भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र की रचनाओं में भी इस शेली के दर्शन होते हैं। यहाँ द्विवेदी जी की इस प्रकार की शेली के दो छोटे-छोटे उदाहरण दिये जाते हैं। एक 'पृथिवी-प्रदित्तणा'-नामक पुस्तक की आलोचना से और दूसरा पंडित वालकृष्ण भट्ट के देहांत पर दिये हुए नोट से। दोनों सचे हृदयोद्गार के उदाहरण हैं—

'क्या-मरहू ह भारत, तुम कब तक श्रम्थ हार में पड़े रहोगे ? प्रकाश में श्राते के निए तुम्ह रे हृदय में क्या कभी सिद्च्छा ही नहीं जायत होती ? पचहीन पत्ती की तरह क्यों तुम्हें अपने पींगड़े से बाहर निकन्तने का भाहन नहीं होता ? क्या तुम्हें श्रपने पुगने दिनां की कभी याद नहीं श्राती ?''

—सरस्वती (भ्रास्त्रु१६१४)

'भट्ट जी, तुम्हारे शरीर-स्थाग का समाचारे सुनका वद्ये फा० १२ "जी मनुष्य यपनी संतति के जोवन की ययाशक्ति सार्थक करने की योग्यता नहीं रखने अयदा जान बूम कर उम नरफ ध्यान नहीं देते, उनकी पिता बनने का अधिकार नहीं; उनकी पुत्रोत्पादन करने का अधिकार नहीं; उनकी दिवाह करने का अधिकार नहीं।"

— 'शिचा' भूमिका पृ० २

इन अयतरणों के। यदि उचित ढंग से पैदा जाय तो सुनने यालों पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। यही इस शैली की विशेषता है और यही इसका उद्देश्य।

(३) भावपूर्ण

तीयरा शैं नी भावपूर्ण है। भावावेश में मचे हृदयोद्गार इसी में प्रकट किये जाते हैं। इस प्रकार की शैं जो के जन्मदाता ठाकुर जगमोहनसिंह थे और भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र की रचनाओं में भी इस शें जी के दर्शन होते हैं। यहाँ द्विवेदी जी की इस प्रकार की शें जी के दो छोटे-छोटे उदाहरण दिये जाते हैं। एक 'पृथिवी-प्रदित्तणा'-नामक पुस्तक की आलोचना से और दूसरा पंडित वालकृष्ण भट्ट के देहांत पर दिये हुए नोट से। दोनों सचे हृदयोद्गार के उदाहरण हैं—

'कृर-मरहू ह भारत, तुम कब तक श्रन्थ हार में पड़े रहोगे ? प्रकाश में श्राने के निए तुम्ह रे हृदय में क्या कभी सिद्च्छा ही नहीं जाग्रत होती ? पचहीन पची की तरह क्यों तुम्हें श्रयने पींगड़े से बाहर निकचने का भाहन नहीं हाता ? क्या तुम्हें श्रयने प्रगने दिनां की कभी याद नहीं श्राची ?''

—सरस्वती (अगस्तु १६१४)

"भट जी, तुम्हारे शरीर-त्याग का समाचार सुनकर बढ़ी फा० १२ हरण देखिए। पहला उदाहरण 'मान्सापा के द्वारा शिक्ता'-शीर्षक नोट से हें। यह नोट बंगाल, मदरास श्रीर बंबई के विश्वविद्यालयों में इतिहास, भूगोल श्रीर गणित श्रादि की शिक्ता शिक्तार्थियों की मान्सापा में ही दिये जाने पर लिखा था—

''अच्छी बात है। ग्रुभ लच्च हैं। जागृति के चिद्ध हैं। श्रंध-विश्वाम का पटल हट रहा है। विवेक्स पूर्व की किरणें फैलने कगी हैं। पारचास्य सम्पता के श्रमिमानी श्रीर श्रेंगरेत्री-भाषा के ज्ञानी भी श्रम जागे हैं। श्रपनी भाषा के द्वारा शिद्या देने के लाभ उनकी समक में श्राने लगे हैं।''

-सरस्वती (नवस्वर १६१६)

दूसरा उदाहरण एक पत्र का कुछ घंश है, जो द्विवेदी जी ने वाबू कालिदास जी कपूर को लिखा था। कपूर साहव उनके दर्शनार्थ कानपुर जाना चाहते थे। पत्र लिखकर अनुमि माँगी। उसी के उत्तर में द्विवेदी जो ने २० मई सन् १६१६ को लिखा—

''ब्राइए । कृषा की जिए । ३१ मई तक में यहीं रहूँगा । शहर से ३ मीत दूर जंगल में, मीज़ा जुड़ी कताँ के सामने रहता हूँ।''

आलोचनात्मक शेली के जिन तीन प्रकारों को ऊपर नम-माने की चेष्टा की गई है उनमें तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति आदि का चित्र है। बात यह है कि शेली के उक्त तीनों प्रकारों की आवश्यकता निरोप अपसरों पर ही पड़नी है। लगभग २० वर्ष द्विवेदी जी 'सरस्त्रनी' के संपादक रहे और अंत तक परि-स्थिति में बहुत अविक परिपर्जन नहीं हुआ। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक मास को 'सरस्र तो' में उक्त तोनों शैजियां नू हे न ने हरण देखिए। पहला उदाहरण 'मातृभाषा के द्वारा शिला'-शीर्षक नोट से है। यह नोट बंगाल, मदरास और बंबई के विश्वविद्यालयों में इतिहास, भूगोल और गणित आदि की शिला शिलार्थियों की मातृभाषा में ही दिये जाने पर लिखा था—

''अच्छी यात है। ग्राम लग्नण हैं। जामृति के चिद्ध हैं। श्रंध-विश्वास का पटल हट रहा है। विवेक्ष्यूर्प की किरणें फैलने कगी हैं। पारचात्य सम्पता के अभिमानी और श्रेंगरेज़ो-भाषा के ज्ञानी भी अप जागे हैं। श्रापनी भाषा के द्वारा शिद्धा देने के लाभ उनकी समक में आने लगे हैं।''

-सरस्वती (नवस्वर १६१६)

दूसरा उदाहरण एक पत्र का कुछ खंश है, जो द्विवेदी जी ने वाबू कालिदास जी कपूर को लिखा था। कपूर साहब उनके दर्शनार्थ कानपुर जाना चाहते थे। पत्र लिखकर खनुमि नाँगी। उसी के उत्तर में द्विवेदी जो ने २० मई सन् १६१६ को लिखा—

''श्राइए । कृपा कीजिए । ३१ मई तक में यहीं रहूँगा । शहर से ३ मीश दूर जंगल में, मीज़ा जुड़ो कजाँ के सामने रहता हूँ ।''

आलोचनात्मक शैजी के जिन तीन प्रकारों को ऊपर सम-भाने की चेष्टा की गई है उनमें तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति आदि का चित्र है। बात यह है कि शैली के उक्त तीनों प्रकारों की आवश्यकता निरोन अमसरों पर ही पड़नी है। लगभग २० वर्ष द्विवेदी जी 'सरस्वनी' के संपादक रहे और अंत तक परि-स्थिति में बहुत अविक परिनर्जन नहीं हुआ। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक मात को 'सरस्व गे' में उक्त तोनों शैजियां नूके न ने यदि सूच्म दृष्टि से देखा जाय तो उनको व्यंग्यात्मक शैली आलोचनात्मक शैली से पृथक् नहीं की जा सकती। इसका कारण स्पष्ट है। जिस उद्देश्य और आदर्श को लेकर उन्होंने साहित्य में पदार्पण किया था और जिसके लिए उन्होंने आवः त्मक शैली की आवश्यकता पड़ी थी, उसी के लिए उन्होंने प्रायः व्यंग्य का भी प्रयोग किया है। इस शैली में ओज तो वर्तमान है ही; साथ ही व्यंग्य का जो पुट है वह भी वहुत ही चुटीला है। उदाहरण देखिए—

"िकतनी लजा, कितने दुख, कितने परिताप की वात है कि विदेशी लोग इतना कष्ट उठाकर धौर इतना धन खर्च करके संस्क्रत सीखें और संस्कृत-साहित्य के जन्मदाता भारतवासियों के वंशज फ़ारसी घोर अँगरेज़ी की शिखा के सद में मतवाले हे। कर यह भी न जानें कि संस्कृत नाम किस चिड़िया का है ? संस्कृत जानना ते। दूर की वात है, हम लीग अपनी मातृभाषा हिंदी भी ते। बहुधा नहीं जानते हैं, श्रीर जा लाग जानते भी हैं उन्हें हिंदी लिखते शरम श्राती है। इन मातृभाषा-द्रोहियों का ईश्वर कल्याण करे। सात समुद्र पार कर इँग्लेंडवाले यहाँ धाते हैं, धौर न जाने कितना परिश्रम श्रीर खर्च उठाकर यहाँ की भाषायें सीखते हैं। फिर अनेक उत्तमात्तम ग्रंथ लिख कर ज्ञान बृद्धि करते हैं। उन्हीं के ग्रंथ पढ कर हम लीग श्रानी भाषा श्रीर श्रपने साहित्य के तत्त्वज्ञानी बनते हैं। ख़ुद कुछ नहीं करते । सिर्फ व्यर्थ कालातिपात करते हैं । ग्राँगरेज़ी लिखने की योग्यता का प्रदर्शन करते हैं। घर में घेर श्रंधकार है, उसे तो दूर नहीं काते विदेश में जहाँ गैस स्रौर विजली की रोशनी है। रही है, चिराग जलाने दौदते हैं।"

उक्त अवतरण में हमें उनकी चुटीली श्रोज-पूर्ण श्रालोचना के साथ मार्मिक व्यंग्य भी मिलता है। इस मार्मिकता श्रौर यदि सूस्म दृष्टि से देखा जाय तो उनकी व्यंग्यात्मक शैली आलोचनात्मक शैली से पृथक् नहीं की जा सकती। इसका कारण स्पष्ट है। जिस उद्देश्य और आदर्श को लेकर उन्होंने साहित्य में पदार्पण किया था और जिसके लिए उन्होंने प्राव्य सकती की आवश्यकता पड़ी थी, उसी के लिए उन्होंने प्रायः व्यंग्य का भी प्रयोग किया है। इस शैली में ओज तो वर्तमान है ही; साथ ही व्यंग्य का जो पुट है वह भी वहुत ही चुटीला है। उदाहरण देखिए—

''कितनी लज्जा, कितने दुख, कितने परिताप की वात है कि विदेशी लोग इतना कष्ट उठाकर धीर इतना धन खर्च करके संस्कृत सीखें और संस्कृत साहित्य के जन्मदाता भारतवासियों के वंशज फ़ारसी और अँगरेज़ी की शिचा के सद में मतवाले हे।कर यह भी न जाने कि संस्कृत नाम किस चिदिया का है ? संस्कृत जानना ता दूर की वात है, हम लीग अपनी मातृभाषा हिंदी भी ते। बहुधा नहीं जानते हैं, श्रीर जा जाग जानते भी हैं उन्हें हिंदी जिलते शरम श्राती है। इन मातृभाषा-द्रोहियों का ईश्वर कल्याण करे। सात समुद्र पार कर हॅंग्लेंडवाले यहाँ श्राते हें, ग्रौर न जाने कितना परिश्रम श्रौर -ख़र्च उठाकर यहाँ की भाषायें सीखते हैं। फिर अनेक उत्तमीत्तम यंथ तिखकर ज्ञान वृद्धि करते हैं। उन्हीं के यंथ पढ़कर हम लोग **ग्र**यनी भाषा ग्रौर श्रपने साहित्य के तत्त्वज्ञानी वनते हैं। ख़ुद कुछ नहीं करते। सिर्फ़ व्यर्थ कालातिपात करते हैं। ग्राँगरेज़ी लिखने की चाज्यता का प्रदर्शन करते हैं। घर में घार ग्रंधकार है, उसे ता दूर नहीं करते. विदेश में, जहाँ गैस श्रौर विजली की रोशनी है। रही है, चिराग जलाने दौदते हैं।"

उक्त अवतरण में हमें उनकी चुटीली खोज-पूर्ण आलोचना के साथ मार्मिक व्यंग्य भी मिलता है। इस मार्मिकता और my criticisms are "Vague, worthless and nonsense" (nonsensical?). And, pray, what do you think of Lala Sita Ram's Version of Kali Dasa? Perhaps, most faithful, most worthy and most sensible? Is it not?

इस कथन में पहले दो वाक्यों में ऋधिक गहराई तो अवश्य है, पर चुटीलापन और मार्मिकता विशेष मात्रा में नहीं। लेकिन इसके बाद ही वे लिखते हैं—

Well, you are welcome to entertain that. (कटा है) but this you should bear in mind, that the opinion of a person who does not even give his full name in his communication, who has never appeared in public print and whose career, as a literary man in Hindi has hither-to been unknown, can only be taken for it is worth, and no more.

चुटीले व्यंग्य का एक और नमूना देखिए। पंडित प्रभुदयाल मिश्र ने कालिदास के 'मेयदूत' का उर्दू में अनुवाद किया। उसमें वहुत से दोष थे। उन दोपों को दिखाने के बाद द्विवेदी जी ने लिखा—

'जा लेखक छः मात्राश्रोंवाले चित्रकूट श्रोर पाँच मात्राश्रोंवाले दामागीरी को 'संस्कृत ज्ञवान में व्यव्जन समकता है वह यदि व्यास, वाल्मीकि श्रोर कालिदास की कविता का मर्म समकते वैठे तो उसके साहस की प्रशंसा श्रवश्य की जा सकती है, उसकी योग्यता की नहीं।'

—सरस्वती १७-६ पु० ४१६

my criticisms are "Vague, worthless and nonsense" (nonsensical?). And, pray, what do you think of Lala Sita Ram's Version of Kali Dasa? Perhaps, most faithful, most worthy and most sensible? Is it not?

इस कथन में पहले दो वाक्यों में ऋधिक गहराई तो ऋवश्य है, पर चुटीलापन और मार्मिकता विशेष मात्रा में नहीं। लेकिन इसके वाद ही वे लिखते हैं—

Well, you are welcome to entertain that. (कटा है) but this you should bear in mind, that the opinion of a person who does not even give his full name in his communication, who has never appeared in public print and whose career, as a literary man in Hindi has hither to been unknown, can only be taken for it is worth, and no more.

चुटीले व्यंग्य का एक और नमूना देखिए। पंडित प्रभुदयाल मिश्र ने कालिदास के 'मेयदूत' का उर्दू में अनुवाद किया। उसमें बहुत से दोब थे। उन दोपों को दिखाने के बाद द्विवेदी जी ने लिखा—

'जा लेखक छः मात्राश्रोंवाले चित्रकृट श्रोर पाँच मात्राश्रोंवाले दामागीरी को 'संस्कृत ज्ञवान में व्यव्जन समक्षना है वह यदि व्यास, वाल्मीिक श्रोर कालिदास की कविता का मर्म समक्षने बैठे तो उसके साहस की प्रशंसा श्रवश्य की जा सकती है, उसकी योग्यता की नहीं।'

---सरस्वती १७-६ पु० ४१६

इड्डी के मांस नज़र नहीं आता । सफ़ाई के इन्स्पेक्टर हैं लाला रूतगुर-दास । आपकी इन्स्पेक्टरी के ज़माने में, हिसाय से कम तनखवाह पाने के कारण, मेहतर लोग तीन दफ़े हड़ताल कर चुके हैं। फ़ज़ूल ज़मीन के पक इकड़े का नीलाम था। सेठ सर्वमुख उसके तीन हज़ार देते थे। पर उन्हें वह इकड़ा न मिला। उसके ६ महीने वाद म्यूनि-सिपेलिटी के मेंवर पंडित सत्यसर्वस्व के ससुर के साले के हाथ वही ज़मीन हज़ार पर वंच दी गई।"

उन्होंने एक बार लिखा था—''महसनों श्रीर हँसी-मज़ाक़ के लेखों से मनोरं जन ही नहीं होता; लेखक यदि विज्ञ श्रीर योग्य है तो वह ऐसे लेखों से समाज श्रीर साहित्य के दोषों को दूर करने की चेष्टा करता श्रीर इनके द्वारा उन्हें लाभ पहुँचा सकता है श्रीर दंडनीय व्यक्तियों का शासन भी कर सकता है। हिंदी में साहित्य के इस श्रीर की बहुत कमी है।

- सरस्वती १६-१ पृ० ६१

हिवेदी जी के इस आदर्श को ध्यान में रखते हुए यदि हम ऊपर दिया हुआ अवनरण पढ़ें नो हमारा विशेष मनोरंजन होगा और हम यह समक सकेंगे कि किस अवसर पर वे इस प्रकार की शैली का प्रयोग करते थे।

एक बार शिवचरणदास नाम के किसी सज्जन ने १४ जान स्ट्रीट, श्रक्सकर्ड से १४ जनवरी १६०६ को 'सरस्वती' लौटाते हुए लिखा—

"वारह सयत्य' के भेजे हुए Article में जो छंत में 8 वा ४ शब्द हें उनकी न तो वहाँ पर ज़रूरत है और न वह शोभा देते हैं, पर यह साफ़ दिखाते हैं कि दास्यभाव अभी हम भारतवर्षीयों के मनों के भीतर पूरी तरह से वस रहा है।" हड्डी के मांस नज़र नहीं थाता । सफ़ाई के इन्स्पेक्टर हैं लाला सतगुर-दास । श्रापकी इन्स्पेक्टरी के ज़माने में, हिसाय से कम तनख़वाह पाने के कारण, मेहतर लोग तीन दफ़ें हड़ताल कर चुके हैं । फ़ज़ूल ज़मीन के एक इकड़े का नीलाम था । सेठ सर्वमुख उसके तीन हज़ार देते थे । पर उन्हें वह इकड़ा न मिला । उसके ६ महीने वाद म्यूनि-सिपेलिशी के मेंवर पंडित सत्यसर्वस्व के ससुर के साले के हाथ वही ज़मीन हज़ार पर वच्च दी गई।"

उन्होंने एक वार लिखा था—''महसनों श्रीर हँसी-मज़ाक़ के लेखों से मनोरं जन ही नहीं होता; लेखक यदि विज्ञ श्रीर योग्य है तो वह ऐसे लेखों से समाज श्रीर साहित्य के दोगों की दूर करने की चेटा करता श्रीर इनके द्वारा उन्हें लाभ पहुँचा सकता है श्रीर दंडनीय व्यक्तियों का शामन भी कर सकता है। हिंदी में साहित्य के इस श्रंश की बहुत कमी है।

- सरस्वती १६-१-५० ६१

द्विवेदी जी के इस आदर्श को ध्यान में रखते हुए यदि हम उत्पर दिया हुआ अवनरण पढ़ें नो हमारा विशेष मनोरंजन होगा और हम यह समभ सकेंगे कि किस अवसर पर वे इस प्रकार की शैली का प्रयोग करते थे।

एक वार शिवचरणदास नाम के किसी सज्जन ने १४ जान स्ट्रीट, श्रक्सफ़र्ड से १४ जनवरी १६०६ को 'सरस्वती' लौटाते हुए लिखा—

"वारह सयत्य' के भेजे हुए Article में जा श्रंत में १ वा ४ शब्द हैं उनकी न तो वहाँ पर ज़रूरत है श्रीर न वह शोभा देते हैं, पर यह साफ़ दिखाते हैं कि दास्यभाव श्रभी हम भारतवर्षीयों के मनों के भीतर पूरी तरह से वस रहा है।" भापा तथा साहित्य की तत्कालीन परिस्थित से ही रहा है। साहित्य, भाषा और आलोचनादर्श-संबंधी जो बाद-विवाद हिंदी-साहित्य-क्तेत्र में छिड़ा हुआ था श्रीर एक-दूसरे पर जो आक्तेप किये जा रहे थे उनमें भाग लेकर आक्तेपों का उत्तर देते हुए-यह ठीक है कि वे प्रायः वाद-विवाद से दूर रहना चाहते थे—उन्होंने जिस शैली को अपनाया, 'सरस्वती' और उससे संबंधित व्यक्तियों पर लांछन लगाने-वाले व्यक्तियों का मुँह तोड़ जवाब देने के लिए और अयोग्य तथा अनिधकारी व्यक्तियों की साहित्यसंसार में पदार्पण करने और धाँधली मचाने से रोकने के लिए-तत्परता के साथ उनका मुँह वंद करने के लिए उन्होंने जिस शैली का अवलंब प्रहरण किया, उसमें हास्य और व्यंग्य की चुलवुलाहट में मिलकर मार्मिकता, कटाच श्रौर चुटीलापन ही दिखाई देता है; जिसका कारण उनकी साहित्य-विषयक सद्भावना थी; जो उत्तरदायित्य के विचार से उत्तेजित होकर उनके उप स्वभाव के कारण स्वयं उत्र-रूप में दिखाई देती है । इस शैली का आरंभ प्रायः तर्क-वितर्क से होता है। पहले वे विवादमस्त विषयों की गुत्थियों की सुलकाकर सामने रखने की चेष्टा करते थे। इसका उदाहरण हमें 'श्रीहर्ष का समय', 'वेद' इत्यादि शीर्षक निवंधों में मिलता है। द्विवेदी जी की यह तर्कशैली वड़ी प्रौढ़ है। इसमें स्वाभाविक स्त्रोज है, हास्य है स्त्रोर गंभीरता है। श्रोज के दो कारण हैं। पहला, विशेष अध्ययन श्रीर दूसरा, उनका स्वभाव। व्यंग्य का प्रयोग वे तभी करते थे जब उन्हें ज्ञात हो जाता था कि कोई छोटे मुँह वड़ी वात कह रहा है या ऋपनी योग्यता का ऋनुचित प्रयोग कर रहा है। ऋपना कथन प्रमाणित करने के लिए वे अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ तथा उनकी पुस्तकों से टिप्पिंगियाँ उद्भृत करते थे। इससे उनके

भापा तथा साहित्य की तत्कालीन परिस्थित से ही रहा है। साहित्य, भाषा त्र्योर त्र्यालोचनादर्श-संबंधी जो वाद-विवाद हिंदी-साहित्य-त्तेत्र में छिड़ा हुआ था और एक-दूसरे पर जो आत्तेप किये जा रहे थे उनमें भाग लेकर आत्तेपों का उत्तर देते हुए—यह ठीक है कि वे प्रायः वाद-विवाद से दूर रहना चाहते थे-उन्होंने जिस शैली को अपनाया, 'सरस्वती' श्रौर उससे संबंधित व्यक्तियों पर लांछन लगाने-वाले व्यक्तियों के। मुँह तोड़ जवाब देने के लिए श्रीर श्रयोग्य तथा त्र्यनिकारी व्यक्तियों को साहित्यसंसार में पदार्पण करने श्रीर धाँधली मचाने से रोकने के लिए--तत्परता के साथ उनका मुँह वंद करने के लिए उन्होंने जिस शैली का श्रवलंव प्रहर्ण किया, उसमें हास्य और व्यंग्य की चुलवुलाहट में मिलकर मार्मिकता, कटाच छोर चुटीलापन ही दिखाई देता है; जिसका कारण उनकी साहित्य-विषयक सद्भावना थी; जो उत्तरदायित्व के विचार से उत्तेजित होकर उनके उप स्वभाव के कारण स्वयं उय-रूप में दिखाई देती है । इस शैली का आरंभ प्रायः तर्क-वितर्क से होता है। पहले वे विवादयस्त विषयों की गुत्थियों के। सुलक्षाकर सामने रखने की चेष्टा करते थे। इसका उदाहरण हमें 'श्रीहर्प का समय', 'वेद' इत्यादि शीर्पक निवंधों में मिलता है। द्विवेदी जी की यह तर्कशैली वड़ी प्रौढ़ है। इसमें स्वामाविक स्रोज है, हास्य है स्रौर गंभीरता है। स्रोज के दो कारण हैं। पहला, विशेष ऋध्ययन और दूसरा, उनका स्वभाव । व्यंग्य का प्रयोग वे तभी करते थे जब जुन्हें ज्ञात हो जाता था कि कोई छोटे मुँह वड़ी वात् कह रहा है या ऋपनी योग्यता का ऋनुचित प्रयोग कर रहा है। ऋपना कथन प्रमाणित करने के लिए वे अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ तथा उनकी पुस्तकों से टिप्पिएायाँ उद्धृत करते थे । इससे उनके नाधारण के सामने इस ढंग से रत्यने के लिए किया है कि वे उमकी समभ में आ जायें। देखिए—

'संसार में जो यात जैसी देख पड़े पयि थे। डसे वैसा है। वर्णन फरना चाहिए। उसके लिए किसी तरह की रोक या पायंदी का होना सब्दा नहीं। इसके मन में साव धाप ही। इसके मन में साव धाप ही धाप पेदा होने हैं। जब यह किसर होकर उन्हें धपनी किया। में प्रस्ट परता है तभी उसका प्रश-प्रा ध्यसर लोगों पर परता है। चनावट से कियता विगद जाती है। किसी राजा वा किसी स्पत्ति चिरोप के गुण दीयों को देगकर किय के मन में जो भाव उद्मृत हों उन्हें यदि वेशक दोक अकट कर दे तो उसकी पविता हुद्य-मापक हुए यिना न रहे। परंतु परतंत्रता या सुरस्कार-मासि या धीर किसी तरह की मुकाबट के पैदा हो जाने से बीद उसे धपने मन भी धान पहने का साहस नहीं होता तो कियता का रस ज़रूर कम हो जाता है। इस दशा में धर्चे कियों की भी पिता नीरस धतप्त प्रभावहीन हो जाती है।"

साधारण जनना के किल इम मरल शेली के हिचेदी जी ने अपनाया है। भाषा सरल हैं, वाक्य छोटे हैं और प्रतिपादन-प्रणाली अत्यन्त सुलकी हुई है। उनकी भाषा कभी-कभी कुछ और शुद्ध हो जाती है। उसमें उर्दू के तत्सम तो क्या तद्भव शब्द भी एक ही आध मिलते हैं। यह उनकी इम गवेपणात्मक शेली का दूमरा क्य है। इसका एक उदाहरण साहित्य-प्रियक हिवेदी जो के त्रिचार समकाने के लिए अपर दिया हुआ अवतरण हो सकता है। उसमें भाषा विशेष सरल नहीं है और गंभीर भागन्यंजन में कुछ दुरूहना भी है, जिसे दिवेदी जी ने कुशलता से स्पष्ट करने की सफल चेष्टा की है।

नाथारण के सामने इस ढंग से रत्यने के लिए किया है कि वे उनकी नमभ में आ जावाँ। देखिए—

'संसार में जो यान जैसी देख पड़े पिय के उसे वैसा ही वर्णन फरना चाहिए। उसके किए किसी तरह की रीक या पायंदी का होना एडका नहीं। इपाय में किन पा जोश दय जाना है। उसके मन में भाय धाप ही धाप पैदा होने हैं। जय यह निवर होकर उन्हें धपनी किया। में प्रस्ट परता है तभी उसका प्रा-प्रा धसर लोगों पर परता है। पनायट से कियता विगद जाती है। किसी राजा वा किसी व्यक्ति-चिरोप के गुण दोषों को देखकर किय के मन में जो भाय उद्भृत हों उन्हें यदि येशक दोक प्रकट कर दे तो उसकी बिवता हृद्य-द्रावक हुए बिना न रहे। परंतु परनंत्रता या प्रस्कार-प्राप्त या धीर किसी तरह की एकावट के पैदा हो जाने से बाद उसे धपने मन की धान पहने का साहस नहीं होता तो कियता का रम ज़रूर कम हो जाता है। इस द्र्या में श्रुच्छे कियों की भी पितता नीरस धतप्य प्रभावहीन हो जाती है।"

साथारण जनना की कविता की परिभापा—किविता क्या —सममाने के लिए इम गरल शेली की द्विवेदी जी ने अपनाया है। भाषा सरल हैं, वाक्य छोटे हैं और प्रतिपादन-प्रणाली अत्यन्त मुलकी हुई है। उनकी भाषा कभी-कभी कुछ और शुद्ध हो जाती है। उसमें उर्दू के तत्सम तो क्या तद्भव शब्द भी एक ही आध मिलते हैं। यह उनकी इम गवेपणात्मक शेली का दूमरा रूप है। इसका एक उदाहरण साहित्य-पियक द्विवेदी जो के विचार समकाने के लिए अपर दिया हुआ अवतरण हो सकता है। उसमें भाषा विशेष सरल नहीं है और गंभीर भागवयंजन में छुछ दुरूहना भी है, जिसे दिवेदी जी ने छशलता से स्पष्ट करने की सफल चेष्टा की है। विशेष रोचकता आ जाती है और भाव सफ्टतया बोधगम्य जाता है। दूसरे शब्दों में---

'श्रिधिक से श्रीधक ईप्सित प्रभाव उत्पन्नकरना ही यदि भाषाः शैली की मुख्य सफलता मान ली जाय तो शब्दों का शुद्ध, सामयिक, सार्थक और सुंदर प्रयोग विशेष महत्त्व रखने लगे। शब्दों की शुद्धि स्थावरण का विषय है; ज्याकरण की ज्यवस्था साहित्य की पहली सीढ़ी है। सामयिक प्रयोग से हमारा श्राशय प्रसंगानुसार उस शब्द-चयन-चातुरी से है जो काव्य के उद्यान को प्रकृति की सुपमा प्रदान करती है। उसमें कहीं श्रस्वाभाविकता वोध नहीं होती। सार्थक पद्विन्यास केवल निषंदु का विषय नहीं है; उसमें हमारी वह कल्पना-शक्ति भी काम करती है जो शब्दों की प्रतिमा चनाकर हमारे सामने उपस्थित कर देती है। पदों का संदर प्रयोग वह है जो संगीत (टक्चारण्), ज्याकरण्, कोप श्रादि सबसे श्रनुमोदित हो श्रीर सबकी सहायता सं संघटित हो; जिसके ध्वनिमात्र से श्रनुरूप चित्रात्मकता प्रस्ट है। शौर जो वाक्यविन्यास का प्रकृतिवत् श्रभिन्न श्रंग वन कर वहाँ निवास करने लगे। श्रभी तो हिंदी के समीचा-चेत्र में वदू-मिश्रित श्रथवा संस्कृत-मिश्रित भाषा-भेद का ही शैली समक लेने को आंत धारणा फैली हुई है; परंतु यदि साहिस्यिक शैलियों का कुछ रंभीर यध्ययन धारंभ होता ते। द्विवेदी जी की शैलो के व्यक्तित श्रीर उसके स्थापित्व के प्रमाण मिलेंगे। द्विवेदी जी की शैली का व्यक्तिस्व यही है कि वह हस्व, धनलंकृत धीर रूत्त है। उनकी भाषा में कोई संगान नहीं, वेवल उचारण का श्रोत है जो भाषण-कला से उध र लिया है। विषय का स्पष्टी करण करने के आशय से दिवेदी जा को पुनक्कियाँ करते हैं, वे नभी कभी ख़ाली चली जाती हैं — असर नहीं करनीं; परंत वे फिर प्रांती हैं प्रौर प्रसर करती हैं। लघुता टनकी विभूत है। वानप पर वानप आते और विचारों की पुष्टि

विशेष रोचकता त्रा जाती है त्रौर भाव सफ्टतया वोधगम्य जाता है। दूसरे शब्दों में---

'ग्रधिक से श्रधिक ईप्सित प्रभाव उत्पन्न करना ही यदि भाषा-शैली की मुख्य सफलता मान ली जाय तो शब्दों का शुद्ध, सामयिक, सार्थक श्रोर सुंदर प्रयोग विशेष महत्त्व रखने लगे। शब्दों की शुद्धि स्थावरण का विषय है; ज्याकरण की व्यवस्था साहित्य की पहली सीदी है। सामयिक प्रयोग से हमारा याशय प्रसंगानुसार उस शब्द-चयन चातुरी से है जो काब्य के उद्यान को प्रकृति की सुपमा प्रदान करती है। उसमें कहीं घरवाभाविकता वोध नहीं होती। सार्थक पद्विन्यास केवल निघंटु का विषय नहीं है; उसमें हमारी वह कल्पना-शक्ति भी काम करती है जो शब्दों की प्रतिमा बनाकर हमारे सामने उपस्थित कर देती है। पदों का संदर प्रयोग वह है जो संगीत (टक्चारण), व्याकरण, कोप श्रादि सबसे श्रनुमोदित हो श्रीर सबकी सहायता सं संघटित हो; जिसके ध्वनिमात्र से श्रनुरूप चित्रात्मकता प्रस्ट है। शौर जो वाक्यविन्यास का प्रकृतिवत् श्रभिन्न श्रंग वन कर वहाँ निवास करने लगे। श्रभी तो हिंदी के समीचा-चेत्र में उद्-मिश्रित श्रथवा संस्कृत-मिश्रित भाषा-भेद की ही शैली समक लेने को भ्रांत धारणा फेली हुई है; परंतु यदि साहित्यिक शैलियों का कुछ रंभीर ध्रध्ययन धारंभ हाता ते। द्विवेदी जी की शैलो के व्यक्तित्व न्त्रीर उसके स्थापित्व के प्रमाण मिलेंगे। द्विवेदी जी की शैली का व्यक्तिस्व यही है कि वह हस्व, धनलंकृत धीर रूच है। उनकी भापा में कोई संगान नहीं, जैवल उचारण का स्रोत है जो भाषण-कला से उध'र लिया है। विषय का स्पष्टीकरण करने के घाशय से द्विवेदी जां जो पुनरुक्तियाँ करते हैं, वे नभी कभी ख़ाली चली जाती हैं — असर नहीं करनीं; परं1 वे फिर छांनी हैं छौर छसर करती हैं। लघुता टनकी विभूत है। वाक्य पर वाक्य श्राते श्रीर विचारों की पुष्टि

हिंदो की हिमायत

''खपनो मा की निःसहाय, निरुपाय और निर्धन दशा में छोड़कर जो मनुष्य दूसरे की मा की सेवा-छश्रूपा में रत होता है उन सधम की कृतमता का यथा प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवहरय या धापस्तंव ही कर सकते हैं।''

—''साहित्य, की महत्ता''

वंकिम वायू ने एक बार श्रीयुत रमेराचंद्र दत्त से कहा था— आप अँगरेजी में लिखते हैं, यह ख़ुशीकी बात है; लेकिन साथ ही इसका दुःख भी है कि वंगाली होते हुर आप वँगला-साहित्य के प्रति विलक्षल उदासीन हैं। वँगला में पुस्तकें आप क्यों नहीं लिखते ?

दत्त ने उत्तर दिया—क्या कहूँ ? वँगला मैं लिख नहीं सकता।

वंकिम वाबू इतना सुनते ही विगड़ उठे, वोले—आप वँगला में लिख नहीं सकते ? वंगाली होकर वँगला में नहीं लिख सकते, कितने अचरज की वात है !

दत्त ने पूछा-कैसे लिखूँ ? किस भाषा में लिखूँ ?

उसी भाषा में लिखिए जिसमें आप घर में वातचीत करते हैं।—बंकिम बाबू ने शीवता से कहा।

दत्त हँस पड़े। कड़ने लगे—ज़ेकिन वह भाषा तो साहित्यिक भाषा न होगी।

हिंदो की हिमायत

"श्रपनो मा के। निःसहाय, निरुपाय श्रीर निर्धन दशा में छोइकर जो मनुष्य दूसरे की मा की सेवा-छश्रूषा में रत होता है उप सधम की कृतप्तता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवरूष या श्रापस्तंय ही कर सकते हैं।"

—"साहित्य की महत्ता"

वंकिम वायू ने एक वार श्रीयुत रमेराचंद्र दत्त से कहा था— श्रीय ऋँगरेजी में लिखते हैं, यह ख़ुशी की वात है; लेकिन साथ ही इसका दुःख भी है कि वंगाजी होते हुर ऋाप वँगला-साहित्य के प्रति विलकुल उदासीन हैं। वँगला में पुस्तकें ऋाप क्यों नहीं लिखते ?

दत्त ने उत्तर दिया—क्या कहूँ ? वँगता मैं लिख नहीं सकता।

वंकिम वावू इतना सुनते ही विगड़ उठे, वोले—आप वँगला में लिख नहीं सकते ? वंगाली होकर वँगला में नहीं लिख सकते, कितने अचरज की वात् है !

दत्त ने पूछा-कैसे लिलूँ ? किस भाषा में लिलूँ ?

उसी भाषा में लिखिए जिसमें आप घर में वातचीत करते हैं।—बंकिम वावू ने शीव्रता से कहा।

दत्त हँस पड़े। कड़ने लगे—ज़ेकिन वह भाषा तो साहित्यिक भाषा न होगी। कराया गया था। तब से घव तक उसी लिपि में हिंदी लिखने में मेरा अधिकांश समय व्यतीत हुआ। यह इस वात का प्रमाण है कि इस लिपि और इस भाषा से मेरा प्रम ही नहीं, इन दोनों पर मेरी परम श्रद्धा है। मेरी संमति तो यह है कि भागत की प्राचीन सभ्यता का जिन्हें स्वन्पांश में भी गर्व है उन सभी की इस लिपि और इस भाषा से श्रद्धा करनी चाहिए।"

द्विवेदी जी चाहते थे कि समस्त भारतवर्ष में हिंदी-भाषा का प्रचार हो, क्योंकि सभी प्रान्तों में उसके समम्भतेवाले मौजूद हैं। पर जनता में उस समय उसका मान नहीं था। विद्वानों की विद्वत्ता का अनुमान ऋँगरेजीदानी, फारसीदानी और कभी-कभी संस्कृतदानी देखकर कर लिया जाता था। वे हिंदी कितनी जानते हैं, जानते भी हैं या नहीं, इसके पूछने की आवश्यकता ही नहीं समभी जाती थी। कचहरियों में उसका यहिष्कार कर दिया था। यहाँ तक कि जो लीग शुद्ध ऋँगरेजी या उर्दू नहीं वेशल सकते थे वे भी उसे नहीं अपनाते थे—घर के काम-काज और चिट्टी-पत्री तक में उसे ज्यवहार में लाते शर्माते थे। पढ़े-लिखे लोग तो हिंदी के शत्रु थे। उनके खान-पान, उनके रहन-सहन, वेप-भूपा सवमें ऋँगरेजी का समावेश हो गया था। वातचीत और पत्र-ज्यवहार तो क्या, ग्रंथ-एचना भी वे ऋँगरेजी में ही किया करते थे।

द्विवेदी जी इसकी भारतवासियों के—कम से कम हिंदी-भाषियों के—पतन की चरम सीमा समफते थे। एक स्थान पर उन्होंने आलोचनात्मक शैली में एक व्यंग्यपूर्ण नोट लिखा है। इसमें हिंदी की तत्कालीन दशा का चित्र खींचते हुए वे लिखते हैं—

"जून सन् १६०७ के 'हिंदुस्तान रिन्यू' में छोटा-सा लेख,

कराया गया था। तब से घव तक उसी लिपि में हिंदी लिखने में मेरा श्रिषकांश समय व्यतीत हुआ। यह इस वात का प्रमाण है कि इस लिपि श्रीर इस भाषा से मेरा प्रम ही नहीं, इन दोनों पर मेरी परम श्रद्धा है। मेरी संमति तो यह है कि भारत की प्राचीन सभ्यता का जिन्हें स्वन्पांश में भी गर्व है उन सभी के इस लिपि श्रीर इस भाषा से श्रद्धा करनी चाहिए।"

द्विवेदी जी चाहते थे कि समस्त भारतवर्प में हिंदी-भाषा का प्रचार हो, क्योंकि सभी प्रान्तों में उसके सममनेवाले मौजूद हैं।पर जनता में उस समय उसका मान नहीं था। विद्वानों की विद्वत्ता का अनुमान अँगरेजीदानी, कारसीदानी श्रीर कभी-कभी संस्कृतदानी देखकर कर लिया जाता था। वे हिंदी कितनी जानते हैं, जानते भी हैं या नहीं, इसके पूछने की आवश्यकता ही नहीं समकी जाती थी। कचहरियों में उसका घुसने की खाज़ा न थी, विश्वविद्यात्तयों खीर कालेजों ने उसका वहिष्कार कर दिया था। यहाँ तक कि जो लोग शुद्ध ऋँगरेजी या उर्दू नहीं वाल सकते थे वे भी उसे नहीं अपनाते थे—घर के काम-काज श्रीर चिही-पत्री तक में उसे व्यवहार में लाते शर्माते थे। पढ़े-लिखे लोग तो हिंदी के शत्रु थे। उनके खान-पान, उनके रहन-सहन, वेप-भूपा सवमें ऋँगरेजी का समावेश हो गया था। वातचीत और पत्र-व्यवहार तो क्या, ग्रंथ-रचना भी वे ऋँगरेजी में ही किया करते थे।

द्विचेदी जी इसकी भारतवासियों के—कम से कम हिंदी-भाषियों के—पतन की चरम सीमा समभते थे। एक स्थान पर उन्होंने आलोचनात्मक शैली में एक व्यंग्यपूर्ण नोट लिखा है। इसमें हिंदी की तत्कालीन दशा का चित्र खींचते हुए वे लिखते हैं—

^{&#}x27;'जून सन् १६०७ के 'हिंदुस्तान रिन्यू' में छोटा-सा लेख,

साहित्य के। पर इससे क्या ? हिंदी हमारी मातृभाषा है, अतः हमें उस पर गर्व करना चाहिए और फिर जब विदेशी हमारे साहित्य का मंथन कर लाभ उठा रहे हैं तब भी हम वेसुध पड़े रहें तो हमसे वढ़कर मूढ़ कौन होगा। 'माधुरी' के एक विशेषांक (वर्ष ७, खंड १, संख्या १) में द्विवेदी जी ने लिखा है—

"वियर्सन साहय के मानुभाषा-प्रेम से हमारे भारतीय भाई नवक सीखने की ज़रूरत कम समफते हैं यह अक्षसेश्व की बात है। मुक्त छद हिंदी-खेखक को भी मेरे ही देश—नहीं, प्रांत के भी के हिं निवासी अपनी अँगरेज़ीदानी की धाक मुक्त पर जमाने के लिए अँगरेज़ी ही में चिट्टियाँ लिखने की छूपा कर डालते हैं। जैसे उन्हें अपनी भाषा लिखते लजा आती हो। जे। लेग हिंदी ही में लेख लिख-खिखकर अपनी कीर्ति-लता को चारे। श्रोर फैज़ाते हैं वे भी, कभी-कभी, किसी अज्ञात भावना से आविष्ट-से होकर ख़ानगी पत्रों में भी आँगरेज़ी छाँटने लगते हैं।"

इन शवदों में द्विवेदी जी की आतमा वोल रही है। उनके हदय में मातृभाषा के प्रति वड़ा प्रेम था। यह ठीक है कि उन्होंने समय-समय पर स्त्रयं ऋँगरेजी में पत्र लिखे हैं। पर यह वात वहुत पहले की है। सन् १६०३ में जब उन्होंने संपादन-कार्य ग्रहण किया ही था तब एक चिट्ठी स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण कविरत्न की लिखी थी। वह इस प्रकार है—

JHANSI,

30th October, 1903.

DEAR Pt. SATYA NARAYAN,

The frankness with which you have written your letter has immensely pleased me. If I have an occasion to come to Agra I shall ask you

साहित्य के। पर इससे क्या ? हिंदी हमारी मातृभाषा है, अतः हमें उस पर गर्व करना चाहिए और फिर जब विदेशी हमारे साहित्य का मंथन कर लाभ उठा रहे हैं तब भी हम वेसुध पड़े रहें तो हमसे बढ़कर मूढ़ कौन होगा। 'माधुरी' के एक विशेषांक (वर्ष ७, खंड १, संख्या १) में द्विवेदी जी ने लिखा है—

"श्रियर्सन साहव के मातृभाषा-प्रेम से हमारे भारतीय भाई गवक सीखने की ज़रूरत कम समफते हैं यह ग्रक्तसेस की बात है। मुफ खुद हिंदी-लेखक को भी मेरे ही देश—नहीं, प्रांत के भी ने हैं निवासी ग्रपनी ग्रॅंगरेज़ीदानी की धाक मुफ पर जमाने के लिए ग्रॅंगरेज़ी ही में चिट्टियाँ लिखने की कृषा कर डालते हैं। जैसे उन्हें ग्रपनी भाषा लिखते लजा ग्राती हो। जे। लोग हिंदी ही में देख लिख-लिखकर ग्रपनी कीर्ति-लता को चारों श्रोर फेजाते हैं वे भी, कभी-कभी, किसी ग्रज्ञात भावना से ग्राविष्ट-से होकर ख़ानगी पत्रों में भी ग्रॅंगरेज़ी छाँटने लगते हैं।"

इन शब्दों में द्विवेदी जी की आत्मा बोल रही है। उनके हृदय में मातृमापा के प्रति वड़ा प्रेम था। यह ठीक है कि उन्होंने समय-समय पर स्त्रयं ऋँगरेज़ी में पत्र लिखे हैं। पर यह वात बहुत पहले की है। सन् १६०३ में जब उन्होंने संपादनकार्य प्रहण किया ही था तब एक चिट्ठी स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण कविरत्न का लिखी थी। वह इस प्रकार है—

JHANSI,

30th October, 1903.

DEAR Pt. SATYA NARAYAN,

The frankness with which you have written your letter has immensely pleased me. If I have an occasion to come to Agra I shall ask you

उदाहरण के लिए यहाँ एक सिकारिशी चिट्ठी उद्घृत की जाती है। एक महाशय 'सरश्वती' के अच्छे लेखकों में से थे—प्रायः उसमें लिखा करते थे। द्विवेदी जी उनको मानते थे। एक बार एक विश्वविद्यालय में हिंदी-अध्यापक की जगह खाली हुई। लेखक महोदय एक स्कूल के हेडमास्टर थे। उन्होंने द्विवेदी जी से एक सिकारिशी चिट्ठी लिखने की कहा। द्विवेदी जी इस समय संपादन-कार्य से अलग हो चुके थे। उन्होंने यह पत्र लिखा—

This is to cerufy that Babu
headmaster
has a very good knowledge of Hiudi language
and literature, and has contributed to the "Sara-
swati", the leading Hindi Magazine, published
by the Indian Press, Allahabad, some very ins-
tructive and interesting articles containing criti-
cal observations, especially those on the work of
Tulsi Dasa. I admire his acumen. I am told
he is desirous of making the Hindi language and
Hindi literature his lifelong study. He appears
to me eminently fitted for the post of the lecturer
in the
University. Given opportunity Babu
is sare to do
useful research work.

Juhi-Kalan CAWNPORE: £4th April, 1922 MAHAVIRA PD. DWIVEDI, Retired Editor, Sarasuoti, उदाहरण के लिए यहाँ एक सिकारिशो चिट्ठी उद्घृत की जाती हैं। एक महाराय 'सरस्वती' के अच्छे लेखकों में से थे—प्रायः उसमें लिखा करते थे। द्विवेदी जी उनको मानते थे। एक बार एक विश्वविद्यालय में हिंदी-अध्यापक की जगह खाली हुई। लेखक महोदय एक स्कूल के हेडमास्टर थे। उन्होंने द्विवेदी जी से एक सिकारिशी चिट्ठी लिखने की कहा। द्विवेदी जी इस समय संपादन-कार्य से अजग हो चुके थे। उन्होंने यह पत्र लिखा—

Juhi-kalan CAWNPORE: 24th April, 1922 MAHAVIRA PD. DWIVEDI, Retired Editor, Sarasucoti. वह कैसा प्रत्युपकार है! जिन लोगों की गाड़ी कमाई के पैसे से श्राप सुशिक्ति और सुपंडित वने बैठे हैं उनके। तथा उनकी सन्तित के तो पड़ने के लिए उनकी निजी भाषा में हूँड़ने से भी दस-पाँच तक अच्छी पुस्तकें न मिलें; और श्राप मेज़-क्क्सी लगाये, मूँछें ऐंडते प्लेटो, पिथागोरस शौर सेनेका, शंकर, जैमिन और श्रीहर्प के दार्शिनक विचारों की समालोचना सात समुद्र पार की भाषा में लिखें। × × × क्या केवल श्रार्शिदाँ हज़रत ही इस देश में रहते हैं! क्या ये स्कूल, कालेज श्रीर वज़ीफ उन्हीं के घर के रूपये से चलते हैं श्रीर मिलते हैं?

हमारी यह शिकायत $\times \times \times$ शास्त्री से ही नहीं, उत्तरी भारत के श्रन्यान्य श्रॅगरेज़ीदाँ शास्त्रियों से भी है। श्राप लोग श्रपनी भाषा में भी उपयोगी लेख जिखने की दया कीजिए। जिखना नहीं श्राता तो सीखिए। श्रयना कर्त्तस्य पालन कीजिए।''

ंसरस्वती, सितंबर १६१४)

ऐसे नेाट जनता पर प्रभाव डालते थे। लेकिन द्विवेदी जी की अभिलापा नहीं पूर्ण हुई। शायद ही एक-आध लेखक ने इन टिप्पिएयों पर ध्यान दिया हो; वाक़ी सब लकीर के कक़ीर ही बने रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' (भाग १४, संख्या ४, पृष्ठ १६६) में 'देशी भाषाओं में शिला'-शीर्षक लेख इस प्रकार लिखा है—

"भारत में विदेशी भाषा वड़ा ही ग़ज़व हा रही है। उसी की कृषा से हम जोग अपनी भाषा भूल-से रहे हैं। धँगरेज़ीदाँ मातृभाषा के। घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कितने ही महास्मा तो ऐसे हैं, जिन्हें अपनी आषा का एक शब्द तक लिखते लजा मालूम होती है। उनकी धँगरेज़ी चिट्टियों का उत्तर बार-बार मातृभाषा में देने पर

वह कैसा प्रखुपकार है! जिन जोगों की गाढ़ी कमाई के पैसे से श्राप सुशिचित श्रीर सुपंडित वने वैठे हैं उनके। तथा उनकी सन्तित के तो पढ़ने के लिए उनकी निजी भाषा में हूँढ़ने से भी दस-पाँच तक अच्छी पुस्तकें न मिलें; श्रीर श्राप मेज़-कुर्सी लगाये, मूँछ़ें ऐंठते प्लेटो, पिथागोरस श्रीर सेनेका, शंकर, जैमिन श्रीर श्रीहर्ष के दार्शनिक विचारों की समाजोचना सात समुद्र पार की भाषा में लिखें। × × क्या केवल श्रार ज़ीदाँ हज़रत ही इस देश में रहते हैं! क्या ये स्कूज, कालेज श्रीर वज़ीफ़ उन्हीं के घर के रूपये से चलते हैं श्रीर मिलते हैं?

हमारी यह शिकायत $\times \times \times$ शास्त्री से ही नहीं, उत्तरी भारत के श्रन्यान्य श्रॅंगरेज़ीट्रॉ शास्त्रियों से भी है। श्राप लोग श्रपनी मापा में भी उपयोगी लेख जिलने की दया कीजिए। जिल्ला नहीं श्राता तो सीखिए। श्रपना कर्त्तन्य पालन कीजिए।''

(सरस्वती, सितंबर १६१४)

ऐसे नेाट जनता पर प्रभाव डालते थे। लेकिन द्विवेदी जी की अभिलापा नहीं पूर्ण हुई। शायद ही एक-आध लेखक ने इन टिप्पिएयों पर ध्यान दिया हो; वाक़ी सव लकीर के फक़ीर ही बने रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' (भाग १४, संख्या ४, पृष्ठ १६६) में 'देशी भाषाओं में शिन्ना'-शीर्षक लेख इस प्रकार लिखा हैं—

"भारत में विदेशी भाषा बड़ा ही ग़ज़ब डा रही है। उसी की कृषा से हम कोग अपनी भाषा भृत-से रहे हैं। अँगरेज़ीदाँ मातृभाषा को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कितने ही महास्मा तो ऐसे हैं, जिन्हें अपनी आषा का एक शब्द तक लिखते लजा मालूम होती है। उनकी श्रॅंगरेज़ी चिट्टियों का उत्तर वार-वार मातृभाषा में देने पर

अच्छो से अच्छी पुस्तकों श्रीर पत्रों का नाम तक नहीं जानते। श्रक्रसोस!''

पर हिंदी-प्रचार के लिए द्विवेदी जी की सर्वत्र यही नीति नहीं रहती थी। वास्तव में वे साम, दाम, दाफ और भेद का उचित उपयोग करना जानते थे और करते भी थे। यदि समक्षते कि अमुक व्यक्ति केवल समकाये से ही हिंदी के प्रति अपना कर्तव्य समक्ष लेगा, तो उसके साथ वैसा ही वर्ताव करते थे। इसका उदाहरण सेंट निहालिस हजी के विषय में लिखी हुई एक टिप्पणी से मिलता है। सेंट जी एक प्रतिष्ठित और विद्वान् पुरुप थे, द्विवेदी जी ने उनके लेख पढ़े। सेंट जी में प्रतिभा थी और विद्वत्ता भी। फिर क्या था। द्विवेदी जी उन पर लट्टू हो गये और उनसे हिंदी में भी लिखने के कहा। द्विवेदी जी की नीति सफल हुई। सेंट निहालिस हजी ने कई लेख 'सरस्वनी' के लिए लिखे

२६ ऋक्नूबर, १६०४ के "श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार" में "हिंदी वोल नहीं सकती"—शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके लेखक ने लिखा था—

''सुनते हैं, दिन्दी श्रन्तों की भेंस बराबर समक्ष्तेवाले महात्मा लोग पहा करते हैं कि हिन्दी में पढ़ने की चीज़ ही क्या हैं, जो पढ़ी जाय किन्तु हे श्रॅगरेज़ी की महत्त्व देनेवाले महापुरुषो ! हिन्दी में श्रॅगरेज़ी का महत्त्व क्यों नहीं श्राता ? न श्राने के श्रपराधी क्या श्रापके सिंवा श्रीर कीई है ? श्रॅगरेज़ी की जे। चड़ाई श्रापकी खोपिंदियों में समा गई है उसकी भेंट हिन्दी के पढ़नेवालों को देने की ज़िम्मेवारी क्या उन्हीं लोगों की है, जो बेचारे घर की दशा ठीक न होने के कारण श्रॅगरेज़ो पढ़ने का मौक़ा नहीं पा सके ? श्रॅगरेज़ी विद्या के धुरन्धर श्रद्धों से श्रद्धी पुस्तकों श्रीर पत्रों का नाम तक नहीं जानते। श्रद्धसोस !''

पर हिंदी-प्रचार के लिए द्विवेदी जी की सर्वत्र यही नीति नहीं रहती थी। वास्तव में वे साम, दाम, दण्ड और भेद का उचित उपयोग करना जानते थे और करते भी थे। यदि समक्ते कि अमुक व्यक्ति केवल समभाये से ही हिंदी के प्रति अपना कर्तव्य समभ लेगा, तो उसके साथ वैसा ही वर्ताव करते थे। इसका उदाहरण सेंट निहालिंह जी के विषय में लिखी हुई एक टिप्पणी से मिलता है। सेंट जी एक प्रतिष्ठित और विद्वान् पुरुप थे, द्विवेदी जी ने उनके लेख पढ़े। सेंट जी में प्रतिभा थी और विद्वाता भो। फिर क्या था। द्विवेदी जी उन पर लट्ट्र हो गये और उनसे हिंदी में भी लिखने के कहा। द्विवेदी जी की नीति सफल हुई। सेंट निहालिंह जी ने कई लेख 'सरस्वनी' के लिए लिखे

२६ त्रक्तनूबर, १६०४ के "श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार" में "हिंदी वोल नहीं सकती"—शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके लेखक ने लिखा था—

''सुनते हैं, हिन्दी छत्तरों के। भेंस वरावर सममनेवाले महात्मा लोग जहा करते हैं कि हिन्दी में पढ़ने की चीज़ ही क्या है, जो पढ़ी जाय किन्तु हे श्रॅगरेज़ी को महत्त्व देनेवाले महापुरुषो ! हिन्दी में श्रॅगरेज़ी का महत्त्व क्यों नहीं श्राता ? न श्राने के श्रपराधी क्या श्रापके सिंवा श्रीर के।ई है ? श्रॅगरेज़ी की जे। चड़ाई श्रापकी खोपिंद्यों में समा गई है उसकी भेंट हिन्दी के पढ़नेवालों को देने की ज़िम्मेवारी क्या उन्हीं लोगों की है, जो बेचारे घर की दशा ठीक न होने के कारण श्रॅगरेज़ो पढ़ने का मौक़ा नहीं पा सके ? 'श्रॅगरेज़ी विद्या के धुरन्धर

इस रहस्य को सममने के लिए हमें द्विवेदी जी के उद्देश्य त्र्यौर त्रादर्श को समभना पड़ेगा । वे चाहते थे **कि** भारतवासी भारतीयता और राष्ट्रीयता का अर्थ समक्त जायँ त्रौर देश की उन्नति की त्रोर[े]ध्यान दें। इसका एकमात्र उपाय, उनकी समभ में, एक भाषा का प्रचार था। वे हिंदी को इस पद के योग्य सममते थे; क्योंकि यही एक भाषा ऐसी थी--है भी--जिसका प्रचार अन्य देशी भाषाओं से अधिक है। द्यतः यदि कोई दूसरी भाषा इस द्योर भुकती थी ते। वे इसे त्रापस की फुट समभते थे। उनका मत था कि हिंदी के अतिरिक्त कोई भाषा इस पद के योग्य हो ही नहीं सकती और यदि किसी प्रान्तवाले ऐसा करने का उद्योग भी करेंगे तो इससे हानि ही होगी। यही वात उन्होंने 'सरस्वती' में (भाग १५ संख्या १, ५० ४१०) लिखी है। उस समय वंगालियों ने यह चेष्टा की थी कि बँगला राष्ट्रभाषा वना दी जाय। वँगला तो इस पर के सर्वथा अनुपयुक्त थी-यद्यपि उसका साहित्य हिंदी से उन्नत था--पर हिंदी के उपयुक्त होने पर भी उसकी उन्नति की श्रोर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा था। द्विवेर्द जी त्रापस की इस कलह से बहुत दुखी हुए। उन्होंने बंगालिये का सममाने के लिए लिखा--

"मद्रास प्रान्त तक में जब हमारी भाषा के समक्तेवाले प्राय सर्वत्र पाये जाते हैं, तब वंगाल, वम्बई श्रीर पक्षाब के विषय में कुछ भी करने की श्रावश्यकता नहीं। सा, जिस भाषा के समक्तेवाले भारत के कोने-कोने में विद्यमान हैं श्रीर जिसकी सहायता से मनुष्य श्रवनोड़ा से कुमारिका श्रम्तरीप श्रीर पेशावर से रंगून -तक की यात्र में श्रपने भाव श्रम्य प्रान्तवालों पर प्रकट कर सकता है श्रीर उनकी बात समक सकता है, उसी का—उसी हिन्दी का —उसी के घं इस रहस्य को समभाने के लिए हमें द्विवेदी जी के उद्देश्य

और आदर्श की समभना पड़ेगा। वे चाहते थे कि भारतवासी भारतीयता और राष्ट्रीयता का अर्थ समभ जायँ त्रौर देश की उन्नति की त्रोर ध्यान दें। इसका एकमात्र उपाय, उनकी समभ में, एक भाषा का प्रचार था। वे हिंदी को इस पद के योग्य समभते थे; क्योंकि यही एक भाषा ऐसी थी--है भी--जिसका प्रचार अन्य देशी भाषाओं से अधिक है। अतः यदि कोई दूसरी भाषा इस श्रोर फ़ुकती थी तो वे इसे त्रापस की फूट समभते थे। उनका मत था कि हिंदी के त्र्यतिरिक्त कोई भाषा इस पद के योग्य हो ही नहीं सकती श्रीर यदि किसी प्रान्तवाले ऐसा करने का उद्योग भी करेंगे तो इससे हानि ही होगी। यही वात उन्होंने 'सरस्वती' में (भाग १५, संख्या १, पृ० ४१०) लिखी है। उस समय वंगालियों ने यह चेष्टा की थी कि बँगला राष्ट्रभाषा बना दी जाय। वँगला तो इस पद के सर्वथा अनुपयुक्त थी-यद्यपि उसका साहित्य हिंदी से उन्नत था--पर हिंदी के उपयुक्त होने पर भी उसकी उन्नति को छोर विरोव ध्यान नहीं दिया जा रहा था। द्विवेदी जी त्रापस की इस कलह से वहुत दुखी हुए। उन्होंने वंगालियों का सममाने के लिए लिखा--

सर्वत्र पाये जाते हैं, तब वंगाल, वन्बई और पक्षाव के विषय में कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं । सेा, जिस भाषा के समक्रनेवाले भारत के कोने-कोने में विद्यमान हैं और जिसकी सहायता से मनुष्य अस्तोड़ा से कुमारिका अन्तरीप और पेशावर से रंगून -तक की यात्रा में अपने भाव अन्य प्रान्तवालों पर प्रकट कर सकता है और उनकी बात समक सकता है, उसी का—उसी हिन्दी का—उसी के घ' में

''मद्रास प्रान्त तक में जब हमारी भाषा के समक्तनेवाले प्रायः

गित रखते थे और उन्होंने वंग-किंव माइकेल मधुसूदन दत्त तथा किंविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्यादि के जीवन-चिरत भी, संचिप में, लिखे हैं। त्रतः यह समम्मना कि द्विवेदी जी को वँगला से द्वेप था, ठीक नहीं है। वास्तव में वे यह चाहते थे कि जिस प्रकार वंगाली त्र्यपनी मातृभापा की उन्नति के लिए दत्तचित्त हैं, उसी प्रकार—चाहे उन्हीं की देखादेखी—हिंदी-भाषा-भाषियों को भी यह चेष्टा करनी चाहिए कि हिंदी-साहित्य की पूर्ण उन्नति हो जाय। वँगला-साहित्य पर उन्होंने समय-समय पर जो टिप्पिएयाँ दी हैं वे इसी उद्देश्य की द्योतक हैं कि वंगालियों का त्र्यपनी भाषा के प्रति जैसा कर्तव्य है, उसे सुमाकर हिंदीवालों के। भी त्रयपनी मातृ-भाषा के प्रति कर्तव्य का ज्ञान करा दें। 'वंग-किंव-कुल-केंकिल' वावू नवीनचंद्र सेन, वी० ए० का संचिप्त परिचय उन्होंने त्रप्रेल, सन् १६०६ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था। उसके द्यंत में द्विवेदी जी ने लिखा है—

'ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसा एक श्राध महाकवि न सही तो श्रन्छा कवि ही इन प्रांतों में भी पैदा करे, जहाँ की मुख्य भाषा हमारी हीना श्रीर चीय-कत्तेवरा हिंदी है ।''

इस कथन से हमें ज्ञान होता है कि द्विवेदी जी के हृदय में अन्य भाषाओं की उन्नति देखकर कसक उठती थी। यह कसक डाह या ईर्ज्या की द्योतक नहीं थी, वरन इस हूक का कारण यह था कि हिंदी की इसी प्रकार उन्नति करने के लिए हिंदी-भाषा-भाषी कुछ ध्यान ही नहीं देते थे ।

यही वात उर्दू के लिए भी कही जा सकती है। उर्दू की उन्नति की त्रोर कुछ लोग ध्यान देते थे। एक वार भोपाल की वेगम साहिवा ने मुहम्मद साहव के चरित्र-लेखक की दो सौ गित रखते थे और उन्होंने वंग-किव माइकेल मधुसूद्रन दल्त तथा किववर रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्याद्र के जीवन-चरित भी, संचेंप में, लिखे हैं। त्रतः यह सममना कि द्विवेदी जी को वँगला से द्वेप था, ठीक नहीं है। वास्तव में वे यह चाहते थे कि जिस प्रकार वंगाली त्रपनी मात्रभापा की उन्नति के लिए दत्तचित्त हैं, उसी प्रकार—चाहे उन्हों की देखादेखी—हिंदी-मापा-भापियों को भी यह चेप्टा करनी चाहिए कि हिंदी-साहित्य की पूर्ण उन्नति हो जाय। वँगला-साहित्य पर उन्होंने समय-समय पर जो टिप्पिएयाँ दी हैं वे इसी उद्देश्य की द्योतक हैं कि वंगालियों का त्रपनी भाषा के प्रति जसा कर्तव्य हो, उसे सुमाकर हिंदीवालों को भी त्रपनी मात्र-भाषा के प्रति कर्तव्य का ज्ञान करा दें। 'वंग-किव-कुल-केकिल' वावू नवीनचंद्र सेन, वी० ए० का संचिप्त परिचय उन्होंने त्रप्रेल, सन् १६०६ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था। उसके द्यंत में द्विवेदी जी ने लिखा है—

'ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसा एक थाध महाकवि न सही तो अच्छा किव ही इन प्रांतों में भी पैदा करे, जहाँ की मुख्य भाषा हमारी हीना घोर चीय-कत्तेवरा हिंदी है।''

इस कथन से हमें ज्ञात होता है कि द्विवेदी जी के हृदय में अन्य भाषाओं की उन्नति देखकर कसक उठती थी। यह कसक डाह या ईर्ज्या की द्योतक नहीं थी, वरन इस हूक का कारण यह था कि हिंदी की इसी प्रकार उन्नति करने के लिए हिंदी-भाषा-भाषी कुछ ध्यान ही नहीं देते थे ।

यही वात उर्दू के लिए भी कही जा सकती है। उर्दू की उन्नति की छोर कुछ लोग ध्यान देते थे। एक वार भोपाल की बेगम साहिवा ने मुहम्मद साहव के चरित्र-लेखक की दो सौ

July ar

इसे सीखे तो हमारा निस्तार ही नहीं। पर हमारा रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, सब ऋँगरेजी ढंग का हे जाय का नम्म मात्रभाषा में लिखना, पढ़ना, वोलना, पाप समझने लगें, यह हमारे लिए घातक है। ऋँगरेजी-भाषा-विषयक उनके विचार 'महामंडल-माहात्म्य' नाम की अँगरेजी पुस्तक की आलोचना से स्पष्ट हो जाते हैं। यह आलोचना 'सरस्त्रती' (भाग १६, संख्या ३, पृ० १८६) में प्रकाशित हुई थी। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा है---

"भारत धर्म-महामण्डल धार्मिक परिपद् है। सन्।तनधर्म की रचा श्रीर विस्तार हो के लिए उसका जन्म हुआ है। ऐसी संस्था से प्रकाशित पुस्तकें भाँगरेज़ी में क्यों निकत्ते ? हिंदी या श्रीर किसी .. भाषा में क्यों नहीं ?"

इसी प्रकार जव 'पृथिवी-प्रदित्तणा' के लेखक वावू शिवप्रसाद ग्रप्त ने लिखा--

''मैंने क़लम उठा अपनी गँवारी देशी भाषा वा असभ्य देवनागरी श्रन्तों में छोटा सा विचार निख दिया। हमारे साहव हिंदू लोग हँसेंगे कि यह धनव उल्लू है कि हवाई द्वीप में भी हिंदी में लिखना है। भला इसे पढ़ेगा कीन ? किंतु उन्हें अलमोड़ा, द्वारिकाश्रम इत्यादि या अन्य किसी जगह ही सही, यारप-अमेरिका-निवासियों का द्यारोज़ी, जर्मन, फरासीमी भाषात्रों में लिखते देख हँसी नहीं स्राती, उत्तरे उनकी नक्कत कर वे स्वयं धाँगरेज्ञी में लिखने लग्नु जाते हैं। इसी का नाम है पराधीनता की छाप

, econo - 90' 986 1

तव द्विवेदी जी ने वड़े मार्के का यह नोट लिखा था— फा० १४

इसे सीखे तो हमारा निस्तार ही नहीं। पर हमारा रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, सब अँगरेजी हंग का हो जाय हम अपनी मात्रभाषा में लिखना, पहना, वेालना, पाप सममने लगें, यह हमारे लिए घातक है। अँगरेजी-भापा-विषयक उनके विचार 'महामंडल-माहात्म्य' नाम की अँगरेजी पुस्तक की आलोचना से स्पष्ट हो जाते हैं। यह आलोचना 'सरस्वती' (भाग १६, संख्या ३, पृ० १८६) में प्रकाशित हुई थी। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा है—

"भारत धर्म-महामण्डल धार्मिक परिपद् है। सनातनधर्म की रखा और विस्तार हो के लिए उसका जन्म हुआ है। ऐसी संस्था से प्रकाशित पुस्तकें भूँगरेज़ी में क्यों निकतें? हिंदी या और किसी. भाषा में क्यों नहीं?"

इसी प्रकार जब 'पृथिवी-प्रदक्तिणा' के लेखक वावृ शिवप्रसाद गुप्त ने लिखा—

"मैंने क़लम उठा अपनी गँवारी देशी भाषा वा असभ्य देवनागरी अवरों में छोटा सा विचार लिख दिया। हमारे साहव हिंदू लोग हँसेंगे कि यह अनव उल्लू है कि हवाई द्वीप में भी हिंदी में लिखना है। भला इसे पढ़ेगा कौन? किंतु उन्हें अलमोड़ा, द्वारिकाश्रम हस्यादि या अन्य किसी लगह ही सही, योरप-अमेरिका-निवासियों के। अँगरेज़ी, जर्मन, फरासीपी भाषाओं में लिखते देख हँसी नहीं आती, उलटे उनकी नक़ल कर वे स्वयं धँगरेज़ी में लिखने लुग ्लाते हैं। इसी का नाम है पराधीनता की छाप

1 348 "30" 2 muss.

तव द्विवेदी जी ने वड़े मार्के का यह नोट लिखा था—

थे। 'हिंदी-विश्वकोप'-नामक ग्रंथ के पहले खंड की एक कापी
द्विवेदी जी के पास भेजी गई। साथ में एक पत्र भी था। यह
ऋँगरेजी में लिखा था। यह वात सन् १६३७ की है। द्विवेदी जी
इस समय संपादक नहीं थे। उन्होंने कीव की समालीचना
'सरस्वती' में प्रकाशित कराई श्रीर उसमें साथ के श्रॅगरेजी
पत्र का जिक्र कर दिया।

उच्च केंदि की जो पुस्तकें द्विवेदी जी दूसरी भाषा में पढ़ते थे उन्हें श्रयनी भाषा में लिखताना श्रपना कर्तव्य समभते थे। इसके लिए कई बार उन्होंने प्रयह्न भी किया।

'उड़जेन के स्वा या सर-स्वा' रायवहाद्धर चिंतामणि विनायक वेंग, एम० ए०, एल-एल० वी० ने एक पुस्तक 'महाभारत का उपसंहार' लिखी। द्विवेदी जी ने उसे पड़ा। पुस्तक उन्हें बहुत ही अधिक पसंद आई और उसे उन्होंने पञ्चम वेद—महाभारत—की सभी दृष्टियों से की गई चूड़ान्त समालोचना सममा। हिंदी में इस प्रकार की कोई पुस्तक न थी, अतः उसे पढ़कर उनके मन में जो भावना पेदा हुई उसे उन्हीं के शब्दों में देखिए—

भ दाखए—

"इस पुस्तक के पढ़कर हमारे मन में यह भावना हुई कि यदि

इसका हिंदी-श्रनुवाद हो जाता तो श्रपनी भाषा के साहित्य में एक

श्रमुख्य ग्रथ की संपन्नता हो जाती।"

-सरस्वती (भा० २६. सं० ४ ए० ४२२)

वाल्मीकि-रामायण की भी इस प्रकार की कोई समा-लोचनात्मक पुराक न थी। यह कमी भी द्वित्रेग़े जी की बहुत खटकती थी। हिंदी के लेखकों से उन्होंने इसको पूरा करने की थे। 'हिंदी-विश्वकोप'-नामक प्रंथ के पहले खंड की एक कापी हिंवेदी जी के पास भेजी गई। साथ में एक पत्र भी था। यह आगरेजी में लिखा था। यह बात सन् १६३० की है। हिवेदी जी इस समय संपादक नहीं थे। उन्होंने कीव की समालीचना 'सरस्वती' में प्रकाशित कराई और उसमें साथ के अँगरेजी पत्र का जिक्र कर दिया।

उच्च केंद्रि की जो पुस्तकें द्विवेदी जो दूसरी भाषा में पढ़ते थे उन्हें अपनी भाषा में लिखवाना अपना कर्तव्य सममते थे। इसके लिए कई बार उन्होंने प्रयत्न भी किया।

'उड़जेन के सूवा या सर-सूवा' रायवहादुर चिंतामिए विनायक वेंग्न, एम० ए०, एल-एल० वी० ने एक पुस्तक 'महाभारत का उपसंहार' लिखी। द्विवेदी जी ने उसे पड़ा। पुस्तक उन्हें यहुत ही अधिक पसंद आई और उसे उन्होंने पञ्चम वेद— महाभारत—की सभी इष्टियों से की गई चूड़ान्त समालोचना सममा। हिंदी में इस प्रकार की कोई पुस्तक न थी, अतः उसे पढ़कर उनके मन में जो भावना पेदा हुई उसे उन्हीं के शब्दों में देखिए—

''इस पुस्तक वे। पढ़कर हमारे मन में यह भावना हुई कि यदि इसका हिंदो-श्रनुवाद हो जाता तो श्रपनी भाषा के साहित्य में एक श्रमूल्य प्रथ की संपन्नता हो जाती।''

-- सरस्वती (भा० २६ मं० ४ ए० ४२२)

वाल्मीकि-रामायण की भी इस प्रकार को कोई समा-लोचनात्मक पुरुषक नथी। यह कमी भी द्विपेरो जी की बहुत खटकती थी। हिंदी के लेखकों से उन्होंने इसको पूरा करने की दता है—उसे किसी का डर नहीं। वहुत दिन की वात नहीं है, जब एक महाशय ने वाबू पुरुषोत्तमदास टंडन की एक फा अँगरेजी में लिखा था। टंडन जी का उत्तर हिंदी में ही आया और उसका पहला वाक्य था—

''श्रापका ग्रॅंगरेज़ी भाषा में लिखा हुआ पत्र मिला। धन्यवाद।''

लेखक महाशय बी० ए० थे, न्यंग्य समफे और कटकर रह गये। यही द्विवेदी जो भी चाहते थे कि जो वड़े अँगरेजीदाँ बनते हैं वे अपनी मातृभाषा के प्रति अपना कर्तन्य समफ जायँ। वे अपने प्रयत्न में वहुत कुछ सफल हुए। हिंदी-भाषा-भाषियों ने अपना कर्तन्य समफा और हिंदी-प्रचार भी हुआ। पर द्विवेदी जी को सन्तोष न हुआ। यदि कोई ऐसा न्यक्ति जिसकी मातृभाषा हिंदी नहीं होती थी, हिंदी का अध्ययन करता था तो द्विवेदी जी फूले नहीं समाते थे। उनकी यह प्रशृत्ति आरंभ से ही रही है। सन् १६०१ में उन्होंने एक पत्र शीयुत सदाशिव रघुनाथ भागवत को लिखा था। यह पत्र इस प्रकार है—

> १० जनवरी, १६०१ भाँसी

प्रिय महाशय,

श्रापका कृतापत्र श्राया। श्रत्यानंद हुया। यह जानकर श्राथ्ययें होता है कि श्रापकी मातृमापा मराठी होकर, श्रापने हिंदी में इतना श्रम्यास किया है। यही नहीं, किंतु श्राप हिंदी में कविता भी कर सकते हैं। श्रापकी विधाभिक्षि प्रशंसनीय है। यदि ग्वाजियर श्राने का श्रवसर श्रास होगा, तो इस श्रापते श्रवस्य मिलेंग्रे + एक 'नागरी' दता है—उसे किसी का डर नहीं। वहुत दिन की वात नहीं है, जब एक महाशय ने वाबू पुरुपोत्तमदास टंडन की एक फा अँगरेजी में तिखा था। टंडन जी का उत्तर हिंदी में ही आया और उसका पहला वाक्य था—

"श्रापका ग्रॅंगरेज़ी भाषा में लिखा हुआ पत्र मिला। धन्यवाद।"

लेखक महाराय बी० ए० थे, ज्यंग्य समभे श्रीर कटकर रह गये। यही द्विवेदी जी भी चाहते थे कि जो वड़े श्रॅगरेजीदाँ वनते हैं वे श्रपनी मातृभापा के प्रति श्रपना कर्तव्य समभ जायँ। वे श्रपने प्रयत्न में वहुत कुछ सफल हुए। हिंदी-भाषा-भाषियों ने श्रपना कर्तव्य समभा श्रीर हिंदी-प्रचार भी हुश्रा। पर द्विवेदी जी को सन्तोप न हुश्रा। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिसकी मातृभाषा हिंदी नहीं होती थी, हिंदी का श्रध्ययन करता था तो द्विवेदी जी फूले नहीं समाते थे। उनकी यह प्रशृत्ति श्रारंभ से ही रही है। सन् १६०१ में उन्होंने एक पत्र श्रीयुत सदाशिव रघुनाथ भागवत को लिखा था। यह पत्र इस प्रकार है—

> १० जनवरी, १६०३ भाँसी

प्रिय महाशय,

श्रापका कृपापत्र श्राया । श्रत्यानंद हुश्या । यह जानकर श्राश्चरं होता है कि श्रापकी मातृभाषा मराठी होकर, श्रापने हिंदी में इतना श्रम्यास किया है । यही नहीं, किंतु श्राप हिंदी में कविता भी कर सकते हैं । श्रापकी विधाभिरुचि प्रशंसनीय है । यदि ग्वालियर श्राने का श्रवसर प्राप्त होगा, तो इस श्रापसे श्रवस्य मिलेंगे + एक 'नागरी' यहाँ एक शंका की जा सकती है। जिस हिंदी की उन्न ति के लिए वे दिन-रात प्रयन्नशील रहते थे उसी मातृभाषा हिंदी का प्रचार करनेवाली नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, की सेवान्नों ख्रौर कार्यों की वे कटु खालोचना क्यों किया करते थे। वास्तव में द्विवेदी जी सभा के उद्देश्य को वड़े ख्रादर की दृष्टि से देखा करते थे ख्रौर उसके जन्मदाता वावू श्यामसुंदरदास जी का भी वड़ा सम्मान किया करते थे। इसके लिए सभा के मंत्री बावू राधाकृष्णदास ने २४-१-१८६६ के। धन्यवाद का एक पत्र भी द्विवेदी जी को लिखा था। वाद में जब सभा के कार्यकर्ताओं में ही कुछ मनमुटाव ख्रौर किसी सीमा तक स्वार्थपरता का भाव ख्रागया तव वे उसके विरुद्ध हो गये। इस वात के वे स्वयं 'सरस्वती' में लिख चुके हैं। ख्रस्तु!

श्राज देश में हिंदी-प्रचार के लिए व्यापक श्रान्दोलन हो रहा है श्रीर साहित्य के प्रत्येक श्रंग की पूर्ति की चेष्ठा भी की जा रही है। इसका श्रेय द्विवेदी जी को ही है। वास्तव में वे क हिंदी के निष्काम साधक थे। उसकी उन्नति के लिए उन्होंने श्रपना तन, मन, धन सभी कुछ श्रपण कर दिया। एक महा-शय के विषय में कहा जाता है कि उन्हें चौवीसों घंटे देश का ध्यान रहता था; हम भी कह सकते हैं कि द्विवेदी जी चौवीसों घंटे हिंदी के हित की वात सीचा करते थे। यहाँ एक शंका की जा सकती है। जिस हिंदी की उन्न ति के लिए वे दिन-रात प्रयन्नशील रहते थे उसी मानुभाषा हिंदी का प्रचार करनेवाली नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, की सेवान्नों त्रीर कार्यों की वे कड़ त्रालोचना क्यों किया करते थे। वास्तव में द्विवेदी जी सभा के उद्देश्य को वड़े त्रादर की दृष्टि से देखा करते थे त्रीर उसके जन्मदाता वावू श्यामसुंदरदास जी का भी वड़ा सम्मान किया करते थे। इसके लिए सभा के मंत्री बावू राधाकृष्णदास ने २४-१-१८६६ को धन्यवाद का एक पत्र भी द्विवेदी जी को लिखा था। वाद में जब सभा के कार्य-कर्तात्रों में ही कुछ मनमुटाव त्रीर किसी सीमा तक स्वार्थपरता का भाव त्रागया तब वे उसके विरुद्ध हो गये। इस वात की वे स्वयं 'सरस्वती' में लिख चुके हैं। त्रस्तु!

आज देश में हिंदी-प्रचार के लिए व्यापक आन्दोलन हो रहा है और साहित्य के प्रत्येक अंग की पूर्ति की चेष्टा भी की जा रही है। इसका श्रेय द्विवेदी जी को ही है। वास्तव में वे के हिंदी के निष्काम साधक थे। उसकी उन्नति के लिए उन्होंने अपना तन, मन, धन सभी कुछ अपण कर दिया। एक महा-शय के विषय में कहा जाता है कि उन्हें चौबीसों घंटे देश का ध्यान रहता था; हम भी कह सकते हैं कि द्विवेदी जी चौबीसों घंटे हिंदी के हित की वात सोचा करते थे। यह बुढ़ापे के समय का पंडित हरिभाऊ उपाध्याय के देखे हुए व्यक्तित्व का वर्णन हैं। इसी की दृसरी आँखों से देखिए—

"लंबा क़द, विशाल और रोबदार चेहरा, उद्दत ललाट. गौर वर्ण, सिंह के समान अस्त-व्यस्त फैली हुई वड़ी-बड़ी मुळें और असाधारण घनी घनी भैंहें—द्विवेदी जी की देखकर एक महापुरुप व तस्ववेत्ता के सात्तारकार का श्रनुभव तो होता ही है, यह भी जान पड़ता है कि इम फौज के किसी रिटायर्ड कमाण्डर के सामने खड़े हैं, जो गुर्गो से धारा के प्रवाह को अपनी गोद में लेकर उछाल देता रहा हो, और जिसका चुर्गो का संचय काई के रूप में बुड़ापे के केवल थोड़े से पद-विद्व हों—उसकी कठोरता वैसी ही बनी हो, उसकी थपेड़ों से लहरें श्रय भी मुड़-मुड़कर बहती हों। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में हमें एक ऐसे कुराल सेनानायक के गुणों की मजक मिलती है, जिसके जीवन का मुख्य तत्त्व श्रनुशासन रहा हो। वह यदि गुद्ध के चेत्र में होते, तो सेनाधों का संचालन करते। हिंदी के साहित्य-चेत्र में श्राये, तो उन्होंने बीस वर्ष तक उसकी डिक्टेटरशिप श्रपने हाथ में रक्ली।"

लगभग चालीस वर्ष पहले उनकी स्थिति साधारण ही थी। मामूली गृहस्थों की तरह रहते थे और रेल के वाबुओं की तरह कोट-पतल्न पहनते थे। उस समय भी लोग अपने सामने कोट-पतल्न डाटे एक 'जाएंट' को देखा करते थे। उनका वह तेजस्वी व्यक्तित्व, विशाल रोबदार चेहरा और उन्नत ललाट, वड़ी-वड़ी भोंहों के नीचे तेजपूर्ण नेत्रों की मर्मवेधिनी दृष्टि देखकर दूसरे सहम-से जाते थे। यद्यपि बुढ़ापे में उनके चेहरे पर वह कान्ति और नेत्रों में वह ज्योति नहीं रही थी, तथापि उनकी सौम्य आकृति वैसा ही प्रभाव डालनेवाली अन्तिम दिनों तक वनी रही थी

यह बुढ़ापे के समय का पंडित हरिमाऊ उपाध्याय के देखे हुए व्यक्तित्व का वर्णन है। इसी की दृसरी आँखों से देखिए—

"लंबा झद, विशाल श्रीर रोबदार चेहरा, उद्गत ललाट. गौर वर्ण, सिंह के समान श्रस्त-व्यस्त फैली हुई वड़ी-बड़ी मुछें श्रीर श्रसाधारण घनी घनी मैंहिं—द्विवेदी जी की देखकर एक महापुरुप व तस्ववेत्ता के साचारकार का श्रनुभव तो होता ही है, यह भी जान पड़ता है कि हम फौज के किसी रिटायर्ड कमाण्डर के सामने खड़े हैं, जो युगों से धारा के प्रवाह को श्रपनी गोद में लेकर उछाल देता रहा हो, श्रीर जिसका युगों का संचय काई के रूप में बुदापे के केवल थोड़े से पद-विद्व हों—उसकी कठोरता वैसी हो बनी हो, उसकी थपेड़ों से लहरें श्रव भी मुड़-मुड़कर बहती हों। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में हमें एक ऐसे कुशल सेनानायक के गुणों की मलक मिलती है, जिसके जीवन का मुख्य तत्त्व श्रनुशासन रहा हो। वह यदि श्रद्ध के चेत्र में होते, तो सेनाश्रों का संचालन करते। हिंदी के साहित्य-चेत्र में श्राये, तो उन्होंने बीस वर्ष तक उसकी डिक्टेटरशिप श्रपने हाथ में रक्खी।"

लगभग चालीस वर्ष पहले उनकी स्थिति साधारण ही थी।
मामूली गृहस्थों की तरह रहते थे और रेल के वावुओं की तरह
कोट-पतल् पहनते थे। उस समय भी लोग अपने सामने कोटपतल् डाटे एक 'जाएंट' को देखा करते थे। उनका वह
तेजस्वी व्यक्तित्व, विशाल रोवदार चेहरा और उन्नत ललाट,
बड़ी-वड़ी भोंहों के नीचे तेजपूर्ण नेत्रों की मर्मविधिनी दृष्टि
देखकर दूसरे सहम-से जाते थे। यद्यपि बुढ़ापे में उनके चेहरे
पर वह कान्ति और नेत्रों में वह ज्योति नहीं रही थी, तथापि
उनकी सौम्य आकृति वैसा ही प्रभाव डालनेवाली अन्तिम दिनों
तक बनी रही थी।

पंचायत के सरपंच भी थे। पहले वे आनरेरी मुंसिक थे, लेकिन अब कई वर्षों से वहाँ पंचायत स्थापित हो गई थी। मुक़दमों की कुल काररवाई वे हिंदी में ही लिखते थे। जिस दिन मुक़दमें इत्यादि नहीं पेश होते, उस दिन थोड़ा-सा आराम करकें अख़वार ही पढ़ा करते थे। कभी-कभी दे। पहर को लेटकर कुछ विश्राम भी कर लेते थे। नींद तो उन्हें रात में भी बहुत कम आती थी। दिन में तो शायद ही कभी सोते हों। उन्निद्र रोग से वे सदैव पीड़ित रहे। शाम को, चार बजने के वाद, वे अपने वागों व खेतों की ओर चूमने जाते थे। मार्ग में गरीब किसान मिल जाते थे। द्विवेदी जी उनसे, उनकी ही भाषा में, खेती-किसानी के विषय में बड़ी देर तक वातें किया करते थे। शाम को चूम-फिरकर थोड़ी देर तक दरवाचे पर वैठते थे। कोई आ गया तो उससे वातें किया करते थे। इसके वाद शीघ ही सो जाने को ऊपर चले जाते थे।

यह थी द्विवेदी जी की वँधी हुई दिनचर्या। वृद्धावस्था में वे अपने गाँव से बहुत कम निकलते थे। परंतु जब वे 'सरस्वती' के संपादक थे तब भी उनका दैनिक जीवन और कार्यक्रम निश्चित रहता था और वे सब काम समय पर ही किया करते थे। यहाँ तक कि उनके दैनिक जीवन और कार्य-क्रम से परिचित रहनेवाला व्यक्ति निःसंदेह यह बता सकता था कि अमुक समय में द्विवेदी जी अमुक कार्य कर रहे होंगे और अमुक स्थान पर मिलेंगे। उनकी वक्त की पावंदी और कर्तव्य-पालन की दृद्रता देखकर एक बार स्वर्गीय वाबू चिंतामिण घोप ने उन्हीं से कहा था—हिंदुस्तानी संपादकों में मेंने वक्त के पावंद और कर्तव्य-पालन के विषय में दृद्ध-प्रतिज्ञ दे। ही आदमी देखे हैं; एक तो रामानंद वाबू और दूसरे आप।

पंचायत के सरपंच भी थे। पहले वे आनरेरी मुंसिफ थे, लेकिन अब कई वर्षों से वहाँ पंचायत स्थापित हो गई थी। मुक़दमों की कुल काररवाई वे हिंदी में ही लिखते थे। जिस दिन मुक़दमें इत्यादि नहीं पेश होते, उस दिन थोड़ा-सा आराम करके अखवार ही पढ़ा करते थे। कभी-कभी दोपहर को लेटकर कुछ विश्राम भी कर लेते थे। नींद तो उन्हें रात में भी बहुत कम आती थी। दिन में तो शायद ही कभी सोते हों। उन्निष्ट रोग से वे सदैव पीड़ित रहे। शाम को, चार वजने के वाद, वे अपने वारों व खेतों की और घूमने जाते थे। मार्ग में ग्रीब किसान मिल जाते थे। द्विवेदी जी उनसे, उनकी ही भाषा में, खेती-किसानी के विषय में वड़ी देर तक वातें किया करते थे। शाम को घूम-फिरकर थोड़ी देर तक दरवाजे पर वैठते थे। कोई आ गया तो उससे वातें किया करते थे। इसके वाद शीघ ही सो जाने को अपर चले जाते थे।

यह थी द्विवेदी जी की वँधी हुई दिनचर्या। वृद्धावस्था में वे अपने गाँव से वहुत कम निकलते थे। परंतु जब वे 'सरस्वती' के संपादक थे तब भी उनका दैनिक जीवन और कार्यक्रम निश्चित रहता था और वे सब काम समय पर ही किया करते थे। यहाँ तक कि उनके दैनिक जीवन और कार्य-क्रम से परिचित रहनेवाला व्यक्ति निःसंदेह यह वता सकता था कि अमुक समय में द्विवेदी जी अमुक कार्य कर रहे होंगे और अमुक स्थान पर मिलोंगे। उनकी वक्त की पाबंदी और कर्तव्य-पालन की दृदता देखकर एक बार स्वर्गीय वाबू चिंतामिण घोप ने उन्हीं से कहा था—हिंदुस्तानी संपादकों में मैंने वक्त के पाबंद और कर्तव्य-पालन के विषय में दृद-प्रतिज्ञ दे। ही आदमी देखे हैं; एक तो रामानंद वाबू और दूसरे आप

भावुक, प्रतिभाशाली और शिष्ट लेखक थे। उन्हें सभा के उद्देश्य और आदर्श से पूर्ण सहातुभूति थी; परंतु सभा के तत्कालीन कार्यकर्ताओं की नीति उन्हें पसंद नहीं थी। पर उन्होंने किसी पर अपने लेख में आत्तेप नहीं किया। फिर भी पंडित केदारनाथ जी पाठक ने जाकर उनसे पहला प्रश्न यही किया कि सभा के कार्यों की जो कड़ी आलोचना की है उसका हमें किस रूप में प्रतिवाद करना होगा—क्या 'विपस्य विपमौपधम्' की नीति का अवलंबन करना पड़ेगा ?

द्विवेदी जी ने मुस्कराते हुए सज्जनोचित शब्दों में कहा—देवता! ठहर जास्रो, ठहर जास्रो, मैं स्रभी स्राता हूँ। स्रोर एक तरतरी में मिठाई, एक लोटा जल लाकर सामने रख दिया तथा एक मोटी लाठी भी साथ लेते स्राये। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—सुदूर प्रवास से थके-माँदे स्रा रहे हो, पहले हाथ-मुँह धोकर जलपान करके सवल हो जास्रो। तव यह लाठी स्रोर यह मेरा मस्तक है। यह थी सरलता की कोमलता, जिसने पाठक जी को पानी-पानी कर दिया। चित्त की कोधांगिन को स्रशुधारा ने बुमा दिया। क्रोध का स्थान करणा ने प्रहण कर लिया। हदय में श्रद्धा स्रोर भक्ति का भाव उमड़ पड़ा।

श्राम खाने का शौक उन्हें श्रारंभ से ही था। उन्होंने कई श्राम के पेड़ स्वयं लगाये थे। सन् १८८५ के लगभग वे हुशंगावाद के रेलवे स्टेशन पर थे। स्टेशन के पास ही एक वँगले के श्राँगन में उन्होंने वंबई के 'हाउस' नाम के क़लमी श्राम की एक गुठली गाड़ दी। उससे पौथा निकला। १५-२० वर्ष वाद द्विवेदी जी फिर एक वार उधर से निकले, तब स्टेशन

भावुक, प्रतिभाशाली और शिष्ट लेखक थे। उन्हें सभा के उद्देश और आदर्श से पूर्ण सहानुभूति थी; परंतु सभा के तत्कालीन कार्यकर्त्ताओं की नीति उन्हें पसंद नहीं थी। पर उन्होंने किसी पर अपने लेख में आत्तेप नहीं किया। फिर भी पंडित केदारनाथ जी पाठक ने जाकर उनसे पहला प्रश्न यही किया कि सभा के कार्यों की जो कड़ी आलोचना की है उसका हमें किस रूप में प्रतिवाद करना होगा—क्या 'विपस्य विपमौपधम्' की नीति का अवलंबन करना पड़ेगा ?

दिवेदी जी ने मुस्कराते हुए सज्जनोचित शब्दों में कहा—देवता! ठहर जान्रो, ठहर जान्रो, मैं त्रभी त्राता हूँ। त्रोर एक तश्तरी में मिठाई, एक लोटा जल लाकर सामने रख दिया तथा एक मोटी लाठी भी साथ लेते त्राये। तत्पञ्चात् उन्होंने कहा—सुदूर प्रवास से थके-माँदे त्रा रहे हो, पहले हाथ-मुँह धोकर जलपान करके सवल हो जान्रो। तव यह लाठी त्रीर यह मेरा मस्तक है। यह थी सरलता की कोमलता, जिसने पाठक जी को पानी-पानी कर दिया। चित्त की कोधानिन को त्रशुधारा ने बुमा दिया। क्रोध का स्थान करुणा ने प्रहण कर लिया। हृदय में श्रद्धा त्रीर भक्ति का भाव उमड़ पड़ा।

श्राम खाने का शौक़ उन्हें श्रारंभ से ही था। उन्होंने कई श्राम के पेड़ स्वयं लगाये थे। सन् १८८५ के लगभग वे हुशंगावाद के रेलवे स्टेशन पर थे। स्टेशन के पास ही एक वँगले के श्राँगन में उन्होंने वंबई के 'हाउस' नाम के क़लमी श्राम की एक गुठली गाड़ दी। उससे पौधा निकला। १५-२० वर्ष बाद द्विवेदी जी फिर एक बार उधर से निकले, तब स्टेशन

उनका पुस्तकालय भी था, प्रवेश किया। मेरे द्वारा वहाँ श्रन्य होनों -सज्जनों का परिचय पाकर वे विशेष प्रसन्न हुए थीर हम लोगों से साहित्य-संबंधी वार्तालाप करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने हम लोगों की जलपान पराया थीर पान दिये। इस प्रकार लगभग दो घंटे तक हम लोग हिवेदी जी के सरसंग में थानंद मनाते रहे। थंत में हम लोगों के विदा लेने पर थाप सड़क तक हम सबदें। भेजने श्राये थीर थादर-सरकार की गुटियों के लिए छमा माँगी।

स्वर्गवासी द्विवेदी जी शिष्टाचार के पूरे पालक थे, अतएव उन्हें किसी की थोड़ी भी अशिष्टता सहा नहीं होती थी। पूर्वोक्त अवसर पर जब द्विवेदी जी कुछ कह रहे थे तब में भूल से योच में कुछ वह गया। इस पर उन्होंने कुछ रूले होकर कहा कि आपके साथ धातचीत करना कठिन हैं! में नत-मस्तक होकर रह गया। द्विवेदी जी का स्वभाव जितना द्वालु था उत्तना ही उम्र भी था, मानो वे 'सौंसित किर पुनि करिह पसाक'। अनिधकारी लोगों के धार्तालाप तथा ज्यवहार से उनके मन में ग्लानि होती थी। वे पन्नों का उत्तर बहुधा लौटती ढाक से देते थे और जो उनके पत्र वा उत्तर नहीं देता था उसे वे असम्य समझते थे तथा उसकी अवहेलना को शपना अपनान मानते थे।"

द्विवेदी जी का यह दस्तूर था कि जो कोई भी उनसे मिलने जाता उसे अपनी डिविया से दो पान भेंट करते और वातचीत समाप्त कर लेने पर दो पान और भेंट करते, जो इस वात का इशारा था कि वस अब आप तशरीफ ले जाइए जेसा कि महात्मा गांधी भी वातचीत समाप्त करने पर कह देते हैं कि 'वस खलास।' इससे यह प्रकट होता है कि द्विवेदी जी व्यर्थ की वकवास और समय का नष्ट करना पसंद नहीं करते थे। उन्होंने कभी शत्रुता को उभारने की कोशिश नहीं की और न

उनका पुस्तकालय भी था, प्रवेश किया । मेरे द्वारा वहाँ श्रस्य दोनों -सज्जनों का परिचय पाकर ये विशेष प्रसन्न हुए श्रीर हम लोगों से साहित्य-संयंधी वार्ताजाप करने लगे । इसके परचात् उन्होंने हम लोगों की जलपान फराया श्रीर पान दिये । इस प्रकार लगभग दो घंटे तक हम लोग हिचेदी जी के सरसंग में श्रानंद मनाते रहे । श्रंत में हम लोगों के विदा लेने पर श्राप सहक तक हम सबका भेजने श्राये श्रीर श्रादर-सरकार की युटियों के लिए एमा मीगी ।

स्वर्गवासी द्विवेदी जी शिष्टाचार के पूरे पालक थे, श्रतएव उन्हें किसी की थोड़ों भी श्रशिष्टता सक्त नहीं होती थी। पूर्वोक्त श्रवसर पर जब द्विवेदी जी कुछ कह रहें थे तब में भूल से बीच में कुछ वह गया। इस पर उन्होंने कुछ रूखे होकर कहा कि श्रापके साथ वातचीत करना कठिन हैं! में नत-मस्तक होकर रह गया। द्विवेदी जी का स्वभाव जितना द्यालु था उतना ही उग्र भी था, मानो वे 'साँसित किर पुनि करिह पसाल'। श्रनिकारी लोगों के वार्तालाप तथा ज्यवहार से उनके मन में नजानि होती थी। वे पत्रों का उत्तर बहुधा लौटती ढाकं से देते थे श्रीर जो उनके पत्र वा उत्तर नहीं देता था उसे वे श्रसभ्य सममते थे तथा उसकी श्रवहेलना को श्रपना श्रपनान मानते थे।"

द्विवेदी जी का यह दस्तूर था कि जो कोई भी उनसे मिलने जाता उसे अपनी डिविया से दो पान भेंट करते और वातचीत समाप्त कर लेने पर दो पान और भेंट करते, जो इस वात का इशारा था कि वस अब आप तशरीक ले जाइए जेसा कि महात्मा गांधी भी वातचीत समाप्त करने पर कह देते हैं कि 'वस खलास।' इससे यह प्रकट होता है कि द्विवेदी जी व्यर्थ की वकवास और समय का नष्ट करना पसंद् नहीं करते थे। उन्होंने कभी शत्रुता की उमारने की कोशिश नहीं की और न

प्रतिदिन लिखेंगे प्रवश्य। उस समय ये रेनवं फे फर्मचारी थे श्रीर १० घते से शाम के ६ घते तरु जुटकर काम करना पड़ना था। प्रतिदिन का काम समाप्त करके ही वं चर आते थे । इसलिए कभो-कभी बहुत रात तक फाग करना पड़ता था । ऐसे दिन लिखने का काम-प्रण निमाना कठिन है। जाता था। पर इसमें शायद ही कभी व्यक्तिकम एवा हो। जिस दिन देर है। जानी थी, वे बिंदकी राट स्टेशन पर बैठकर ही एक घंटा लिए लिया करते थे और नव घर आते थे। 'सरस्वती' का काम करने हुए भी लिखने के लिए उन्हें इसी प्रकार हुड़ रहना पड़ना या। यदि वे ऐसान करने तो क्या यद संभव था कि संपादन का कार्य करके भी लगभग ४० प्रष्ट प्रतिमाम लिख डालते। इसी प्रकार यदि वे किमी के घर श्राने का वादा कर लेने थे तो उसे प्यवश्य ही निभाने थे; ल्-लपट और वर्षा की त्रीहार में उन्हें राक लेते की जमना नहीं थी। वे चाहते भी ऐसे ही लेगों को थे जा वादा करके उसे पूरा करना जानते 🥋 थे। यदि कोई वादाखिताको करता या तो उसे छुरी तरह फटकार दिया करते थे। लेग इससे फभी-कभी अपसन्न भी है। जाते थें; पर द्विवेदी जी ने कभी इनकी चिंता ही नहीं की— इस खोर भी वे सदैव हड़ ही रहे।

पंचायत

दिवेदी जी खपने गाँव की पंचीवित्त सरपंच थे। उनकी पंचायन में किसी का भी मुकदमा आ जाय परंतु वे खपनी न्यायप्रियता और स्पष्टवादिता कभी नहीं छोड़ने थे; चाहे उन्हें खपने हाथ से खपने किमी संबंधी की ही दंड देना पड़े, परंतु वे खांतकरण से ठीक ही काम करेंगे अपहले वे खानरेरी मुंसिक थे। उम समय भी उनका कार्य-क्रम ऐसा ही रहता फा० १४

प्रतिदिन लिखेंगे प्रवश्य। उम नगय वे रेलवं फे कर्मचारी थे श्रीर १० वजे से शाम के ६ वजे तक जुटकर काम करना पड़ता था। प्रतिदिन का काम समाप्त करके ही ये चर आते थे। इसलिए कभो-कभी बहुत रात तक काम करना पड़ता था। ऐसे दिन लिखने का काम-प्रण निमाना कठिन है। जाता था। पर इमने शायद ही कभी ज्यतिकम हुआ है। जिस दिन देर हो जानी थी, वे चिंदकी राट स्टेशन पर बैठकर ही एक घंटा लिए लिया करते थे श्रीर तब घर श्रात थे। 'सरस्वती' का काम करने हुए भी जिल्लने के लिए उन्हें इसी प्रकार हुड़ रहना पड़ता था। यदि वे ऐसान करने तो क्या यह संभव था कि संपादन का कार्य करके भी लगभग ४० पृष्ट प्रतिमाम लिख हालते। इसी प्रकार यदि वे फिनी के घर ध्याने का वादा कर लेने थे ता उसे प्यवस्य ही निभाने थे; ल-लपट प्रीर वर्षा की त्रीहार में उन्हें राक लेने की जमता नहीं थी। वे चाहने भी ऐसे ही लोगों को थे जा वादा करके उसे पूरा करना जानते थे। यदि कोई यादाखिताको करता या तो उसे द्वरी तरह फटकार दिया करते थे। लोग इससे फभी-कभी खपसन्न भी है। जाते थे; पर द्वियेदी जी ने कभी इनकी चिंना ही नहीं की— इस श्रोर भी वे सदैव हट् ही रहे।

पंचायत

दिवेदी जी अपने गाँव की पेनिक सरपंच थे। उनकी पंचायन में किसी का भी मुझदमा आ जाय परंतु वे अपनी न्यायप्रियता और सप्ट्यादिता कभी नहीं छोड़ने थे; चाहे उन्हें अपने हाथ से अपने किमी संबंधी की ही दंद देना पड़े, परंतु वे अंतःकरण से ठीक ही काम करेंगे. अहते वे आनरेरी मुंसिक थे। उस समय भी उनका कार्य-कम ऐसा ही रदता फा० १५

भी इसमें त्रुटि नहीं होने दी। ६०वीं वर्षगाँठ के अवसर पर जो उनका कृतज्ञताज्ञापन प्रकाशित हुआ था उससे भी उनकी विनम्रता का परिचय मिलता है। उसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—

''किसी किसी ने मेरी सरसठवीं वर्षगाँठ मनाई है। जान पड़ता है, इन सजनों के हृदय में मेरे विषय के वात्सल्पभाव की मात्रा कुछ श्रथिक है। इसी से उन्होंने मेरी उन्न एक वर्ष कम बता दी है।"

उनके इस ज्ञापन पर श्रीयुत शिवपूजनसहाय (जागरण-संपादक) ने ४ जून, १६३२ (ज्येष्ट सं० १६८६) में यह तिखा था—

"लेकिन उन सजनों का इसमें कोई दोप नहीं। थाराध्यदेव की सेवा में तरपर श्रद्धाल भक्त कभी-कभी इंतना तनमय हो जाता है कि गले की माला चरणों पर ही हाथ से छुट पड़ती है। श्रस्तु।"

'सरस्वती'-संपादन-कार्य से छुट्टी लेते समय 'संपादक की विदाई'-शोर्षक जे लेख द्विवेदी जी ने लिखा है, वह भी विनम्रता का श्रच्छा नमूना है।

सादगी

रेलवे में वावू की हैंसियत से द्विवेदी जी केट और पतल्त पहना करते थे। 'सरस्वती' का काम करने पर भी छुछ दिन तक वे यही पोशाक पहनते रहे। पर उनकी यह पोशाक देशी कपड़े की होती थी और उनकी रहन-सहन विलक्ष्ण सादी थी। वाद की उन्होंने पतल्त की भी त्याग दिया। उनके सिर पर चार-छः आने की मामूली टोपी रहती थी और वदन पर एक साधारण भी इसमें तुटि नहीं होने दी। ६८वीं वर्षगाँठ के श्रवसर पर जो उनका कृतज्ञताज्ञापन प्रकाशित हुआ था उससे भी उनकी विनम्रता का परिचय मिलता है। उसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—

''किसी किसी ने मेरी सरसठवीं वर्षगाँठ मनाई है। जान पड़ता है, इन सज्जनों के हृदय में मेरे विषय के वात्सल्यभाव की मात्रा कुछ श्राधिक है। इसी से उन्होंने मेरी उन्न एक वर्ष कम बता दी है।''

उनके इस ज्ञापन पर श्रीयुत शिवपूजनसहाय (जागरण-संपादक) ने ४ जून, १६३२ (ज्येष्ठ सं० १६⊏६) में यह तिखा था—

"लेकिन उन सज्जर्गे का इपमें कोई दोप नहीं। प्राराध्यदेव की सेवा में तरपर श्रद्धाल भक्त कभी-कभी इतना तन्मय हो जाता है कि गले की साला चरणों पर ही हाथ से छुट पड़ती है। प्रस्तु।"

'सरस्वती'-संपादन-कार्य से छुट्टी लेते समय 'संपादक की विदाई'-शोर्पक जे। लेख द्विवेट्टी जी ने लिखा है, वह भी विनम्रता का अच्छा नमूना है।

सादगी

रेलवे में वावू की हैसियत से द्विवेदी जी कीट और पतल्त पहना करते थे। 'सरस्वती' का काम करने पर भी कुछ दिन तक वे यही पोशाक पहनते रहे। पर उनकी यह पोशाक देशी कपड़े की होती थी और उनकी रहन-सहन विलक्ज सादी थी। वाद की उन्होंने पतल्त की भी त्याम दिया। उनके सिर पर चार-छ: आने की मामूली टोपी रहती थी और वदन पर एक साधारण रक्खा। उन पर तरह-तरह के कष्ट पड़े; पर वे कभी विचलित न हुए और न दूसरों के आगे अपना रोना ही रोया। वे अपनी माता जी पर अधिक भक्ति रखते थे। कालांतर में उनका स्वर्ग-वास हुआ। अपनी श्ली से उन्हें वहुत प्रेम था। थोड़ी ही अवस्था में वे भी इनको अकेला छोड़ गईं। इसी प्रकार कई अन्य संवं-धियों का भी विछोह हुआ। हृदय पर पत्थर रखकर द्विवेदी जी ने सब सहा; पर मुँह से उक नहीं की।

व्यवस्था और नियमन

सुनते हैं, वाल्टर स्काट जिस कमरे में बैठकर लिखा करते थे वह गंदी गली में था और उस कमरे में कमी सकाई नहीं होती थी। वात ठीक हो या न हो, पर इससे यह ध्वनि अवश्य निकलतीं है कि यह व्यवस्था-प्रिय न था, आलसी था। द्विवेदी जी की इस प्रकार की अव्यवस्था विलक्षल पसन्द नहीं थी। वे स्वयं सब सकाई अपने हाथ से करते थे। घर में जो चीज जहाँ रक्ली जाती है वह वहीं अपने स्थान पर रक्खी जानी चाहिए। टोपी या छड़ी रखने की जगह पर केाट या जूते नहीं रक्खें जा सकते थे। इसी प्रकार वे पुस्तकों की भी निश्चित स्थान पर ही रखते थे। यदि कोई पुस्तक अपनी जगह से हट या गायव हो जाती थी तो उन्हें तुरंत मालूम हो जाता कि कोई गड़बड़ हुआ है। वे घरवालों से पूछताछ कर तुरंत पता लगा लेते थे। पुस्तकों की संकाई तो वे बृद्धावस्था में भी रोज करते थे। पुस्तकें उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारी थीं। गाँव में पुस्तक केवल उन्हीं लोगों का देते थे जिनके वारे में यह जानते थे कि ये पुस्तक पढ़कर समक्त सकते हैं। जो व्यक्ति उनसे पुस्तक ले जाता था उसे निश्चित समय में ज्यों की त्यों वापस करनी पड़ती थी। द्विवेदी जी की सुव्यवस्था का प्रभाव

क्ला। उन पर तरह-तरह के कष्ट पड़े; पर वे कभी विचलित हुए और न दूसरों के आगे अपना रोना ही रोया। वे अपनी ता जी पर अधिक भक्ति रखते थे। कालांतर में उनका स्वर्ग-सि हुआ। अपनी स्त्री से उन्हें वहुत प्रेम था। थोड़ी ही अवस्था वे भी इनको अकेला छोड़ गईं। इसी प्रकार कई अन्य संवं-यों का भी विछोह हुआ। हृदय पर पत्थर रखकर द्विवेदी जी सव सहा; पर मुँह से उक्त नहीं की।

व्यवस्था और नियमन

सुनते हैं, वाल्टर स्काट जिस कमरे में वैठकर लिखा करते वह गंदी गली में था और उस कमरे में कभी सकाई ां होतो थी। बात ठीक हो या न हो, पर इससे यह ध्वनि [श्य निकलतीं है कि वह व्यवस्था-प्रिय न था, आलसी । द्वियेदी जी की इस प्रकार की अव्यवस्था विलक्कल पसन्द शि। वे स्वयं सव सकाई अपने हाथ से करते थे। घर तो चीज जहाँ रक्खी जाती है वह वहीं अपने स्थान पर खी जानी चाहिए। टोपी या छड़ी रखने की जगह पर केाट जूते नहीं रक्खे जा सकते थे। इसी प्रकार वे पुस्तकों की भी ्वेत स्थान पर ही रखते थे। यदि कोई पुस्तक अपनी जगह ट या गायव हो जाती थी तो उन्हें तुरंत माल्म हो जाता होई गड़बड़ हुआ है। वे घरवालों से पूछताछ कर तुरंत लगा लेते थे। पुस्तकों की संकाई तो वे वृद्धावस्था में भी करते थे। पुस्तकें उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारी थीं। में पुस्तक केवल उन्हीं लोगों का देते थे जिनके वारे में जानते थे कि ये पुस्तक पढ़कर समभ सकते हैं। जो व्यक्ति ो पुस्तक ले जाता था उसे निश्चित समय में ज्यों की त्यों त करनी पड़ती थी। द्विवेदी जो की सुव्यवस्था का प्रभाव धर्म्मपत्नी ने थाली में खाद्य पदार्थं उस सिलसिले में नहीं रक्ले थे निसमें द्विवेदी जी नित्यप्रति रखवाते थे, अतएव उनको भी स्नेह-मिश्रित मर्त्सना सुननी पड़ी।''

द्विवेदी जी की सफाई और व्यवस्था-प्रेम का पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी ने बड़ा सुन्दर चित्र निम्न शब्दों में खींचा है—

"घर के सामने पका कुथाँ, छोटी-सी फुलवाही, थ्रगल-वाल में हिंदी-पाठराला, ढाकघर, श्रितिविशाला, गोशाला, सब उसी घर से मिले हुए छोटे दायरे में थे। सामने ही मैदान में एक छोर एक पका चन्नतरा और उस पर छोटा-सा महावीर जी का मंदिर, फिर माना जी (श्राचार्य-पली) का मंदिर, फिर एक बढ़ा-सा गहरा तालाव! प्रथम दर्शन में ही उस बीहड़ देहात में यह दृश्य सचमुच एक तीर्थस्थान-सा दिखाई दिया। मैं सामने ही चन्नतरे पर चड़कर पादत्राण बाहर उतार एकदम धाचार्य के बैठके में घुस गया। धाप एक बंडी पहने हुए, बिलकुल देहाती—वज्र गवार-से—एक छोटा-सा काड़न लिये धालमारियों की ध्रपनी पुस्तकें पोंछ रहे थे। पुस्तकों में धृत चढ़ी हुई नहीं थी; पर धाचार्य का यह क्रम था कि प्रतिदिन सुबह उठकर पहले सफाई का काम करते और देखते थे। तमाम कमरा साफ, सामान साफ, जहाँ का तहाँ वाकायदा। बाहर चन्नतरा बिलकुल साफ काड़ा हुआ!

श्राचार्य छोटा-सा काइन लिये सिर सुकाये कितावें काइ रहे थे। मैं एकदम गया, श्रीर पैर छुए। श्रापने सिर ऊपर उठाया; श्रार मेरी श्रोर श्रपनी स्वाभाविक जलदगंभीर. पर मधुर स्नेह से भरी हुई ध्विन से बेल उठे—'लघमीधर!' एक-दो छुगल प्रश्न की वातें हुई श्रीर श्राचार्य फिर पुस्तकें पोंछुने में लग गये। मैं बाहर तालाव की तरफ़ जाकर जंगल की तरफ़ इधर-उधर देखने लगा। पाँच-सात मिनट वाद श्राया तब देखता क्या हूँ कि मेरे पादशाय जो कमरे के वाहर दरवाज़े धर्म्मपत्नी ने थाली में खाद्य पदार्थ उस सिलसिले में नहीं रक्ले थे जिसमें द्विवेदी जी नित्यप्रति रखवाते थे, अतएव उनको भी स्नेह-मिश्रित भत्सैना सुननी पड़ी।''

द्विवेदी जी की सफाई और व्यवस्था-प्रेम का पंडित लद्दमीधर वाजपेयी ने वड़ा सुन्दर चित्र निम्न शब्दों में खींचा है—

"घर के सामने पका कुथाँ, छोटी-सी फुलवाड़ी, श्रगल-वाल में हिंदी-पाठशाला, डाकघर, श्रतिविशाला, गोशाला, सब उसी घर से मिले हुए छोटे दायरे में थे। सामने ही मैदान में एक छोर एक पका चत्रतरा और उस पर छोटा-सा महावीर जी का मंदिर, फिर मावा जी (श्राचार्य-पत्नी) का मंदिर, फिर एक बड़ा-सा गहरा तालाव! प्रथम दर्शन में ही उस वीहड़ देहात में यह दश्य सचमुच एक तीर्थस्थान-सा दिखाई दिया। मैं सामने ही चवृतरे पर चढ़कर पादत्राण वाहर उतार एकदम श्राचार्य के बैठके में छुस गया। श्राप एक बंडी पहने हुए, बिलकुल देहाती—बज्र गवाँर-से—एक छोटा-सा माड़न लिये श्राटमारियों की श्रपनी पुस्तकें पोंछ रहे थे। पुस्तकों में धूल चढ़ी हुई नहीं थी; पर श्राचार्य का यह क्रम था कि प्रतिदिन सुबह उठकर पहले सफाई का काम करते और देखते थे। तमाम कमरा साफ, सामान साफ, जहाँ का तहाँ बाक़ायदा। बाहर चब्रतरा बिलकुल साफ़ मादा हुया!

श्राचार्य छोटा-सा भाइन लिये सिर भुकाये कितार्वे भाइ रहे थे। मैं एकदम गया, श्रीर पैर छुए। श्रापने सिर ऊपर उठाया; श्रार मेरी श्रोर श्रपनी स्वाभाविक जलदगंभीर, पर मधुर स्नेह से भरी हुई ध्विन से बेाल उठे—'लघमीधर!' एक-दो छुशल प्रश्न की वातें हुई श्रीर श्राचार्थ फिर पुस्तकें पोंछने में लग गये। मैं बाहर तालाव की उरफ़ जाकर जंगल की तरफ़ इधर-उधर देखने लगा। पाँच-सात मिनट वाद श्राया तब देखता क्या हूँ कि मेरे पादत्राण जो कमरे के बाहर दरवाज़े

से दूसरे भी प्रसन्न हो जाते थे, किसी की दुःख नहीं होता था। उनके साथ वातचीत करने में एक विशेष प्रकार का आनंद त्राता था । उनकी वातों में कुछ त्रजनोखापन त्र्यौर त्र्याकर्षण रहता था। प्रायः अपने संभापण में वे साहित्यिक पुट भी जमाते जाते थे। व्यंग्य तो उसकी जान थी श्रौर उनका व्यंग्य सारगर्भित होता था। उनसे मिलने श्रीर वातचीत करने पर शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जिस पर कुछ प्रभाव न पड़ा हो। हैंएक वार वे अपने आफिस में अपने दो-एक मित्रों के साथ वैंठे थे । डाक चाई । जे। लेख चाये उनमें कुछ लेख विलकुल रदी थे। ऐसे लेखों के सुधारने में द्विवेदी जी को वड़ा परिश्रम करना पड़ता था। ऋतः उनके एक मित्र ने टोका—श्राप ऐसे लेख स्वीकार ही क्यों करते हैं ? आपने मुस्कराकर उत्तर दिया—'द्वार पर त्रानेवाले का स्वागत करना हिन्दू-मात्र का धर्म है। शत्राज के संपादक उनके इस वाक्य से श्रपने 'सिद्धान्त-वाक्य' की तुलना करके देखें तो उन्हें द्विवेदी जी की महत्ता का कुछ अनुभव हो सकेगा।

एक वार द्विवेदी जी स्वर्गीय श्रीपद्मसिंह शर्मा की प्रेरणा से ज्वालापुर गये। आने के पहले आपने तार दिया— "में आ रहा हूँ। सवारी का प्रवंध करना। पन्द्रह वजे (तीन वजे) दिन की पहुँचूँगा (Reaching Jubbulpore manage conveyance litteen hours) तारवावू ने भूल से hour की जगह horse लिख दिया, जिसका अर्थ यह निकाला गया कि १४ घोड़े की गाड़ी का प्रवंध करो। लोग वड़े परेशान हुए। जब द्विवेदी जी ज्वालापुर पहुँचे और उन्हें वह तार दिखाया गया तव उन्होंने जाकर तारवावू से विनोदपूर्वक कहा—"वाह वावू जी! वाह! खूब किया।" वेचारा तारवावू खिसिया गया। इसी प्रकार जब द्विवेदी-मेले के अवसर पर

से दूसरे भी प्रसन्न हो जाते थे, किसी को दुःख नहीं होता था। उनके साथ वातचीत करने में एक विशेप प्रकार का आनंद त्राता था। उनकी वातों में कुछ त्रजनोखापन त्रौर त्राकर्षण रहता था। प्रायः अपने संभापण में वे साहित्यिक पुट भी जमाते जाते थे। व्यंग्य तो उसकी जान थी श्रीर उनका व्यंग्य सार्गर्भित होता था। उनसे मिलने और वातचीत करने पर शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जिस पर कुछ प्रभाव न पड़ा हो । इंएक बार वे अपने आफिस में अपने दो-एक मित्रों के साथ वैठे थे। डाक त्राई। जेा लेख त्र्याये उनमें कुछ लेख विलकुल रदी थे। ऐसे लेखों के सुधारने में द्विवेदी जी की वड़ा परिश्रम करना पड़ता था। त्रातः उनके एक मित्र ने टोका—त्राप ऐसे लेख स्वीकार ही क्यों करते हैं ? आपने मुस्कराकर उत्तर दिया—'द्वार पर त्रानेवाले का स्वागत करना हिन्दू-मात्र का धर्म है। श्राज के संपादक उनके इस वाक्य से अपने 'सिद्धान्त-वाक्य' की तुलना करके देखें तो उन्हें द्विवेदी जी की महत्ता का कुछ अनुभव हो सकेगा ।

एक वार द्विवेदी जी स्वर्गीय श्रीपद्मसिंह शर्मा की प्रेरणा से ज्वालापुर गये। आने के पहले आपने तार दिया— "में आ रहा हूँ। सवारी का प्रवंध करना। पन्द्रह वजे (तीन वजे) दिन को पहुँचूँगा (Reaching Jubbulpore manage conveyance fitteen hours) तारवावू ने भूल से hour की जगह horse लिख दिया, जिसका अर्थ यह निकाला गया कि १४ घोड़े की गाड़ी का प्रवंध करो। लोग वड़े परेशान हुए। जब द्विवेदी जी ज्वालापुर पहुँचे और उन्हें वह तार दिखाया गया तव उन्होंने जाकर तारवावू से विनोदपूर्वक कहा—"वाह वावू जी! वाह! खूव किया।" वेचारा तारवावू खिसिया गया। इसी प्रकार जब द्विवेदी-मेले के अवसर पर

करते थे। द्विवेदी जी पत्र लिखने वैठते थे तव वाहर से केाई वच्चा पूछता था—

"वावा, का लिखत है ?"

''मुनिया का चिट्ठी लिखत है।"

"मुत्री—कमलाकिशोर जी की वेटी—का जानत है।"—चिट्टी लिखते-लिखते द्विवेदी जी फिर वचे को छेड़ते थे।

"हाँ।"

''मुन्नी कहाँ रहति है ?"

"्इलाहाबाद।"

"हाँ, जानत हो।"

श्रीर वच्चा उछलता कूदता श्रपने ज्ञान पर गर्व करता चला जाता था।

द्विवेदी जी अपनी धर्म-पत्नी से भी बहुत संतुष्ट थे। पूज्य माता जी में गुण भी ऐसे ही थे। रेल की २००) की नौकरी छोड़कर जब द्विवेदी जी आये तब भी सुना जाता है, उन्होंने किसी प्रकार का असंतोप न प्रकट किया; बरन सुख और संतोप के साथ यही कहा—अगर तुम मेहनत-मजदूरी करके आठ आने भी कमा लाओगे तो में उसी में संतोप कर लूँगा। इन्हें द्विवेदी जी बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपनी धर्म-पत्नी की मृत्यु के समय द्विवेदी जी की अवस्था अधिक नहीं थी, कान्यकुट जों में एक स्त्री के होते हुए भी दूसरा विवाह कर लेने का चलन रहा है और जब पहली स्त्री को कोई भयानक रोग हो और उनके संतान भी न होती हो तब तो दूसरा विवाह कर लेना कोई अनहोनी वात नहीं थी।

करते थे। द्विवेदी जी पत्र लिखने वैठते थे तव वाहर से कोई वच्चा पूछता था-

"वावा, का लिखत है ?"

"मुनिया का चिट्टी लिखत है।"

"मुन्नी—कमलाकिशोर जी की वेटी—का जानत है।"—चिट्टी लिखते-लिखते द्विवेदी जी फिर वचे को छेड़ते थे।

"हाँ।"

"मुन्नी कहाँ रहित है ?"

"इलाहाबाद।"

"हाँ, जानत हो।"

श्रीर वच्चा उछलता-कूदता श्रपने ज्ञान पर गर्व करता चला जाता था।

द्विवेदी जी अपनी धर्म-पत्नी से भी बहुत संतुष्ट थे। पूज्य माता जी में गुण भी ऐसे ही थे। रेल की २००) की नौकरी छोड़कर जब द्विवेदी जी आये तब भी सुना जाता है, उन्होंने किसी प्रकार का असंतोप न प्रकट किया; बरन सुख और संतोप के साथ यही कहा—अगर तुम मेहनत-मजदूरी करके आठ आने भी कमा लाओगे तो मैं उसी में संतोप कर लूँगी। इन्हें द्विवेदी जी बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपनी धर्म-पत्नी की मृत्यु के समय द्विवेदी जी की अवस्था अधिक नहीं थी, कान्यकुठ में में एक खी के होते हुए भी दूसरा विवाह कर लेने का चलन रहा है और जब पहली खी को कोई भयानक रोग हो और उनके संतान भी न होती हो तब तो दूसरा विवाह कर लेना कोई अनहोनी वात नहीं थी।

वात यह थी कि आचार्य-पत्नों के घर में उनके पड़ोस की उनकी एक सहेली वैठती-उठती थीं। दोनों में वड़ा प्रेम था। सहेली ने माता जी से कहा कि महावीर जी की पुरानी मूर्ति दरवाजे पर वुजुर्गी की स्थापित पड़ी है, इसके लिए एक पका चवृतरा वन जाता तो अच्छा था। माता जी ने उस सहेली की सलाह से चवृतरा वनवा दिया और महावीर जी के लिए वहीं एक मठिया भी। इसी पर आज उन्होंने हँसी में अपने पतिदेव से अचानक कह दिया! उनके। क्या मालूम या कि यह महावीर उनके। कितना पूजते हैं! महावीर के ऊपर भी दीवार में द्विवेदी जी के रचे हुए खोक खचित हैं, जितमें माता जी अऔर उनकी सहेली की प्रशस्ति है।

हिने दी जी अपनी माता जी पर भी वड़ी भक्ति रखते थे। यह बात हमें श्रीपरमानंद चतुर्वेदी नामक एक सज्जन के द्विवेदी जी के। लिखे हुए एक पत्र से माल्म हुई है। पत्र ११ मार्च १६००० के। लिखा गया था। पत्र इस प्रकार है—

''द्विवेदी जी महाराज,

नमस्कार—आज भट्ट गिरिधरलाल जी सुक्त सिलने आये थे। उन्होंने आपके अनमेर जाने का ज़िक किया था और उनकी वातों से यह भी पाया गया कि आपकी अपनी माता जी की तरफ़ अधिक भक्ति है।

ें १९ मार्च, १६०८ 🛒 परमानंद चतुर्वेदी।"

गुण-ग्राहकता

द्वियेदी जी में एक त्रौर गुगा था। यह था उनकी गुण-त्राहकता। संपादक हो जाने पर कुछ लोग "हमचुनी दीगरे चात यह थी कि आचार्य-पत्नी के घर में उनके पड़ोस की उनकी एक सहेली चेठती-उठती थीं। दोनों में चड़ा प्रेम था। सहेली ने माता जी से कहा कि महावीर जी की पुरानी मूर्ति दरवाजे पर चुजुर्गों की स्थापित पड़ी है, इसके लिए एक पका चवूतरा चन जाता तो अच्छा था। माता जी ने उस सहेली की सलाह से चवूतरा चनवा दिया और महावीर जी के लिए वहीं एक मठिया भी। इसी पर आज उन्होंने हँसी में अपने पितदेव से अचानक कह दिया! उनको क्या मालूम था कि यह महावीर उनको कितना पृजते हैं! महावीर के ऊपर भी दीवार में द्विवेदी जी के रचे हुए रलोक खचित हैं, जितमें माता जी ओर उनकी सहेली की प्रशस्ति है।

हिने दी जी अपनी माता जी पर भी वड़ी भक्ति रखते थे। यह बात हमें श्रीपरमानंद चतुर्वेदी नामक एक सज्जन के द्विवेदी जी के। लिखे हुए एक पत्र से मोल्स हुई है। पत्र ११ मार्च १६०८ के। लिखा गया था। पत्र इस प्रकार है—

"हिवेदी जी महाराज,

नमस्कार—धान भट्ट गिरिधरलाल जी मुक्त सिन्नने धायेथे। उन्होंने खापके खनमेर जाने का ज़िक्र किया था धौर उनकी वातों से यह भी पाया गया कि धापकी धपनी माता जी की तरक धिक भक्ति है।

१९ मार्च, १६०८ परमानंद चतुर्वेदी।"

गुण-म्राहकता द्विवेदी जी में एक और गुण था। यह था उनकी गुण-म्राहकता। संपादक हो जाने पर कुन्ह लोग "हमचुनी दीगरे हाती थाँ, उनका पारचय, बड़ी विशदता से, 'सरस्वती' में प्रका-शित किया जाता था और अनेक साधुवाद-धन्यवाद देकर लेखक का आदर किया जाता था। नये विषयों की कई पुस्तकों की आलोचना 'सरस्वती' में निकली थी; पर प्रचलित विषयों की खोज करके लिखनेवाले अधिक नहीं थे। मेरा आशय हिंदी-वालों से हैं। हिंदी-भाषा-भाषी, लाख अनुनय-विनय करने पर भी इस ओर ध्यान न देते थे। हाँ, मराठी, वँगला के लेखक अवश्य प्रयत्नशील थे। द्विवेदी जी उनसे ही आशा रखते थे और बड़ी श्रद्धा से उनका नाम लिया करते थे। सुप्रसिद्ध मराठी-लेखक और अंथकार रायवहादुर चिंतामिण विनायक वैद्य, एम० ए०, एल-एल० वी० के मराठी में लिखे हुए अवलोन्नति-लेख-माला के लेखों से प्रभावित होकर द्विवेदी जी ने लिखा था—

''उन्हें (श्रवलोजित लेखमाला के लेख) पड़कर हमारे हृदय में लेखक महाशय के विषय में श्रद्धा का शंकुर उग श्राया। उनके श्रन्थान्य ग्रंथ श्रोर लेख पढ़ते पढ़ते वह श्रंकुर बढ़कर विशाल वृत्त हो गया। महाभारत-विषयक उनका ग्रंथ पढ़कर हमने बहुत श्रिषक लाभ उठाया। इस ग्रंथ में वैद्य महाशय ने महाभारत से संबंध रखनेवाले ग्रायः सभी विषयों का जिस योग्यता से विचार किया है श्रोर उनकी तुलनामूलक श्रालोचना करने में उन्होंने जिस बुद्धि-दान्तिषय श्रोर सदसाहवेचना का परिचय दिया है, उसकी वार-बार प्रशंसा करने को जी चाहता है।"

हिंदी-हितैपियों और सेवकों के विषय में उनका यह आदर-भाव और भी वढ़ा-चढ़ा था। यह स्वाभाविक था और उनकी प्रशंसा में लिखे हुए विचार उनके हृदय से निकले हुए होते थे। इसका एक उदाहरण आज से ३५ वर्ष पहले का है। 'सरस्वती' के संपादक होने के पहले ही वाबू श्यामसुन्दरदास की हिंदी- होती थीं, उनका परिचय, बड़ी विशदता से, 'सरस्वती' में प्रका-शित किया जाता था और अनेक साधुवाद-धन्यवाद देकर लेखक का आदर किया जाता था। नये विषयों की कई पुस्तकों की आलोचना 'सरस्वती' में निकली थी; पर प्रचलित विषयों की खोज करके लिखनेवाले अधिक नहीं थे। मेरा आशय हिंदी-चालों से हैं। हिंदी-भाषा-भाषी, लाख अनुनय-विनय करने पर भी इस ओर ध्यान न देते थे। हाँ, मराठी, वँगला के लेखक अवश्य प्रयत्नशील थे। द्विवेदी जी उनसे ही आशा रखते थे और बड़ी श्रद्धा से उनका नाम लिया करते थे। सुप्रसिद्ध मराठी-लेखक और प्रथकार रायवहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य, एम० ए०, एल-एल० वी० के मराठी में लिखे हुए अवलोन्नति-लेख-माला के लेखों से प्रभावित होकर द्विवेदी जी ने लिखा था—

"उन्हें (श्रवलोचित-लेखमाला के लेख) पहकर हमारे हृद्य में लेखक महाशय के विषय में श्रद्धा का श्रंकुर उग श्राया। उनके श्रन्थान्य ग्रंथ श्रीर लेख पढ़ते-पढ़ते वह श्रंकुर बढ़कर विशाल बृच हो गया। महाभारत-विषयक उनका ग्रंथ पढ़कर हमने बहुत श्रिषक लाभ उठाया। इस ग्रंथ में वैद्य महाशय ने महाभारत से संबंध रखनेवाले प्रायः सभी विषयों का जिस योग्यता से विचार किया है श्रीर उनकी तुलनामूलक श्रालोचना करने में उन्होंने जिस बुद्धि-दान्तिण्य श्रीर सद्साहृवेचना का परिचय दिया है, उसकी वार-बार प्रशंसा करने की जी चाहता है।"

हिंदी-हितैपियों और सेवकों के विषय में उनका यह आदर-भाव और भी वढ़ा-चढ़ा था। यह स्वाभाविक था और उनकी प्रशंसा में लिखे हुए विचार उनके हृद्य से निकले हुए होते थे। इसका एक उदाहरण आज से ३५ वर्ष पहले का है। 'सरस्वती' के संपादक होने के पहले ही वावू स्वामसुन्दरदास की हिंदी- जन्म देकर इस विषय में पथ-पदर्शक न बनती तो शायद बहुत दिनों तक वैसी पत्रिकाओं के दर्शन के होते। मेरी मंद बुद्धि तो यही कहती है कि नागरी-लिपि के प्रचार और हिंदी-भाषा के साहित्य के उद्धार के लिए इस सभा ने जिलेगा काम किया है, उतना काम न तो किसी अन्य संस्था ने ही किया और तु अने क साहित्य-सेवियों ने सम्मिलित रूप से ही किया। इसके उद्योग से बना हुआ हिंदी-भाषा का कोप श्रीर न्याकरण बड़े ही महरवपूर्ण ग्रंथ हैं। यदि यह इंस श्रीर दत्तवित्त न होती तो शायद हिंदी-साहित्य के ये दोनों श्रंग अपनी उन्नतावस्था में घव तक देखने ही का न मिलते।"

ये वाक्य उसी सभा की प्रशंसी 'में' लिखे गये हैं जिसके कार्यों की कदु त्र्यालोचना उन्होंने १६०५ में की थी। उस समय समा की स्थिति भी कुछ वैसी ही थी; परंतु इस बार स्वयं द्विवेदी जी ने आगे चल कर कहा है-

"ग्राप बनावट न समिभए, मैं शुद्ध हृदय से इस बात की स्वीकार करता हूँ कि मैं इस सभा का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इसे तो मैं अपनी गुरुत्यानीय ही नहीं, अनदात्री तक सममने की तैयार हूँ। यदि इस सभा .के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता इण्डियन प्रेस से 'सरस्वती' का प्रकाशन न कराते तो मैं हिंदी लिखने श्रीर उसके साहित्य की थोड़ी-बहुत चेष्टा करने में कदापि समर्थ न होता। यह इस सभा का ही बभाव, प्रसाद या प्रताप है, जो मैं आज एक विशेष निमित्त की पूर्ति के लिए काशी में उपस्थित हुआ हूँ। """

ये हैं गुण-प्राहक द्विवेदी जी के सचे हृदयोद्गार । इन वाक्यों पर गौर करने से यह भी पता चल जायगा कि सभापति के त्रासन से शिष्टाचार और सज्जनता की रत्ता के लिए ही ये प्रशंसात्मक वाक्य नहीं लिखे गये हैं।

जन्म देकर इस विषय में पथ-प्रदर्शक न बनती तो शायद बहुत दिनों तक वैसी पित्रकाओं के दर्शन न होते। "मेरी मंद बुद्धि तो यही कहती है कि नागरी-लिपि के प्रचार और हिंदी-भाषा के साहित्य के उद्धार के लिए इस सभा ने जितना काम किया है, उतना काम न तो किसी अन्य संस्था ने ही किया और ज अनेक साहित्य सेवियों ने सम्मिलित रूप से ही किया। इसके उद्योग से बना हुआ हिंदी-भाषा का कोप और ब्याकरण बड़े ही महत्त्वपूर्ण अंथ हैं। यदि यह इस ओर दत्तचित्त न होती तो शायद हिंदी-साहित्य के ये दोनों अंग अपनी उन्नतावस्था में अब तक देखने ही की न मिलते।"

ये वाक्य उसी सभा की प्रशंसा की लिखे गये हैं जिसके कार्यों की कटु आलोचना उन्होंने १६०५ में की थी। उस समय सभा की स्थिति भी कुछ वैसी ही थी; परंतु इस वार स्वयं द्विवेदी जी ने आगे चल कर कहा है—

"श्राप बनावट न समित्। में शुद्ध हृदय से इस बात के। स्वीकार करता हूँ िक में इस सभा का श्रत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इसे तो में श्रपनी गुरुस्थानीय हो नहीं, श्रवदात्री तक सममने की तैयार हूँ। यदि इस सभा के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता इण्डियन प्रेस से 'सरस्वती' का प्रकाशन न कराते तो मैं हिंदी लिखने श्रीर उसके साहित्य की थोड़ी-चहुत चेष्टा करने में कदापि समर्थ न होता। यह इस सभा का ही प्रभाव, प्रसाद या प्रताप है, जो मैं श्राज एक विशेष निमित्त की पूर्ति के लिए काशी में उपस्थित हुशा हूँ।"

ये हैं गुगा-प्राहक द्विवेदी जी के सबे हृद्योद्गार। इन वाक्यों पर ग़ौर करने से यह भी पता चल जायगा कि सभापित के आसन से शिष्टाचार और सज्जनता की रचा के लिए ही ये प्रशंसात्मक वाक्य नहीं लिखे गये हैं।

्हदमेव हि पाणिडत्यसियमेव विदग्धता। श्रयमेव परो धर्मो यदायाद्याधिको व्ययः॥

अर्थात्—जो प्राप्ति से अधिक व्यय नहीं होने देता वही पंडित है, वही चतुर है श्रीर वही धर्मात्मा भी है। मितन्ययिता का गुरण होते हुए भी वे अपने संवंधियों तथा और लोगों को यथावसर त्रार्थिक सहायता देते रहे। ऋँगरेजी में एक कहावत है—Liberality does not consist in giving much but in giving at the right moment. अर्थोत् बहुत देने से ही उदारता नहीं होती, विल्क श्रावश्यकता के समय पर देने से दानशीलता समभी जाती है। द्विवेदी जी की उदारता भी ठीक इसी प्रकार की थी। अपने गाँव में, लड़िकयों की शादी में, गरीव व छोटी जाति के मनुष्यों की दीनावस्था में, और विधवा स्त्रियों के संकट-समय में, वे सदा सहायता देते रहे। दूसरी खोर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को अपना प्राणों से भी प्रिय प्रंथ-भंडार दान दे दिया। उसमें 'सरस्वती' की पुरानी कापी, शुरू से आज तक का समस्त पत्र-व्यवहार और अख्वारों क़ी कतरनों के वंडल हैं। यंथों से आठ अलमारियाँ भरी हैं श्रीर वंडलों से दो। इन सब वंडलों की छान-वीन करने के लिए नियमित रूप से ६ महीने की आवश्यकता है।

श्रात्माभिमान

जो नवयुवक साहित्य-सेवी स्वाभिमान और आत्मसम्मान के साथ जिंदगी वसर करना चाहते हों वे द्विवेदी जी से इस विषय में भी अनेक वातें सीख सकते हैं। यह वात वहन-से पाठकों को न माल्प्म होगी कि द्विवेदी जी ने २००) की नौकरी छोड़कर २३) की नौकरी की थी। रेलवे ट्रेफिक-विभाग में वे

्ड्दमेव हि पाणिडत्यिमयमेव विदग्धता। अयमेव परो धर्मो यदायादाधिको न्ययः॥

अर्थात्—जो प्राप्ति से अधिक व्यय नहीं होने देता वही पंडित है, वही चतुर है श्रोर वही धर्मात्मा भी है। मितव्ययिता का गुरण होते हुए भी वे अपने संबंधियों तथा और लोगों को यथावसर त्रार्थिक सहायता देते रहे। ऋँगरेजी में एक कहावत है—Liberality does not consist in giving much but in giving at the right moment. अर्थोत् बहुत देने से ही उदारता नहीं होती, विलक आवश्यकता के समय पर देने से दानशीलता समभी जाती है। द्विवेदी जी की उदारता भी ठीक इसी प्रकार की थी। अपने गाँव में, लड़कियों की शादी में, गुरीव व छोटी जाति के मनुष्यों की दीनावस्था में, ऋौर विधवा स्त्रियों के संकट-समय में, वे सदा सहायता देते रहे। दूसरी ख्रोर काशी-नागरी-प्रचारिग्णी सभा को अपना प्राणों से भी प्रिय यंथ-भंडार दान दे दिया । उसमें 'सरस्वती' की पुरानी कापी, शुरू से आज तक का समस्त पत्र-व्यवहार और अख्वारों क़ी कतरनों के वंडल हैं। यंथों से त्राट त्रलमारियाँ भरी हैं त्र्योर वंडलों से दो। इन सव वंडलों की छान-वीन करने के लिए नियमित रूप से ६ महीने की आवश्यकता है।

श्रात्माभिमान

जो नवयुवक साहित्य-सेवी स्वाभिमान और आत्मसम्मान के साथ जिंदगी वसर करना चाहते हों वे द्विवेदी जी से इस विषय में भी अनेक वातें सीख सकते हैं। यह वात चहुन-से पाठकों को न मालूम होगी कि द्विवेदी जी ने २००) की नौकरी छोड़कर २३) की नौकरी की थी। रेलवे ट्रेंफिक-विभाग में वे

gentleman and I must warn you against your having recourse to such language in future; should you have occasion to write to me again."

इसी प्रकार एक दूसरे महाशय के लेख की अपमान-सूचक सममकर इन्होंने मानहानि का दावा दायर करने का नोटिस दिया था। इसकी कथा इस प्रकार है—

सितंबर सन् १६०८ की 'सरस्वती' के पृष्ठ ४१४ पर 'ऋार्य शब्द की ब्युत्पत्ति'-शीर्पक एक लेख छपा था। वह बँगला 'प्रवासी' में प्रकाशित श्री महेशचन्द्र घोप के एक लेख के आधार पर लिखा गया था। उसी लेख के संबंध में १६ नवम्बर, १६०८ के 'आर्य-मित्र' में परिडत नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने एक आलोचनात्मक लेख लिखा था; किंतु इसके पहले ही २४ सितम्बर और १ अक्टूबर १६०८ के 'आर्य-मित्र' में क्रमशः एक लेख छपा था। उस लेख का शीर्पक था, 'सरस्वती में आर्य'। उसके लेखक थे कोई मथुरा-निवासी वी० एन्० शर्मा। वह लेख व्यक्तिगत आचेपों से भरा हुआ था। उसी पर द्विवेदी जी ने वीस हजार का मानहानि का दावा करने का नोटिस दिया था। वह नोटिस २४ अक्टूबर १६०५ के 'त्रार्य-िमत्र' में संपादकीय मंतव्य के साथ छपा था। हिंदी के यशस्त्री कवि स्त्रीर कानपुर के प्रतिष्ठित वकील राय देनीप्रसाद 'पूर्ण' ने द्विवेदी जी की श्रीर से नोटिस दिया था। फलस्वरूप उक्त बी० एन्० शर्मा ने २४ सितम्बर १६०६ के 'आर्य-मित्र' में अपना चमापत्र प्रकाशित किया। उस चमापार्थना के नीचे 'आर्य-िमत्र' के प्रिंटर (वावूराम शर्मा, भूतपूर्व सम्पादक) और पिन्तिशर (कपूरचंद) का दुःख प्रकाश वड़े-वड़े अन्तरों में छपा था। इस न्नमाप्रार्थना, के संबंध में २७ फरवरी १६१० के gentleman and I must warn you against your having recourse to such language in future, should you have occasion to write to me again."

इसी प्रकार एक दूसरे महाशय के लेख की अपमान-सूचक सममकर इन्होंने मानहानि का दावा दायर करने का नोटिस दिया था। इसकी कथा इस प्रकार है—

सितंबर सन् १६०= की 'सरस्वती' के पृष्ठ ४१४ पर 'श्रार्य शब्द की ब्युत्पत्ति'-शीर्पक एक लेख छपा था। वह वँगला 'प्रवासी' में प्रकाशित श्री महेशचन्द्र घोप के एक लेख के श्राधार पर लिखा गया था। उसी लेख के संबंध में १६ नवम्बर, १६०८ के 'आर्य-मित्र' में पण्डित नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने एक आलोचनात्मक लेख लिखा था; किंतु इसके पहले ही २४ सितम्बर और १ अक्टूबर १६०८ के 'आर्य-मित्र' में क्रमशः एक लेख छपा था। उस लेख का शीर्पक था, 'सरस्वती में त्रार्य'। उसके लेखक थे कोई मथुरा-निवासी वी० एन्० शर्मा। वह लेख व्यक्तिगत आन्तेषों से भरा हुआ था। उसी पर द्विवेदी जी ने वीस हजार का मानहानि का दावा करने का नोटिस दिया था। वह नोटिस २४ ऋक्टूबर १६०५ के 'त्रार्य-मित्र' में संपादकीय मंतव्य के साथ छपा था। हिंदी के यशस्त्री कवि श्रौर कानपुर के प्रतिष्ठित वकील राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने द्विवेदी जी की छोर से नोटिस दिया था। फलस्वरूप उक्त बी० एन्० शर्मा ने २४ सितम्बर १६०६ के 'त्रार्य-मित्र' में **त्र्यपना ज्ञमापत्र प्रकाशित किया। उस ज्ञमाप्रार्थना के नीचे** 'आर्य-मित्र' के प्रिंटर (बाबूराम शर्मा, भूतपूर्व सम्पादक) और पिन्तरार (कपूरचंद) का दुःख प्रकाश वड़े-वड़े अत्तरों में छपा था। इस त्रमाप्रार्थना के संबंध में २७ फरवरी १६१० के

रही और उसो ने हिंदी-साहित्य-संसार में उनका एकच्छत्र राज्य स्थापित कर दिया। सत्य, स्पष्टता ख्रीर निर्भीकता का निरंतर अनुसरण करने के कारण ही आज हिंदी-साहित्य-त्तेत्र में उनका यशःसौरभ फैल रहा है। वास्तव में जीवन की सचाई ही सदैव उनका ध्येय रही है ऋौर सांसारिक शिष्टाचार तथा कृत्रिमता से दूर रहने की वे सदा चेष्टा करते रहे हैं। किसी से दबकर वे कमी वात ही नहीं करते थे। कारण, स्वार्थवश होकर या अन्य किसी लाभ की आशा से वे कभी कोई ऐसा काम ही नहीं करते थे कि उन्हें दूसरों से दवना पड़े। यों वे वाद-विवाद से भी दूर ही रहना पसन्द करते रहे, परन्तु जव-जव वे विवश किये गये—बाद-विवाद में पड़ने के लिए लल-कारे गये, तब उन्होंने पेर पीछे नहीं रक्खा। उनकी इस निर्भीकता तथा स्वाभिमान का पता हमें वावू वालमुकुन्द गुप्त, वावू श्यामसुन्दरदास, मिश्रवन्धु, ला० भगवानदीन त्र्यादि सं होनेवाले साहित्यिक वाद-विवादों से लगता है। अपने मित्रों के प्रति भी उनका व्यवहार निष्कपट रहा है। मन में जो रहता था, वही वे मुख से भी कहते थे। कृत्रिमता से उन्हें घृणा थी। इससे लोग प्रायः श्रसंतुष्ट हो जाते थे, उनको घमंडी कहा करते थे। द्विवेदी जी ने ऐसे व्यक्तियों की कभी परवा ही नहीं की। जिस वात के। वे जैसा समभते थे, फौरन कह डालते थे। मई १६०४ की 'सरस्वती' में उन्होंने राजा रामपालसिंह का जीवनचरित प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने धनी-मानी पुरुषों पर च्याचेप करते हुए ऋपनी स्पष्टबादिता का परिचय दिया था। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा था-

"हम देखते हैं कि हिंदी-भाषा-भाषी अनेक चढ़े-चढ़े राजा और धनी लोग इस देश में हैं, परंतु देशहित और स्वभावीत्कर्ष के निमित्त

रही और उसी ने हिंदी-साहित्य-संसार में उनका एकच्छत्र राज्य स्थापित कर दिया। सत्य, स्पष्टता ख्रौर निर्भीकता का निरंतर अनुसरण करने के कारण ही आज हिंदी-साहित्य-चेत्र में उनका यशःसौरभ फैल रहा है। वास्तव में जीवन की सचाई ही सदैव उनका ध्येय रही है श्रीर सांसारिक शिष्टाचार तथा कृत्रिमता से दूर रहने की वे सदा चेष्टा करते रहे हैं। किसी से दवकर वे कभी वात ही नहीं करते थे। कारण, स्वार्थवश होकर या अन्य किसी लाभ की आशा से वे कभी कोई ऐसा काम ही नहीं करते थे कि उन्हें दूसरों से द्वना पड़े। यों वे वाद-विवाद से भी दूर ही रहना पसन्द करते रहे, परन्तु जब-जब वे विवश किये गये-- बाद-विवाद में पड़ने के लिए लल-कारे गये, तब उन्होंने पैर पीछे नहीं रक्खा। उनकी इस निर्भीकता तथा स्वाभिमान का पता हमें वावू वालमुकुन्द गुप्त, वावू श्यामसुन्दरदास, मिश्रवन्ध्र, ला० भगवानदीन श्रादि से होनेवाले साहित्यिक वाद-विवादों से लगता है। अपने मित्रों के प्रति भी उनका व्यवहार निष्कपट रहा है। मन में जो रहता था, वही वे मुख से भी कहते थे। कृत्रिमता से उन्हें घृणा थी। इससे लोग प्रायः असंतुष्ट हो जाते थे, उनको घमंडी कहा करते थे। द्विवेदी जी ने ऐसे व्यक्तियों की कभी परवा ही नहीं की। जिस वात की वे जैसा सममते थे, फौरन कह डालते थे। मई १६०४ की 'सरस्वती' में उन्होंने राजा रामपालसिंह का जीवनचरित प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने धनी-मानी पुरुषों पर त्राचेप करते हुए ऋपनी स्पष्टबादिता का परिचय दिया था। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा था-

"हम देखते हैं कि हिंदी-भाषा-भाषी अनेक चढ़े-चढ़े राजा श्रीर धनी लोग इस देश में हैं, परंतु देशहित श्रीर स्वभावीत्कर्ष के निमित्त समुचित प्रकाश पड़ता है। द्विवेदी जी ने इस नोट का शीर्पक दिया था—'आर्यसमाज का कोप।' इसे उन्होंने यों शुरू किया था—

"आर्य-अन्यकारों से सविनय निवेदन है कि वे अपनी लिखी पुस्तकों के। 'सरस्वती'-संपादक पंडित महावीरप्रसाद हिवेदी के पास समालोचनार्थ कदापि न भेगा करें। पचपात के विना न्यायपूर्वक पुस्तक के गुग्र-दोप-वर्णन करना प्रत्येक समालोचक का प्रधान कर्तव्य होना चाहिए। परंतु खेद है कि हिवेदी की इस बात के। कभी-कभी बिलकुल भूल जाते हैं। आर्यसमाज के ऊपर तो उनके क्रोध की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। अभी हाल में आपने एक पुस्तक की समालोचना करते हुए श्रीस्वामी द्यानंद सरस्वती के गुरु महर्षि विरजानंद जी प्रज्ञाचन्त्र के अपर गंदे शब्दों की बौद्धार करके अपनी महावीरता का प्रचंड परिचय दे डाला है। ऐसी दशा में हमारी सम्मति है कि कोई आर्य-प्रंथकार अपनी पुस्तकों को वहाँ न भेजें।"

श्रार्थ-प्रतिनिधि-सभा.) संयुक्तपांत, खुलंदशहर } ता० ६—१०—१४ —विनीत मदनमोहन सेठ, एम० ए०, एत-एत० बी०, मंत्री सभा

इस विज्ञप्ति को प्रकाशित करके उन्होंने दो नोट दिये। वे इस प्रकार हैं—

- (१) मंत्री महाशय ने सरस्वती पर यह अपराध लगाया है कि उसमें पुस्तकों की समालोचना पत्तपात-रहित नहीं होती। मंत्री जी हमें जमा करें, उनका यह धारोप सर्वया निर्मूल ध्रतएव मिथ्या है।
- (२) जो बात आज तक किसी को न स्की थी, वह आर्य-प्रतिनिधि-सभा के मंत्री को स्की है। हिंदू-धर्म पर आधात पर

समुचित प्रकाश पड़ता है। द्विवेदी जी ने इस नोट का शीर्षक दिया था—'आर्यसमाज का कोप।' इसे उन्होंने यों शुरू किया था—

'श्रार्य-त्रन्थकारों से सिवनय निवेदन है कि वे अपनी लिखी प्रस्तकों को 'सरस्वती'-संपादक पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के पास समालोचनार्थ कदापि न भेजा करें। पचपात के विना न्यायपूर्वक प्रस्तक के गुण-दोप-वर्णन करना प्रत्येक समालोचक का प्रधान कर्तव्य होना चाहिए। परंतु खेद है कि द्विवेदी जी इस बात का कभी-कभी बिलकुल भूल जाते हैं। आर्यसमाज के ऊपर तो उनके क्रोध की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। अभी हाल में आपने एक पुस्तक की समालोचना करते हुए श्रीस्वामी दयानंद सरस्वती के गुरु महर्षि विरज्ञानंद जी प्रज्ञाचन्न के उपर गंदे शब्दों की बौद्धार करके अपनी महावीरता का प्रचंड परिचय दे डाला है। ऐसी दशा में हमारी सम्मति है कि कोई आर्य-ग्रंथकार अपनी पुस्तकों को वहाँ न भेजें।''

श्रार्थ-प्रतिनिधि-सभा.) संयुक्तपांत, बुलंदशहर } ता० ६—१०—१४ —विनीत मदनमोहन सेठ, एम० ए०, एत-एत० वी०, मंत्री समा

इस विज्ञप्ति की प्रकाशित करके उन्होंने दो नोट दिये। वे इस प्रकार हैं---

- (१) मंत्री महाशय ने सरस्वती पर यह अपराध लगाया है कि उसमें पुस्तकों की समालोचना पचपात-रहित नहीं होती। मंत्री जी हमें चमा करें, उनका यह आरोप सर्वया निर्मूल अतप्व मिध्या है।
 - (२) जो बात आज तक किसी को न स्मी थी, वह आर्य-प्रतिनिधि-सभा के मंत्री को स्मी है। हिंदू-धर्म पर आवात पर

नाम देकर बी० सिंह नाम के एक महाशय ने आगरे से एक प्रोस्टकार्ड उर्दू में उनके पास भेजा। उसमें अनेक दुर्वचनों और अभिशापों के अनन्तर इस बात पर दुःख प्रकट किया गया था कि राज्य अँगरेजी हैं, अन्यथा तुम्हारा (द्विवेदी जी का) सिर धड़ से अलग कर दिया जाता। एक दूसरे ने उन्हें लिखा कि— ''आंपकी सेवा में आर्य-विद्यार्थी-सभा, अजमेर, के निम्नलिखित प्रस्ताव की प्रतिलिपि सूचनार्थ भेजी जाती है--

प्रस्ताव

यह सभा एक स्वरं से (Unanimously) महावीरशसाद जी दिवेदो पर निंदा का प्रस्ताव करती है, क्योंकि उन्होंने 'सरस्वती' में महिषे विरज्ञानंद जी के लिए अपमानसूचक शब्दों का प्रयोग किया है, श्रीर संपादक जी की यह नेक सलाह देती है कि वे शीष्र ही 'सरस्वती' के आगामी शंक में श्रपने किये पर परचात्राप प्रवट करें।

भवदीय

— चाँदकरण शारदा वी० ए०, एल्-१ल्० वी० प्रधान श्रार्यं-विद्यार्थी सभा, धनमेर '

द्विवेदी जी ने वी० सिंह महाशय के लिए लिखा—

"भाई सिंह दुःख मत करे। आर्यसमाज की धर्मोन्नति होती हो तो —

"कर कुठार धारो यह शीशा"

जिन लोगों का यह हाल है उनके विषय में परमेश्वर से हमारी आर्थना है—

येषां चेतिस मोह-मत्सर-भद-भ्रान्तिः समुज्जृग्भते सेऽप्येते दयया दयाधन विभा संतारणीयास्त्वया ॥ नाम देकर बी० सिंह नाम के एक महाशय ने आगरे से एक पोस्टकार्ड उर्दू में उनके पास भेजा। उसमें अनेक दुर्वचनों और अभिशापों के अनन्तर इस बात पर दु:ख प्रकट किया गया था कि राज्य अँगरेजी हैं, अन्यथा तुम्हारा (द्विवेदी जी का) सिर धड़ से अलग कर दिया जाता। एक दूसरे ने उन्हें लिखा कि— "आंपकी सेवा में आर्य-विद्यार्थी-सभा, अजमेर, के निम्नलिखित प्रस्ताव की प्रतिलिपि सूचनार्थ भेजी जाती है—

प्रस्ताव

यह सभा एक स्वरं से (Unanimously) महावीरत्रसाद जी दिवेदो पर निंदा का प्रस्ताव करती है, क्योंकि उन्होंने 'सरस्वती' में महिपें विरजानंद जी के लिए अपमानसूचक शब्दों का प्रयोग किया है, श्रीर संपादक जी की यह नेक सलाह देती है कि वे शीघ ही 'सरस्वती' के आगामी शंक में अपने किये पर परचात्ताप प्रवट करें।

भवदीय

—चाँदकरण सारदा वी० ए०, एल्-एल्० वी० प्रधान श्रार्थ-विद्यार्थी सभा, धनमेर '

द्विवेदी जी ने वी० सिंह महाशय के लिए लिखा-

"भाई सिंह दुःख मत करे। आर्थसमाज की धर्मोन्नित होती हो तो —

"कर कुठार श्रागे यह शीशा"

जिन लोगों का यह हाल है उनके विषय में परमेश्वर से हमारी शार्थना है—

येषां चेतसि मोह-मस्तर-मद-भ्रान्तिः समुज्नुम्भते तेऽप्येते दयया दयाधन विभा संतारगीयास्त्वया ॥ त्राचार्य द्विवेदी जी का स्वभाव इतना सरल और सरस था कि उनके लिए यह कहा जा सकता है कि वे करुणा के साज्ञात अवतार थे—करुणा के परमाणुओं से वने थे। उनके सामने—

"मो सम कौन कुटिल खल कामी ?"

पढ़ने पर उनकी आँखों से टपाटप आँसुओं की मड़ी लग जाती थी। यदि आपने कहीं ऐसे दो-एक पद पढ़ दिये, तो वस वे मूच्छित होकर गिर जाते थे। यह खमाव उनका बुढ़ापे के कारण नहीं, भरी जवानी में भी उनकी यही दशा थी। चरखारी के राजा जुमारसिंह जी द्विवेदी जी के वड़े भक्त थे और शायद संगीत-प्रेमी भी । एक वार राजा साहव के यहाँ संगीत-मंडली थी। द्विवेदी जी उसमें नहीं पधारे; क्योंकि वहाँ पर सवासुहागिन भी विराजमान थी। आग्रह करने पर गये तव "मा सम कौन कुटिल खल कामी" गवाया । सुनकर स्वयं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। 'विछुड़ गई जोड़ी, जोड़ी मारे रामा" जैसे स्त्रियों के गीत सुनकर भी द्विवेदी जी को मूच्छा आ जाती थी। तुलसी और अन्य कवियों के करुए-रस के पदों को पढ़ते ही द्विवेदी जी को रोमांच हो जाता था और आँखों से जलधारा वहने लगती थी। शायद भावावेश में गलकर उनका हृदय आँसुओं के रूप में निकल सकता था अ। निम्नलिखित पंक्तियाँ उन्हें बहुत प्रिय थीं। प्रायः वे इन्हें गाया करते थे—

> भागीरथी हम दोप भरे की भरोस यही कि परोस तिहारे।

द्विवेदी जी के चित्र को देखिए। उसमें आपका ध्यान उनके उन्नत ललाट और धनी भौंहों की ओर विशेष रूप से जायगा।

[•] स्वा (४—१—३ वृष्ठ : २४)

श्राचार्य द्विवेदी जी का स्वभाव इतना सरल और सरस था कि उनके लिए यह कहा जा सकता है कि वे करुणा के साचात अवतार थे—करुणा के परमाणुओं से वने थे। उनके सामने—

"मो सम कौन कुटिल खल कामी ?"

पढ़ने पर उनकी आँखों से टपाटप आँसुओं की मड़ी लग जाती थी। यदि त्रापने कहीं ऐसे दो-एक पर पढ़ दिये, तो वस वे मूर्च्छित होकर गिर जाते थे। यह स्वभाव उनका बुढ़ापे के कारण नहीं, भरी जवानी में भी उनकी यही दशा थी। चरखारी के राजा जुभारसिंह जी द्विवेदी जी के वड़े भक्त थे ख्रौर शायद संगीत-प्रेमी भी। एक बार राजा साहव के यहाँ संगीत-मंडली थी। द्विवेदी जी उसमें नहीं पधारे; क्योंकि वहाँ पर सवासुहागिन भी विराजमान थी। आपह करने पर गये तव "मा सम कौन कुटिल खल काभी" गवाया । सुनकर स्वयं मूर्चिर्इत होकर गिर पड़े। 'विछुड़ गई जोड़ी, जोड़ी मारे रामा" जैसे स्त्रियों के गीत सुनकर भी द्विवेदी जी को मूच्छी आ जाती थी। तुलसी और अन्य कवियों के करुए-रस के पदों को पढ़ते ही द्विवेदी जी को रोमांच हो जाता था और आँखों से जलधारा वहने लगती थी। शायद भावावेश में गलकर उनका हृदय श्राँसुश्रों के रूप में निकत सकता था अ। निम्नलिखित पंक्तियाँ उन्हें बहुत प्रिय थीं। प्रायः वे इन्हें गाया करते थे-

> भागीरथी हम दोप भरे के। भरोस यही कि परोस तिहारे।

द्विवेदी जी के चित्र को देखिए। उसमें आपका ध्यान उनके उन्नत ललाट और घनी भौंहीं की ओर विशेष रूप से जायगा।

[•] सुधा (९—१—२ पृष्ठ न्२४)

चेहरे और लम्बे डील-डौल के अंदर एक सहानुभूति-पूर्ण, करुणाई और कोमल हृदय छिपा हुआ है। वास्तव में वे सचे प्रेम श्रीर भाव के भूखे थे। उनके समान पर-दु:ख-कातर बहुत कम होते हैं। िकिसी भी व्यक्ति को कष्ट में देखकर उनका हृदय पिघलने लगता और वे उसके हु:ख को दूर करके ही चैन लेते थे; किसी के चोट लग गई है, विच्छू ने काट खाया है, तो द्विवेदी जी उधर ही दौड़ जाते थे और अपने हाथ से दवा लगाते। ब्राह्मण् हें कर भी वे यह नहीं देखते कि रोगी या त्राहत व्यक्ति पासी, कोरी अथवा चमार है। विपत्ति-पीड़ित ब्राह्मण और पासी, में उनकी दृष्टि में कोई भेद नहीं था। एक वार एक ऋहीर फिसान वैल-गाड़ी में किसी दूसरे गाँव को जा रहा था। उसकी तवीस्रत खराव थी। द्विवेदी जी ने उससे कहा--चाखी, उहाँ कुछ ग्रंट-संट न खाय लीन्ह्यों, नाहीं तो बहुत दिक होइ जइही। इस तरह उसे बड़ी देर तक समभाते रहे। हमारे यहाँ के पढ़े-लिखे कह उठते--मरने दो सालें को। इन लोगों से सिर मारने को हमारे पास समय कहाँ !

द्विवेदी जी अपने आश्रित जनों के साथ में। वड़े प्रेम का वर्ताव करते थे। नौकरों का वे आदर करते थे, उनकी दुःख-वार्ता से कोर। समवेदना प्रकट करके ही नहीं रह जाते, वरन उनकी सहायता और रचा भी वे करते थे। उन्हें वे प्रायः मासिक वेतन देते थे। कभी-कभी प्रसन्न होकर इनाम भी देते थे। एक वार एक नौकर की चाँदी के कड़े वनवा दिये थे। दूसरों को आश्रित व्यक्तियों और नौकरों के साथ कठोरता का व्यवहार करते देखकर उन्हें वड़ा दुःख होता। वे स्वयं अपने नौकरों से कभी। कठोर वचन नहीं कहते थे। उनके घर की दास-दासियों की वेश-भूपा देखकर वाहर के आदिमियों को यह जानना कठिन

चेहरे श्रौर लम्बे डील-डौल के श्रंदर एक सहानुभूति-पूर्ण, करुणाई और कोमल हृद्य छिपा हुआ है। वास्तव में वे सच प्रेम और भाव के भूखे थे। उनके समान पर-दुःख-कातर बहुत कम होते हैं। किसी भी व्यक्ति को कष्ट में देखकर उनका हृद्य पिघलने लगता और वे उसके दु:ख को दूर करके ही चैन लेते थे; किसी के चोट लग गई है, विच्छू ने काट खाया है, तो द्विवेदी जी उधर ही दौड़ जाते थे और अपने हाथ से दवा लगाते। ब्राह्मण हैं।कर भी वे यह नहीं देखते कि रोगी या त्राहत व्यक्ति पासी, कोरी अथवा चमार है। विपत्ति-पीड़ित ब्राह्मण और पासी, में उनकी दृष्टि में कोई भेद नहीं था। एक वार एक अहीर किसान वैल-गाड़ी में किसी दूसरे गाँव को जा रहा था उसकी तबीछत जराव थी। द्विवेदी जी ने उससे कहा--चासी, उहाँ कुछ ऋट-संट न खाय लीन्ह्यों, नाहीं सौ बहुत दिक होइ जड्हो। इस तरह उसे वड़ी देर तक समभाते रहे। हमारे यहाँ के पढ़े-लिखे कह उठते--मरने दो साले को। इन लोगों से सिर मारने को हमारे पास समय कहाँ !

द्विवेदी जी अपने आश्रित जनों के साथ में वड़े प्रेम का वर्ताव करते थे। नौकरों का वे आदर करते थे, उनकी दुःख-वार्ता से कोरा समवेदना प्रकट करके ही नहीं रह जाते, वरन उनकी सहायता और रचा भी वे करते थे। उन्हें वे प्रायः मासिक वेतन देते थे। कभी-कभी प्रसन्न होकर इनाम भी देते थे। एक वार एक नौकर को चाँदी के कड़े बनवा दिये थे। दूसरों को आश्रित व्यक्तियों और नौकरों के साथ कठोरता का व्यवहार करते देखकर उन्हें वड़ा दुःख होता। वे स्वयं अपने नौकरों से कभी। कठोर वचन नहीं कहते थे। उनके घर की दास-दासियों की वेश-भूपा देखकर वाहर के आदिमयों को यह जानना कठिन "दौलतपुर की हो चात है। एक बार मैंने चूलहा जलाकर दाल के लिए श्रदहन रक्ता था कि एंडिन जी ने श्रावाल लगाई। इन दे दिनों वे 'किरातार्जुनाय' का हिदीरूपान्तर मुभे लिखाते थे। मैंने उसी चण बहुशा चूल्हे से उतारकर चूल्हा बुमा दिया श्रीर लिखने श्रा वैठा। दो घंटे तक लिख ते रहे। बाद की मैं रसेई बनाने बैठा। जब उन्हें मालूम हुशा कि मैं चूल्हा बुमाकर श्रायां था तब उन्हें बहा दु:ख हुशा। उसके बाद श्रावाल देने से पहले वे 'पूंछ लिया करते थे कि 'क्या कर रहे हो' ?''

श्रध्ययन

द्विवेदी जी का ज्ञान बहुत त्रिस्तृत श्रीर श्रध्ययन बहुत श्रधिक था। उनमें श्रारम्भ से ही जिज्ञासावृत्ति प्रधान रही श्रीर नये-नये विपयों का उन्होंने काकी पठन-गठन किया। यही कारण था-कि 'सरस्वती' के प्रत्येक श्रङ्क में वे १०-१२ विपयों पर संपादकीय नोट लिख डालते थे। विभिन्न विपयों पर उन्होंने विस्तृत लेख भी लिखे, जिनको पढ़कर श्राश्चर्य होता है कि संपादकीय कार्य करते हुए भी उन्हें इन सबका श्रध्ययन करके लेख लिखने का समय ही कैसे भिल जाता था। यहाँ तक कि 'सरस्वती! (भाग ४ सं० ११) में उन्होंने "रजोदर्शन"-शीर्षक लेख कामिनीकौत्हल के अन्तर्गत लिखा है। इसके बहुत पहले सन् १न६न में काला-काँकर के किन्हीं रमेशिसंह नाम के व्यक्ति ने उनसे श्रलंकार के सर्वश्रेष्ठ श्रन्थ के विषय में पूत्रा था श्रीर यह भी लिखा था कि यदि में अलंकार श्रीर उसके श्रन्थान्य श्रंगों पर लिखा हुशा श्रपना निबन्ध भेजूँ तो क्या श्रान उस पर श्रपनी सम्मित देने की कृपा करेंगे।

बात यह है कि नई-नई वातों की जानने की इच्छा साधारण फा० १७ "दौलतपुर की ही बात है। एक बार मैंने चूलहा जलाकर दाल के लिए श्रदहन रक्ला था कि पंडिन जी ने श्रावाज लगाई। अने दे दिनों वे 'किशतार्जुनाय' का हिदीरूपान्तर सुमे जिलाते थे। मैंने उसी चल बहुशा चूलहे से उतारकर चूलहा बुमा दिया श्रीर जिलाने श्रा वैठा। दो घंटे तक जिला ते रहे। बाद की मैं रसेंई बनाने बैठा। जब उन्हें मालूम हुशा कि मैं चूलहा बुमाकर श्रायां था तब उन्हें बड़ा दुःख हुशा। उसके बाद श्रावाज देने से पहले वे 'पूंछ जिया करते थे कि 'क्या कर रहे हो'?'

श्रध्ययन

द्विवेदी जी का ज्ञान बहुत विस्तृत श्रीर श्रध्ययन बहुत श्रधिक था। उनमें श्रारम्भ से ही जिज्ञासान्न प्रधान रही श्रीर नये-नये विपयों का उन्होंने काकी पठन-गठन किया। यही कारण था-कि 'सरस्वती' के प्रत्येक श्रद्ध में वे १०-१२ विपयों पर संपादकीय नोट लिख डालते थे। शिभिन्न विपयों पर उन्होंने विस्तृत लेख मी लिखे, जिनको पढ़कर श्राश्चर्य होता है कि संपादकीय कार्य करते हुए भी उन्हें इन सबका श्रध्ययन करके लेख लिखने का समय ही कैसे मिल जाता था। यहाँ तक कि 'सरस्वती' (भाग ४ सं० ११) में उन्होंने ''रजोदर्शन"-शीर्षक लेख कामिनीकौत्हल के श्रन्तर्गत लिखा है। इसके बहुत पहले सन् १८६८ में काला-काँकर के किन्हीं रमेशिसिंह नाम के व्यक्ति ने उनसे श्रलंकार के सर्वश्रेष्ट प्रन्थ के विषय में पृत्रा था श्रीर यह भी लिखा था कि यदि में श्रलंकार श्रीर उसके श्रन्यान्य श्रंगों पर लिखा हुश्रा श्रपना निवन्ध भेजूँ तो क्या श्राप उस पर श्रपनी सम्मित देने की कृपा करेंगे।

बात यह है कि नई-नई वातों को जानने की इच्छा साधारण फा० १७

हिसाव लिखने और पुड़ियाँ वनाने के काम में भी उन्हें लाते थे। शायद महातमा गांधी के वाद दूसरा नंवर इस विषय में उन्हों का था। उनकी सुव्यवस्था-प्रियता का इससे वढ़कर नमूना और क्या हो सकता है कि जब वे 'सरस्वती' के संपादनकार्य से अलग हुए थे तब उन्होंने पदुमलाल पुत्रालाल वछशी जी को कई लेख ऐसे भी दिये थे जो लगभग २० वर्ष पहले वावू श्यामसुन्दरदासं जी ने चार्ज देते समय उन्हें दिये थे। वर्षों के पुराने कपड़े उनके पास रक्खे थे और वे प्रायः उन्हें पहनत भी रहे हैं। पैसे-पैसे का हिसाव भी वे रखते रहे हैं। महीने का वजट वे पहले ही वना लेते थे, उनके पास २०-२५ वर्ष पूर्व के भी माहवारी वजट मिल सकते थे।

सफलता का रहस्य

द्विवेदी जी ऐसे देशभक्त या सुधारक नहीं थे, जो केवल सुधार-सुधार चिल्लाया करते हैं। जिस भारतीय सभ्यता, धर्म आदि की वे वकालत करते हैं उसको उन्होंने स्वयं भी अपनाया था। जिस अपनाने की ओर वे संकेत करते हैं उसके कारण भी वताते चलते हैं। कभी कहते हैं—

"कुछ तो कर्मयोग के श्रीर कुछ तुम्हारी ही श्रक्में एयता के कारण तुम्हारा वह प्राचीन वैभव इस समय कथावशेप रह गया है। लौकिक ज्ञान श्रीर विज्ञान में तुम्हें विदेशी योरप श्रीर श्रमेरिका ने परास्त कर दिया, वल-विक्रम में तुम्हें विदेशी जातियों ने मुँह दिखाने लायक न रक्ला। तुम्हारे हीरों का हास हो गया।"

श्रीर कभी सुधारकों श्रीर कर्मवीरों को सावधान करते हुए उन्हें कर्तव्य सुभाते हैं— हिसाव लिखने और पुड़ियाँ वनाने के काम में भी उन्हें लाते थे। शायद महातमा गांधी के वाद दूसरा नंवर इस विपय में उन्हीं का था। उनकी सुव्यवस्था-प्रियता का इससे वढ़कर नमूना और क्या हो सकता है कि जब वे 'सरस्वती' के संपादनकार्य से अलग हुए थे तब उन्होंने पढुमलाल पुत्रालाल वखशी जी को कई लेख ऐसे भी दिये थे जो लगभग २० वर्ष पहले वावू श्यामसुन्द्रशास जी ने चार्ज देते समय उन्हें दिये थे। वर्षों के पुराने कपड़े उनके पास रक्खे थे और वे प्रायः उन्हें पहनते भी रहे हैं। पैसे-पैसे का हिसाव भी वे रखते रहे हैं। महीने का वजट वे पहले ही वना लेते थे, उनके पास २०-२५ वर्ष पूर्व के भी माहवारी वजट मिल सकते थे।

सफलता का रहस्य

द्विवेदी जी ऐसे देशभक्त या सुधारक नहीं थे, जो केवल सुधार-सुधार चिल्लाया करते हैं। जिस भारतीय सभ्यता, धर्म ऋादि की वे वकालत करते हैं उसको उन्होंने स्वयं भी अपनाया था। जिस अपनाने की श्रोर वे संकेत करते हैं उसके कारण भी वताते चलते हैं। कभी कहते हैं—

"कुछ तो कमैयोग के श्रीर कुछ तुम्हारी ही श्रकमैयपता के कारण तुम्हारा वह प्राचीन बैभव इस समय कथावशेप रह गया है। लोकिन ज्ञान श्रीर विज्ञान में तुम्हें विदेशी योरप श्रीर श्रमेरिका ने परास्त कर दिया, वल-विक्रम में तुम्हें विदेशी जातियों ने मुँह दिखाने लायक न रक्ला। तुम्हारे हीरों का हास हो गया।"

त्रौर कभी सुधारकों त्रौर कर्मचीरों को सावधान करते हुए उन्हें कर्तव्य सुभाते हैं— विरोधों का सामना करना पड़ा; पर उन्होंने वीरता के साथ अपने प्रतिद्वंदियों का सामना किया और असीम योग्यता, अट्ट धेर्य, अप्रतिम द्त्तता दिखाई। कालांतर में लोगों ने उन्हें सभभा और उनकी महत्ता को स्वीकार किया। इस विजय का श्रेय उनकी निर्भाक सत्य-प्रीति, तेजस्विता, बहुद्शिता और मर्म- जता, नियम-निष्ठा, अमशीलता, साधन-बहुलता और कार्य- दत्तता को ही दिया जा सकता है। उनका जीवन साहित्य- सेवियों की कृत-कृत्यता का एक महान् उज्ज्वल हण्टांत है। यह नितांत सत्य है कि कोई भी व्यक्ति उनकी विशेपताओं की अंगीकृत करके गौरवशाली हो सकता है। संचेप में द्विवेदी जी को बालोचित विनम्रता उनकी सादगी, उनका समय का सदुप- योग, उनकी शिष्टता और सङ्जनता आहि गुणों ने हिंदी-भाषा का इतिहास जाननेवाले लोगों के वीरोपासक हृद्यों में उनके प्रति वह भाव पैंश कर दिया है, जो की की हिंदी सह स्वां में उनके प्रति वह भाव पैंश कर दिया है, जो की की हिंदी ना कर स्वां कर दिया है, जो की की कर स्वां में उनके प्रति वह भाव पैंश कर दिया है, जो की की कर हिंदी ना कर दिया है, जो की की कर हिंदी ना कर सिंदा है। जो की की का कि का कर हिंदी ना कर दिया है, जो की की कर हिंदी ना कर हिंदी ना कर हिंदी वह साव पैंश कर हिंदी है।

विरोधों का सामना करना पड़ा; पर उन्होंने वीरता के साथ अपने प्रतिद्वंद्वियों का सामना किया और असीम योग्यता, अदृट धेर्य, अप्रतिम दत्तता दिखाई। कालांतर में लोगों ने उन्हें सममा और उनकी महत्ता को स्वीकार किया। इस विजय का श्रेय उनकी निर्भाक सत्य-प्रीति, तेजिस्वता, बहुद्शिता और मर्म-ज्ञता, नियम-निष्ठा, अमशीलता, साधन-बहुलता और कार्य-दत्तता को ही दिया जा सकता है। उनका जीवन साहित्य-सेवियों की कृत-कृत्यता का एक महान् ,उज्ज्वल दृष्टांत है। यह नितांत सत्य है कि कोई भी व्यक्ति उनकी विशेषताओं को अंगीकृत करके गौरवशालों हो सकता है। संचेष में द्विवेदी जी को वालोचित विनम्रता, उनकी साटगी, उनका समय का सदुप-योग, उनकी शिष्टता और सज्जनता आदि गुगों ने हिंदी-भाषा का इतिहास जाननेवाले लोगों के वीरोपासक दृष्यों में उनके प्रति वह भाव पैना कर दिया है, जो उसीर है।

मूँदे रहते हैं। शेक्सिपुयर की वात को तो जाने दीजिए, पर हिंदी के किंब अपने रंग में मस्त रहकर ही यदि भारतीयता की भावनाओं से शून्य रहें या भारतीय परिस्थिति और भारतीय समस्याओं की ओर से, किसी कारण से भी, उदासीन रहें तो सचमुच वड़े आश्चर्य की वात होंगी। कारण, पिछले लगभग ४० वर्ष से देश में ऐमी-ऐसी समस्याओं का जन्म हो रहा है जिनका संबंध भारत की सभी श्रेणियों और वर्गों से हैं। सामाजिक प्राणी—स्वांत:मुखाय किंवता करनेवाले कल्पना-प्रधान अथवा भाव-प्रधान किंवयों को भी में यही सममता हूँ—साधारणतः इनकी ओर उपेत्ता की हिष्ट से नहीं देख सकता और न ऐसा करना उचित ही है। ऐसे किंवयों की भावना, सहद्यता और सहानुभूति की जननी वनकर, मनुष्यमात्र का हदय जाति-प्रेम और देश-प्रेम से परिपूर्ण कर देती है। कृतज्ञता और समवेदना का भाव भी इस कार्य में सहायक होता है। फलतः किंव-हदय की भावक सहदयता इससे प्रभावित होकर शब्दों के रूप में प्रकट होती है।

ऐसा ही भावुक किंव-हृदय द्विवेदी जी का था। देश-प्रेम से वह सदैव ही परिपूर्ण रहा। यद्यपि उन्होंने प्रत्यच्च रूप से राजनीतिक मामलों में शायद कभी भाग नहीं लिया, तथापि स्वतंत्रता के लिए होनेवाले आंदोलन से उनकी पूर्ण सहातुभूति रही। स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग स्वदेशी-आंदोलन से भी पहले से वे करते आये थे। गांधी जी के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति भी आज से लगभग २० वर्ष पहले से थी। जिन दिनों महात्मा जी दिल्ली में उपवास कर रहे थे और समाचार-पत्रों में उनकी हालत के वृत्तांत छपते थे, द्विवेदी जी उन समाचारों को बड़ी चिंता के साथ पढ़ते थे। एक दिन पढ़ा कि उनकी

मूँदे रहते हैं। शेक्सप्रियर की वात को तो जाने दीजिए, पर हिंदी के कवि अपने रंग में मस्त रहकर ही यदि भारतीयता की भावनात्रों से शून्य रहें या भारतीय परिस्थित और भारतीय समस्याओं की और से, किसी कारण से भी, उदासीन रहें तो सचमुच वड़े आश्चर्य की वात होंगी। कारण, पिछले लगभग ४० वर्ष से देश में ऐसी-ऐसी समस्यात्रों का जन्म हो रहा है जिनका संबंध भारत की सभी श्रेणियों त्रीर वर्गों से हैं। सामाजिक प्राणी—स्वांतःसुखाय कविता कर्नेवाले कल्पना-प्रधान अथवा भाव-प्रधान कवियों का भी में यही सममता हूँ—साधारणतः इनकी त्रोर उपेना की दृष्टि से नहीं देख सकता और न ऐसा करना उचित ही है। ऐसे कवियों की भावना, सहृद्यता ख्रोर सहानुभूति की जननी वनकर, मनुष्यमात्र का हृद्य जाति-प्रेम और देश-प्रेम से परिपूर्ण कर देती है। कृतज्ञता और समवेदना का भाव भी इस कार्य में सहायक होता है। फलतः कवि-हृद्य की भावुक सहृद्यता इससे प्रभावित होकर शब्दों के रूप में प्रकट होती है।

ऐसा ही भावुक किव-हृद्य हिवेदी जी का था। देश-प्रेम से वह सदेव ही परिपूर्ण रहा। यद्यपि उन्होंने प्रत्यक्त रूप से राजनीतिक मामलों में शायद कभी भाग नहीं लिया, तथापि स्वतंत्रता के लिए होनेवाले आंदोलन से उनकी पूर्ण सहातुभूति रही। स्वदेशी वह्यों का प्रयोग स्वदेशी-आंदोलन से भी पहले से वे करते आये थे। गांधी जी के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति भी आज से लगभग २० वर्ष पहले से थी। जिन दिनों महात्मा जी दिल्ली में उपवास कर रहे थे और समाचार-पत्रों में उनकी हालत के दृत्तांत छपते थे, द्विवेदी जी उन समाचारों को वड़ी चिंता के साथ पढ़ते थे। एक दिन पढ़ा कि उनकी

Marker .

"हाय, जिस भारत ने शपने धर्म, शपने कला-कोशल शौर शपनी सभ्यता का पाठ दुनरे-दूसरे देशों और दूसरी-दूसरी विलायतों को पढ़ाया, वहीं श्रात श्रसभ्यों में नहीं तो श्रर्ज-सभ्यों में गिना जा रहा है। महाकवि ने ठीक ही कहा है —

> इतविधितसितां ही विचित्रो विषाकः ।'' —सरस्वती (दिसंवर १६२७)

भारतीयता का यह पन्पान द्वियेदी जी की अधिकांश रचनायों-विशेषकर पुरातत्त्व विषय पर लिखे हुए लेखें-में प्रधान हैं। उनका विचार जा उनके लेखों से स्पष्ट होता है, वह यह है कि एकता श्रीर जातीयता के भाव भारतवासियों में तभी पदा हो सकते हैं जब हम अपने पूर्व-पुरुषों के बताये हुए मार्ग पर चलें। 'ब्रत-कथायें'-शीर्पक निबंध में, जो श्रीशारदा (दिसंवर सन् १६२१ पृ० ४६४) में प्रकाशित हुआ था, द्विवेदी जी ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। उनके कुछ तेख तो प्राचीन साहित्य के प्रमुख प्रंथों का परिचयमात्र हैं। इसका कारण भी म्पष्ट है। हमें अपने पूर्वजों की उन्नति, सम्यता, गौरव त्रादि का गर्व है। यही गर्व द्विवदी जी को भी था। पर व यह नहीं चाहते थे कि भारतवासी सिर्फ घमंड में ही चृर रहें—केवल अपने पूर्वजों का गुणगान करते हुए स्वयं व्यकर्मण्यता का भट्टा तमृना वनते रहें। हमारे पृवंजों ने वहुत-कुञ्ज किया था; परंतु आज हम क्या हैं—द्विवेदी जी अपने पाठकों के। यही सुमाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने प्रायः तुलनात्मक लेख लिखे हैं, जो परिचायकमात्र होते हुए भी पाठकों के सामने एक आदर्श उपस्थित करते चलते हैं।

` ' ... ,

"द्वाय, जिस भारत ने अपने धर्म, अपने कला-कोशल छौर अपनी सभ्यता का पाठ दृग्ररे-दूसरे देशों और दूसरी-दूसरी विलायतों को पड़ाया, वहीं आज असभ्यों में नहीं तो अर्द्ध-सभ्यों में गिना ला रहा है। महानवि ने ठीक ही कहा है —

> इतविधिनसितां ही विचित्रो विपाकः ।" —सरस्वती (दिसंबर १६२७)

भारतीयता का यह पन्तपात द्विवेदी जी की अधिकांश रचनात्रों-विशेषकर पुरातत्त्व विषय पर लिखे हुए लेखें-में प्रधान हैं। उनका विचार जा उनके लेखों से स्पष्ट होता है, बह् यह है कि एकता छोर जातीयता के भाव भारतवासियों में तभी पदा हो सकते हैं जब हम अपने पूर्व-पुरुषों के बताये हुए मार्ग पर चलें। 'त्रत-कथायें'-शीर्पक निबंध में, जो श्रीशारदा (दिसंबर सन् १६२१ पृ० ४६४) में प्रकाशित हुआ था, द्विवेदी जी ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। उनके कुछ तेख तो प्राचीन साहित्य के प्रमुख यंथों का परिचयमात्र हैं। इसका कारण भी म्पष्ट हैं। हमें अपने पूर्वजों की उन्नति, सभ्यता, गौरव त्रादि का गर्व है। यही गर्व द्विवदी जी को भी था। पर व यह नहीं चाहते थे कि भारतवासी सिर्फ घमंड में ही चृर रहें - केवल अपने पूर्वजों का गुगागान करते हुए स्वयं अकर्मण्यता का भहा नम्ना वनते रहें। हमारे पूर्वजां ने वहुत-कुछ किया था; परंतु आज हम क्या हैं—द्विवेदी जी अपने पाठकों के। यही सुमाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने प्रायः तुलनात्मक लेख लिखे हैं, जो परिचायकमात्र होते हुए भी पाठकों के सामने एक आदर्श उपस्थित करते चलते हैं।

रहती है। सब ती यह भी पता जा महता है कि तान उपाय के याहर भी। पता करें। लागाह होना पता। परंतु िका। पताभव कर्यों भी महीता शीर पेतरवादी है जागा कृषी के हारा हो जाता है नरहें ती हुए सरना: पांद्या पे नी सुंह दिवाने रापण भी नहीं रह जाने। उसकी हुईति देश्यर से महिना में मही रह जाने। उसकी हुईति देश्यर से महिना में महिना साम है।

णवर्मण्यस के जिस पहलू पर विवेदी जी ने लिखा है यह निर्माय गर्म्य है। यह तुम प्यापन जीवन में प्राप्त देखने हैं। परंतु हमारे प्राप्त के प्राप्त है। परंतु हमारे प्राप्त के प्राप्त के प्राप्त है। परंतु हमारे प्राप्त के प्राप्त के जारण वे सुरण नमनते हैं वह है हमारी प्राप्त हो प्राप्त के प्राप्त जीवन संपर्प प्राप्त हो। कियर का देश है। जिनका जीवन संपर्प प्राप्त के प्राप्त का देश है। जियर का देश है। विवेदी जी ने इसका प्रथ्ययन नित्या प्यार किर प्राप्ति सार्वाय उप्ति के कारणों के नुस्ता करने एय इस क्ष्य के प्राप्त के विवय में लिखा—

'हमारी कुपनंहकता ने हमारी जो छानि वा है उसकी हुमचा नहीं । उसके कुछन इस पद-पद पर भोग रहे हैं। उसके इमें किसी काम का नहीं रक्ता, परंगु हुदेंग कमें फिर भी राचेन नहीं होने देना । उसने हमें वहाँ तक खंधा चना दिया है कि इस अपने एई-पुत्रमें के वित्त और उनके दर्शन मी मूल नये हैं। इमारे जिन धर्मपुरीण बाचान फापियों खीर मुनियों ने द्वीपांतरों तक में जाकर कार्यों के धर्म, ज्ञान खीर ऐंद्रनर्थ की मताका फहराई और वड़े-वड़े उपनिवेदों तक की स्थापना कर दी उनकी चरितावली धाल भी हमें अपनी पुरानी पोधियों में विद्या मिलती है। परंगु उनकी और किसी का ध्यान ही नहीं जाता, उनके कार्यों का धनुसर्य करना तो हुर की यान ही नहीं जाता, उनके कार्यों का धनुसर्य करना तो हुर की यान ही।"

-सास्वती (दिसंबरे १६२४)

''यद्यपि हमारे देश में अमेरिका के समान दासत्व नहीं है, तथापि, वर्तमान समय में, अस्पृत्रय जाति के पाँच करोड़ से श्राधिक मनुष्य सामाजिक दासत्व का कठिन दुल भोग रहे हैं। क्या हमारे यहाँ वाशिंगटन के समान इन लोगों का उद्धार वरने के लिए—सिर्फ़ शुद्धि के लिए नहीं—कभी कोई महात्मा उत्पन्न होगा? क्या इस देश की शिचा-पद्धति में शारीरिक श्रम की श्रोर ध्यान देकर कभी सुधार किया जायगा? जिन लोगों ने शिचा-द्वारा श्रपने समान की सेवा करने का निश्चय किया है क्या वे लोग उन तत्वों पर उचित ध्यान देंगे जिनके श्राधार पर हैस्पटन श्रीर टस्केजी की संस्थाय काम कर रही हैं?

इसी प्रकार देश के नवयुवकों के लिए भी उनका संदेश हैं कि अध्यवसाय से काम लो, अपने पैरों पर खड़े हो और आत्मवल पर विश्वास रक्खे। स्पेंसर ने अपनी पुस्तक 'एजूकेशन' में लिखा है—मनुष्य के। प्रत्येक चीज परिश्रम करके प्राप्त करनी चाहिए और स्वाभाविक शक्तियों का विकास विना औरों की मदद के मनुष्यों को यथासंभव ख़ुद ही करना चाहिए। द्विवेदी जी ने स्पेंसर के इन विचारों का समर्थन अपनी अनुवादित पुस्तक 'शिचा' की भूमिका (पृ० ४) में किया है। इसी प्रकार उन्होंने वाबू कालिदास जी कपूर के। एक पत्र में आज से लगभग २० वर्ष पहले लिखा था—

" खुब परिश्रम कीजिए श्रौर संयम के। हाथ से मत जाने दीजिए।"

यदि ग़ौर करके देखा जाय तो हमें ज्ञात हो जायगा कि द्विवेदी जी की इतनी उन्नति केवल उनके परिश्रम के कारण ही हो सकी है। ऋस्तु।

इनके त्रातिरिक्त, एक तीसरे दोप की त्रोर भी दिवेदी जी प्रायः संकेत करते रहे हैं। वह है हमारी कृतन्नता या त्रगुगा- "यद्यपि हमारे देश में अमेरिका के समान दासत्व नहीं है, तथापि, वर्तमान समय में, अस्पृत्रय जाति के पाँच करोड़ से श्रीधक मनुष्य सामाजिक दासत्व का कठिन दुख भोग रहे हैं। क्या हमारे यहाँ वाशिंगटन के समान हन जोगों का उद्धार वरने के लिए—सिर्फ़ शुद्धि के लिए नहीं—कभी कोई महात्मा उत्पन्न होगा? क्या हस देश की शिचा-पद्धति में शारीरिक अम की श्रोर ध्यान देवर कभी सुधार किया जायगा? जिन जोगों ने शिचा-द्वारा श्रपने समाज की सेवा करने का निश्चय किया है क्या वे जोग उन तक्वों पर टांचत ध्यान देंगे जिनके श्राधार पर हैम्पटन श्रीर टस्केजी की संस्थाय काम कर रही हैं?

इसी प्रकार देश के नवयुवकों के लिए भी उनका संदेश हैं कि अध्यवसाय से काम लो, अपने पैरों पर खड़े हो और आत्मवल पर विश्वास रक्खा। स्पेंसर ने अपनी पुस्तक 'एज्केशन' में लिखा है—मनुष्य को प्रत्येक चीज परिश्रम करके प्राप्त करनी चाहिए और स्वाभाविक शक्तियों का विकास विना औरों की मदद के मनुष्यों को यथासंभव खुद ही करना चाहिए। द्विवेदी जी ने स्पेंसर के इन विचारों का समर्थन अपनी अनुवादित पुस्तक 'शिन्ना' की भूमिका (पृ०४) में किया है। इसी प्रकार उन्होंने वाबू कालिदास जी कपूर के एक पत्र में आज से लगभग २० वर्ष पहले लिखा था—

" ख्व परिश्रम कीजिए श्रौर संयम के। हाथ से मत जाने दीजिए।"

यदि ग़ौर करके देखा जाय तो हमें ज्ञात हो जायगा कि द्विवेदी जी की इतनी उन्नति केवल उनके परिश्रम के कारण ही हो सकी है। अस्तु।

इनके अतिरिक्त, एक तीसरे दोप की ओर भी द्विवेदी जी प्रायः संकेत करते रहे हैं। वह है हमारी कृतन्नता या अगुगा- भारतीयता का भाव पैदा हो जाय, यही उनका आदर्श रहा है। एक बार उन्होंने लिखा था—

"इस देश के निवासियों में स्याम जी कृष्ण वर्मा पहले सज्जन हैं जिन्होंने श्रावसफोर्ड विश्वविद्यालयं से एम० ए० की पदवी पाई है। स्पेन्सर की श्मशान-फिया के समय वे वहाँ टपस्थित थे, थोड़ा-सा समयोचित भाषण करने के बाद उन्होंने ११ हज़ार रुपया खर्च करके स्पेन्सर के नाम से एक छात्रवृत्ति नियत करने का निश्चय किया। इस निश्चय का वे पालन भी कर रहे हैं। इँगलेंड के ब्रह्मिं तुल्य वेदांत-वेता का इस तरह भारतवर्ष के एक विद्वान् द्वारा श्रादर देना छछ फीत्रल जनक श्रवश्य है। सच है, दर्शनशास्त्र की महिमा यह खड्डा भारत श्रव भी खून जानता है।"

श्रंतिम पाक्य का व्यंग्य समभते के लिए उसकी तह में पेठना पड़ेगा। दिवेदी जी के भारतीयता-विपयक भाव इस एक ही वाक्य में निहित समभे जा सकते हैं। पर भारत की श्राधुनिक परिस्थित के संबंध में उनके विचार 'श्रार्य-भूमि' शीर्पक कविता में है। भारतभूमि के पूर्व-गौरव, धर्म, साहित्य, वेदांत, विज्ञान श्राद्धि की उन्नति की श्रोर संकेत करने के परचात उन्होंने लिखा—

विचार ऐसे जब चित्त थाते, विपाद पैदा करके सताते। न क्या कभी देव द्या करेंगे, न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे?

त्रांतिम पंक्तिकी 'कस्क'-भावना ही किसी परतंत्र देश के नवयुवकों त्रोर नवयुवतियों के हृदयों में उत्पन्न होकर उस भारतीयता का भाव पैदा हो जाय, यही उनका आदर्श रहा है। एक वार इन्होंने लिखा था—

"इस देश के निवासियों में र्याम जी कृष्ण वर्मा पहले सजन हैं जिन्होंने आवसफोर्ड-विश्वविद्यालंग्रं से एम० ए० की पदवी पाई है। स्पेन्सर की शमशान-किया के समय वे वहाँ उपस्थित थे, थोड़ा-सा समयोचित भाषण करने के वाद उन्होंने १४ हज़ार रुपया खर्च करके स्पेन्सर के नाम से एफ-छात्रवृत्ति नियत करने का निश्चय किया। इस निश्चय का वे पालन भी कर रहे हैं। इँगलंड के ब्रह्मिप तुल्य वेदांत-वेता का इस तरह भारतवर्ष के एक विद्वान्द्वारा आदर देना कुछ जीतृहलजनक अवश्य है। सच है, दर्शनशास्त्र की महिमा यह खुड़ा भारत ध्रव भी खून जानता है।"

श्रंतिम वाक्य का व्यंग्य समभते के लिए उसकी तह में पैठना पड़ेगा। द्विवेदी जी के भारतीयता-विपयक भाव इस एक ही वाक्य में निहित समभे जा सकते हैं। पर भारत की श्राधुनिक परिस्थिति के संबंध में उनके विचार 'श्रार्य-भूमि' शीर्षक कविता में है। भारतभूमि के पूर्व-गौरव, धर्म, साहित्य, वेदांत, विज्ञान श्रांदि की उन्नति की श्रोर संकेत करने के परचात उन्होंने लिखा—

विचार ऐसे जब चित्त श्राते, विपाद पैदा करके सताते। न क्या कभी देव दया करेंगे, न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे?

श्रंतिम पंक्ति की 'कस्क'-भावना ही किसी परतंत्र देश के नवयुवकों श्रोर नवयुवितयों के हृदयों में उत्पन्न होकर उस

सम्मान

"मनुष्य के गुणों का विकाश प्रायः उसके मरने के अनन्तर होता है। जीवित दशा में ईप्या-द्वेष और मत्सर आदि के कारण मनुष्य औरों के गुण बहुधा नहीं प्रकाशित होने देते। परन्तु मरने के अनन्तर राग-द्वेष अथवा मत्सर फरना वे छोड़ देते हैं। इसी लिए मरणोत्तर ही प्रायः मनुष्यों की कीर्त्ति फेलती है। यदि जीते ही बोई यशस्वी हो तो उसे विशेष भाग्यशाली सममना चाहिए। जीवित-दशा में किसी के गुणों पर जुज्य होकर उसका सम्मान जिस देश में होता है उस देश की गिनती उदार और उन्नत देशों में की जाती है।"

(सरस्वती, जुजाई १६०३)

X X X

अँगरेजी में एक कहावत है—'ए थिंग इज वेल्यूड आफटर इट इज लास्ट'। इसका भाव यह है कि जब तक कोई चस्तु हमारे पास रहती है, हम प्रायः उसका चास्तविक मूल्य नहीं निर्धारित कर पाते हैं—या इस ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। परंतु जब वह बस्तु हमारे हाथ से निकल जाती है तब हम उसके लिए पछताते हैं। जीवन में अनेक बार हमें इस बात का अनुभव करना पड़ता है। संसार के इतिहास में अगणित उदाहरण ऐसे व्यक्तियों के मिलते हैं जिनके साथ उनके जीवित रहते तो पाशविक व्यवहार किया गया है, परंतु मरणोपरांत उनका देवता के समान आदर हुआ। इसी वात की अपनी सापा में सकारण सममाते हुए द्विवेदी जी ने

सम्मान

"मनुष्य के गुणों का विकाश प्रायः उसके मरने के अनन्तर होता है। जीवित दशा में ईष्या-हेप श्रीर मत्सर आदि के कारण मनुष्य श्रीरों के गुण बहुधा नहीं प्रकाशित होने देते। परन्तु मरने के अनन्तर राग-हेप श्रयवा मत्सर करना वे छोड़ देते हैं। इसी लिए मरणोत्तर ही प्रायः मनुष्यों की कीर्त्ति फेलती है। यदि जीते ही बोई यशस्वी हो तो उसे विशेष भाग्यशाली सममना चाहिए। जीवित-दशा में किसी के गुणों पर लुब्ध होकर उसका सम्मान जिस देश में होता है उस देश की गिनती उदार श्रीर उन्नत देशों में की जावी है।"

(सरस्वती, जुनाई १६०३)

 $\times \times \times \times \times$

अँगरेजी में एक कहावन है—'ए थिंग इज वेल्यूड आफटर इट इज लास्ट'। इसका भाव यह है कि जब तक कोई वस्तु हमारे पास रहती है, हम प्रायः उसका वास्तविक मूल्य नहीं निर्धारित कर पाते हैं—या इस ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। परंतु जब वह वस्तु हमारे हाथ से निकल जाती हैं तब हम उसके लिए पछताते हैं। जीवन में अनेक बार हमें इस बात का अनुभव करना पड़ता है। संसार के इतिहास में अगणित उदाहरण ऐसे व्यक्तियों के मिलते हैं जिनके साथ उनके जीविन रहते तो पाशविक व्यवहार किया गया है, परंतु मरणोपरांत उनका देवता के समान आदर हुआ। इसी वात को अपनी सापा में सकारण सममाते हुए द्विवेदी जी ने

'सार्टिफिकेट त्राक्त क्रियानर' के लिए नाम पृछे जाने पर उन्होंने शायद मन ही मन धात्म-गौरव और त्रात्माभिमान के भावों में भरकर गर्व और गौरव से लिखा था—"वदल चमार की जूड़ी उतर जाती है तब में सम्प्रकृता हूँ कि मु के 'क्रिसरे हिंद' का तमगा मिल गया।" उनके चिरत्र की यह विलच्चला—मोह की यह निद्यता—हिंदी के स्त्राधिकांश सेवी अभी तक नहीं समभ पाये हैं। उनके इस त्याग में क्या हमार प्राचीन महर्षियों के त्याग के अनुकरण की पृत और महती भावना निहित नहीं समभी जायेगी?

 \times \times \times \times

संसार में जीवित श्रीर जायत् जातियाँ वास्तव में वे ही हैं जो अपने नेताओं, साहित्यिक महारिथयों, शहीदों और समाज-सुधारकों के कार्यो का उचित मूल्य निर्धारित 'करके उनका यथोचित सम्मान करना जानती हैं। बड़े गर्व ऋौर गौरव का विषय है कि हमने भी इस वात को समका श्रोर उस पर कुछ अमल भी किया। आचार्य द्विवेदी की सेवाओं की म्वीकार करने के लिए, उनका सन्मान करने के ही विचार से वे कई वार कवि-सम्मेलनों के समापति चुने गये। इसकी सूचना प्रायः प्रत्येक वार उन्हें नार से दी गई। हर वार उनसे प्रार्थना की जाती थी कि स्वीकृति तार ही द्वारा भेजिए। इसके उत्तर में द्विवेदी जी सदैव यही लिखते रहे कि अपनी अस्वस्थता के कारण यह भार स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। लोगों ने उनकी विवशता के कई ऋर्थ लगाये। किसी ने कहा-वमंड, है। किसी ने व्यंग्य किया—जी, हाँ, हमेशा वीमार रहते हैं। एक ने प्रश्न किया--तब 'सरस्वती' का नियमिन रूप से संपादन कैसे करते हैं ? इसका रहस्य जो कुछ भी हो, पर द्विवेदी जी

'सार्टि फिकेट श्राक श्रानर' के लिए नाम पृछे जाने पर उन्होंने शायद मन ही मन धात्म-गौरव श्रोर श्रात्माभिमान के भावों में भरकर गर्व श्रोर गौरव से लिखा था—"वदल चमार की जूड़ी उतर जाती है तब में सम्स्रीता हूँ कि मुभे 'कैसरे हिंद' का तमगा मिल गया।" उनके चित्र की यह विलक्षणता— मोह की यह निर्वयता—हिंदी के श्रिधकांश सेवी श्रभी तक नहीं समभ पाये हैं। उनके इस त्याग में क्या हमार प्राचीन महर्षियों के त्याग के श्रमुकरण की पृत श्रोर महती भावना निहित नहीं समभी जायगी?

 \times \times \times \times

संसार में जीवित श्रीर जात्रत् जातियाँ वास्तव में वे ही हैं जो चपने नेताचों, साहित्यिक महारिधयों, शहीरों चौर समाज-सुधारकों के कार्यो का उचित मूल्य निर्धारित 'करके उनका यथोचित सम्मान करना जानती हैं। यड़े गर्व स्रोर गौरव का विषय है कि हमने भी इस वात को समका श्रोर उस पर कुछ अमल भी किया। आचार्य द्विवेदी की सेवाओं की म्वीकार करने के लिए, उनका सम्मान करने के ही विचार से वे कई वार कवि-सम्मेलनों के सभापति चुने गये। इसकी सूचना प्रायः प्रत्येक वार उन्हें नार से दी गई। हर वार **उनसे** प्रार्थना की जाती थी कि स्वीकृति तार ही द्वारा मेजिए। इसके उत्तर में द्विवेदी जी सदैव यही 'लिखते रहे कि अपनी अस्वस्थता के कारण यह भार स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। लोगों ने उनकी विवशता के कई अर्थ लगाये। किसी ने कहा-पमंड है। किसी ने व्यंग्य किया--जी, हाँ, हमेशा वीमार रहते हैं। एक ने प्रश्न किया--तब 'सरस्वती' का नियमित रूप से संपादन कैसे करते हैं ? इसका रहस्य जो कुछ भी हो, पर द्विवेदी जी

इन दोनों अवतरणों से यह स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी अपनी विवशता के कारण ही सम्मेलन के सभापित-पद को अस्त्रीकार करते रहे हैं। हम उनके इन विचारों की विवेचना करके किसी अनुमानित अथवा किल्पत कारण की ओर संकेत करने की अपेचा यह अच्छा समभते हैं कि पाठकों के सामने यही दो परिच्छेद रख दिये जायाँ।

\times \times \times \times

जनवरी १६३१ में श्राचार्य द्विवेदी २४ वंटे के लिए काशी पधारे थे। उस समय काशी-नागरी-प्रचारिग्री सभा की श्रोर से उन्हें एक श्रभिनंदन-पत्र दिया गया था। उनके चले जाने के कई दिन वाद श्री शिवपूजनसहाय के कहने पर द्विवेदी जी के सत्तरवें वर्ष में पदार्पण करनेके शुभ अवसर पर सभा ने उनके अभिनंदनार्थ एक प्रंथ प्रकाशित करने का निश्चय किया। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के आयोजन प्रायः होते रहते हैं। भारत में भी वंगाल, महाराष्ट्र आदि प्रांतों में भी अपने साहित्यिकों तथा अन्य नेताओं के प्रति अपनी अद्धा प्रकट करने के लिए इस प्रकार की योजनायें आदर की दृष्टि से देखी गई हैं। परंतु हिंदी के लिए यह पहला प्रस्ताव था। सौभाग्य से सभी ने हृद्य से इसका स्वागत किया। सभा के कार्य्यकर्तात्रों और श्री शिवपूजनसहाय जी के अनवरत परिश्रम के परिगाम-स्वरूप वावू श्यामसुन्दरदास जी के संपाद-कत्व में वह प्रथ प्रकाशित हुआ। वहुन से हिंदीप्रेमी राजाओं श्रीर महानुभावों ने इस शुभ कार्य में सहायता दी। इंडियन ग्रेस के संचालक श्री हरिकेशव घोप ने उस यंथ का लागतमात्र पर छापकर ऋपनी उदारता का परिचय दिया ।

उस प्रथ में कुल ६३२ प्रष्ट हैं। ११ प्रष्टों में दोनों विद्वान्

इन दोनों अवतरणों से यह स्पष्ट होता है कि. द्विवेदी जी अपनी विवशता के कारण ही सम्मेलन के सभापित-पद को अस्वीकार करते रहे हैं। हम उनके इन विचारों की विवेचना करके किसी अनुमानित अथवा किल्पत कारण की ओर संकेत करने की अपेचा यह अच्छा समभते हैं कि पाठकों के सामने यही दो परिच्छेद रख दिये जायँ।

 \times \times \times \times

जनवरी १६३१ में आचार्य द्विवेदी २४ घंटे के लिए काशी पधारे थे। उस समय काशी-नागरी-प्रचारिगी सभा की त्रोर से उन्हें एक अभिनंदन-पत्र दिया गया था। उनके चले जाने के कई दिन वाद श्री शिवपूजनसहाय के कहने पर द्विवेदी जी के सत्तरवें वर्ष में पदार्पण करनेके शुभ अवसर पर सभा ने उनके अभिनंदनार्थ एक यंथ प्रकाशित करने का निश्चय किया। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के आयोजन प्राय: होते रहते हैं। भारत में भी वंगाल, महाराष्ट्र ज्ञादि प्रांतों में भी अपने साहित्यिकों तथा अन्य नेताओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए इस प्रकार की योजनायें आदर की दृष्टि से देखी गई हैं। परंतु हिंदी के लिए यह पहला प्रस्ताव था। सौमाग्य से सभी ने हृद्य से इसका स्वागत किया। सभा के कार्य्यकर्तात्रों और श्री शिवपूजनसहाय जी के अनवरत परिश्रम के परिगाम-स्वरूप वावू श्यामसुन्दरदास जी के संपाद-कत्व में वह प्रथ प्रकाशित हुआ। वहुन से हिंदीप्रेमी राजाओं श्रीर महानुभावों ने इस शुभ कार्य में सहायता दी। इंडियन प्रेस के संचालक श्री हरिकेशव घोप ने उस यथ की लागतमात्र पर छापकर ऋपनी उदारता का परिचय दिया।

उस प्रंथ में कुल ृ६३२ प्रष्ट हैं। ११ प्रष्टों में दोनों विद्वान्

श्वायोजन किया और वड़ी धूम-धाम से श्राचार्य का स्तागत किया। इस शुभ कार्य में योग देनेवालों में ठाकुर श्रीनाथसिंह, मूंशी कन्हेयालाल एडयोकेट, ब्रयोग्रद्ध पंडित लद्मीधर वाजपेयी, पंडित रचुनंदन शर्मा, वावू केटॉरनाथ गुप्त श्रीर श्री निरंजनलाल भागव मुख्य थे। ठाकुर गोपालशरणिंह इसके स्वागता-ध्यद्ध थे।

दियेदी जी ने हिंदी-साहित्य और मातृ-भाषा की जितनी सेवा की है, उतनी कोई विरला ही साहित्य-सेवी करता है, इसिलाए 'अपने समकालीन साहित्य-सेवियों की ऋण-म्बीकृति के रूप में' जितना मत्कार उपलब्ध- ह्या है, वह भी किनी विरले की ही नसीय होता है। कम से कम हिंदू-में तो किसी खाधुनिक लेखक का नहीं हुआ। किर भी अभी नीन बार्ट की कमी है—(१) दियेदी जी का विशद जीवन-चरित, (२) उनके पत्रों का संकलन और संदर्भ-साहित्य-प्रकाशन, (३) उनकी समन्तर रचनाओं का एक संस्करण। इन अभावों का हिंदी-मंसार स्वयं अनुभय कर रहा है। अब इस और विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकवा प्रनीत होनी हैं।

श्रायोजन किया और वड़ी धृम-धाम से श्राचार्य का स्तागत किया। इस शुभ कार्य में योग देनेवालों में ठाकुर श्रीनाथसिंह, मुंशी कन्हेंयालाल एडयोकेट, व्योवृद्ध पंडित लच्मीधर वाजपयी, पंडित रघुनंदन शर्मा, वाबू केट्रॉरनाथ गुप्त और श्री निरंजनलाल भाग्य मुख्य थे। ठाकुर गोंपालशरणसिंह इसके स्तागना-ध्यक्ष थे।

द्विवेदी जी ने हिंदीत्साहित्य और मातृ-भाषा की जितनी सेवा की है, उतनी कोई विरत्ना ही साहित्य-मेवी करता है, इसिलए 'अपने समकालीन साहित्य-सेवियों की ऋण-म्वीकृति के रूप में' जितना सत्कार उपलब्ध- ह्या है, वह भी किसी विरत्ने की ही नसीय होता है। कम से कम हिंदे में तो किसी खाधुनिक लेखक को नहीं हुआ। फिर भी अभी नीन वार्ते की कमी है—(१) द्विवेदी जी का विशव जीवन-चरित, (२) उनके पत्रों का संकलन और संदर्भ-साहित्य-प्रकाशन, (३) उनकी समस्त रचनाओं का एक संकरण। इन अभावों का हिंदी-मंतार स्वयं अनुभय कर रहा है। अब इस और विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता प्रतीत होनी है।

श्रवस्था में जिस विद्वान् लेखक ने निष्काम भाव से श्रपने स्वास्थ्य की से सकर इसका मार्ग विशाल बनाया, कंकड़-पत्थर बीने, काड़-कंखाड़ और कौंटों के जलाया, वह हैं पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी।"

इसी से द्विवेदी जी आज आधुनिक हिंदी-गद्य के निर्माता अथवा जनक कहे जाते हैं।

x ' x x

माता-पिता अपने वालक की किसी योग्य गुरु के सुपुर्द कर देते हैं। वे जानते हैं कि गुरु जितना ही योग्य होगा, वालक की शिचा-दीचा उतनी ही संयत और उच्च केटि की होगी। हिंदी-भाषा-भाषियों को भी वीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एक ऐसे पथ-प्रदर्शक गुरु की खावश्यकता थी, जो मातृभाषा छौर उसके साहित्य के प्रति उनका कर्त्तव्य उन्हें सुमाकर, ज्ञान की वृद्धि करके, उन्हें उचित मार्ग पर लाकर खड़ा कर दे। यह हमारा सौभाग्य ही था कि आवश्यकता के इस समय में ही प्रकृति माता ने हमारे लिए एक योग्य शित्तक श्रीर पथ-प्रदर्शक पैदा कर दिया। द्विवेदी जी हमारे पथ-प्रदर्शक वने और उन्होंने अपने इस कार्य का—'उत्तरदायित्व' भी कह सकते हैं—संपादन कुरालता-पूर्वक किया। यद्यपि उन्होंने किसी ऐसी संस्था की स्थापना नहीं की जो हिंदी-भाषा या उसके साहित्य के प्रचार के लिए किसी प्रकार का कार्य करती, तथापि 'सरस्वती' की सहायता से, भाषा के शिल्पी, विचारों के प्रचार्क तथा साहित्य के शिचक, तीन-तीन संस्थाओं के संच्या 🦏 उत्तर-दायित्व-पूर्ण कार्य उन्होंने स्वेच्छा से उठाया - 👙 🍌 न और सफलता के साथ निभाया। यही उतः - क्रिक्न का प्रधान कारण है '

श्रवस्था में जिस विद्वान् लेखक ने निष्काम भाव से श्रपने स्वास्थ्य की खोकर इसका मार्ग विशाल बनाया, कंकड्-पत्थर बीने, भाड़-भंखाड़ और कौटों के जलाया, वह हैं पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी।"

इसी से द्विवेदी जी आज आधुनिक हिंदी-गद्य के निर्माता अथवा जनक कहे जाते हैं।

× × ×

माता-पिता अपने वालक की किसी योग्य गुरु के सुपुर्द कर देते हैं। वे जानते हैं कि गुरु जितना ही याग्य होगा, वालक की शिचा-दीचा उतनी ही संयत और उच्च केटि की होगी। हिंदी-भाषा-भाषियों को भी वीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एक ऐसे पथ-प्रदर्शक गुरु की आवश्यकता थी, जा मातृभाषा और उसके साहित्य के प्रति उनका कर्त्तव्य उन्हें सुमाकर, ज्ञान की वृद्धि करके, उन्हें उचित मार्ग पर लाकर खड़ा कर दे। यह हमारा सौभाग्य ही था कि आवश्यकता के इस समय में ही प्रकृति माता ने हमारे लिए एक योग्य शित्तक ऋौर पथ-प्रदर्शक पैदा कर दिया। द्विवेदी जी हमारे पथ-प्रदर्शक वने ख्रोर उन्होंने अपने इस कार्य का—'उत्तरदायित्व' भी कह सकते हैं—संपादन कुरालता-पूर्वक किया। यद्यपि उन्होंने किसी ऐसी संस्था की न्थापना नहीं की जो हिंदी-भाषा या उसके साहित्य के प्रचार के लिए किसी प्रकार का कार्य करती, तथापि 'सग्स्वती' की सहायता से, भाषा के शिल्पी, विचारों के प्रचार्क तथा साहित्य के शिचक, तीन-तीन संस्थाओं के संच्या ना उत्तर-दायित्व-पूर्ण कार्य उन्होंने खेच्छा से उठाया - ं , न और सफलता के साथ निभाया। यही उतः - ु- का प्रधान कारण है।

्रित ही उनके साहित्यिक-जीवन-काल में उनका लच्य बनी रही—इसी के लिए वे सदैव प्राण्पण से प्रयत्न करते रहे। 'साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसके आकलन से बहुदर्शिता बहे, बुद्धि को तीव्रता प्राप्त हो, हृद्य में एक प्रकार की संजीवनी शक्ति की धारा बहने लगे। मनोवेग परिष्कृत हो जाय और आत्मगौरव की उद्भावना होकर वह पराकाष्टा को पहुँच जाय।' इस आदर्श और मनेवित्ति ने ही उन्हें आचार्यत्व के पद पर वैठा दिया।

दूसरी बात इस संवंध में यह भो कही जा सकती है कि जिस परिस्थिति में द्विवेदी जी का प्रादुर्भाव हुआ था वह किसी स्थायी संपत्ति के निर्माण के योग्य का ही नहीं। उस समय तो केवल पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता थी जा साहित्य के प्रत्येक चेत्र में "त्रागिधित रूप से बढ़ती हुई विचार-विद्ग्धता को नष्ट करके शुद्ध साहित्य-निर्माण की महत्त्वपूर्ण भावना साहित्य-सेवियों के हृदयों में जागरित कर दे।" यही कार्य द्विवेदी जी ने किया भी। इसी लिए 'यदि मनुष्य की अनुभूतियों, उसके आह्वाद, उसकी वेदना, और उसकी आकांचाओं की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य में अवकाश समभा जाय और उसी के अनुसार हिंदेरी-साहित्य की परीचा की जाय तो मानना पड़ेगा कि समस्त 'द्विवेदी-युग' भी हमारे साहित्य के इतिहास में कोई बहुत गौरव की वस्तु नहीं वन पाया; उसने प्रथम श्रेगी की क भी मौलिक शुद्ध साहित्यिक कृति हमारे सामने नहीं प्रकारी।' फिर केवल द्विवेदी जी की रचनाओं की तो बात ही क्या है कारण, उनकी तो, एक तरह से मौलिक रचनाओं कित्तए अवकाश ही नहीं मिलता था—'सरस्वती'-संपादन में ही वे सदैव व्यस्त रहते थे। इस कथन की पुष्टि इस वात से भी की जा सकती है कि आज तक हिंदी के किसी भी पत्र-

पूर्ति ही उनके साहित्यिक-जीवन-काल में उनका लच्य वनी रही—इसी के लिए वे सदैव प्राण्पण से प्रयत्न करते रहे। 'साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसके आकलन से वहुदर्शिता वंदे, बुद्धि को तीव्रता प्राप्त हो, हृद्य में एक प्रकार की संजीवनी शिक्त की धारा वहने लगे। मनोवेग परिष्कृत हो जाय और आत्मगौरव की उद्भावना होकर वह पराकाष्टा को पहुँच जाय।' इस आदर्श और मनेवित्ति ने ही उन्हें आचार्यत्व के पद पर वैठा दिया।

दूसरी बात इस संवंध में यह भो कही जा सकती है कि जिस परिस्थिति में द्विवेदी जी का प्रादुर्भाव हुआ था वह किसी स्थायी संपत्ति के निर्माण के योग्य का ही नहीं। उस समय तो केवल पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता थी जा साहित्य के प्रत्येक चेत्र में ''त्राग्राधित रूप से वढ़ती हुई विचार-विदग्धता को नष्ट करके शुद्ध साहित्य-निर्माण की महत्त्वपृर्ण भावना साहित्य-सेवियों के हृद्यों में जागरित कर दे।" यही कार्य द्विवेदी जी ने किया भी। इसी लिए 'यदि मनुष्य की अनुभूतियों, उसके आह्वाद, उसकी वेदना, श्रीर उसकी आकांचाओं की अभिन्यक्ति के लिए साहित्य में अवकाश समभा जाय और उसी के अनुसार हिनेदी-साहित्य की परीचा की जाय तो मानना पड़ेगा कि सँमस्त 'द्विवेदी-युग' भी हमारे साहित्य के इतिहास में कोई बहुत गौरव की वस्तु नहीं बन पाया; उसने प्रथम श्रेगी की "क भी मौलिक शुद्ध साहित्यिक कृति हमारे सामने नहीं प्रक्ली।' फिर केवल द्विवेदी जी की रचनाओं की तो बात ही क्या है - कारण, उनको तो, एक तरह से मौलिक रचनाओं की लिए अवकाश ही नहीं मिलता था—'सरस्वती'-संपादन में ही वे सदैव व्यस्त रहते थे। इस कथन की पुष्टि इस वात से भी की जा सकती हैं कि आज तक हिंदी के किसी भी पत्र-

कें द्वारा पूच और पश्चिम की, पुरातन और नूतन, स्थायी और अस्थायी, ज्ञान-संपत्ति—अपनी कठिन कमाई—संपूर्ण हिंदी भापा-भाषी प्रांतो में मुक्त-हस्त से वितरित की, जिसके लिए हम सब उनके उठारी हैं और स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि , भारतेंदु बावू हरिश्चंद्र के बाद यदि किसी ऐसे एक व्यक्ति का नाम लिया जा सकता है जिसके व्यक्तित्व की हमारे हिंदी-साहित्य के विविध ऋंगों पर स्थायी और ऋमिट छाप लगी हो तो वह आचार्थ द्विवेदी जी ही हैं।' जिस दिन कला की सुदृढ़ नींव पर हिंदी-संस्कृति के महान् प्रासाद का निर्माण होगा, जिस दिन गंगा श्रीर यमुना के किनारे का 'प्राचीन' एक बार फिर उठकर देश के दूसरे जायत् प्रांतों के समकत्त नें बैठने का इक़दार हो सकेगा, उस दिन हम देखेंगे कि इसकी नींच को खोदकर तैयार रखने का सारा श्रेय दौलतपुर के एक ग्रामीण ब्राह्मण के। ही है। छ वास्तव में, इसी सम्राट् की दिनिवजय से गीरवान्वित होकर आज हम गुलबरें उड़ा रहे हैं। हमें इस प्रकार प्रसन्न होते और स्वर्गीय गौड़ जी के शन्दों में, अपने साहित्यिक जीवन में मातृमापा हिंदी की जो सेवायें उन्होंने की हैं, उनको फ़ुलते-फलते देखकर आज द्विवेदी जी की आत्मा की जा आनंद हो रहा होगा उसका मूल्य कीन आँक सकता है ? और उससे हिंदी-साहित्य का जो प्रचार और प्रसार हो रहा है वह हमारी व्याँखों के सामने इतना प्रत्यत्त है कि स्वाभाविक-सा लगता है और हम उसके प्रेरक के प्रति फ़ुतज्ञ होना भी भूल जात हैं।

X

×

×

कें द्वारा पूव और परिचम की, पुरातन और नूतन, स्थायी और श्रस्थायी, ज्ञान-संपत्ति—अपनी कठिन कमाई—संपूर्ण हिंदी भाषा-भाषी प्रांतो में मुक्त-हस्त से वितरित की, जिसके लिए हम सब उनके उठाएँ। हैं और स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि , भारतेंदु बावृ हरिश्चंद्र के बाद यदि किसी ऐसे एक व्यक्ति का नाम लिया जा सकता है जिसके व्यक्तित्व की हमारे हिंदी-साहित्य के विविध अंगों पर स्थायी और अमिट छाप लगी हो तो वह श्राचार्थ द्विवेदी जी ही हैं।' जिस दिन कला की सुदृढ़ नींव पर हिंदी-संस्कृति के महान् प्रासाद का निर्माण होगा, जिस दिन गंगा और यमुना के किनारे का 'प्राचीन' एक बार फिर उठकर देश के दूसरे जायत् प्रांतों के समकत्त नें चेठने का इक़दार हो सकेगा, उस दिन हम देखेंगे कि उसकी नींच की खोदकर तैयार रखने का सारा श्रेय दौलतपुर के एक त्रामीण त्राह्मण के। ही है। १४४ वास्तव में, इसी सम्राट् की दिग्विजय से गीरवान्वित होकर आज हम गुलछरें उड़ा रहे हैं। हमें इस प्रकार प्रसन्न होते श्रीर स्वर्गीय गौड़ जी के शब्दों में, अपने साहित्यिक जीवन में मात्रभापा हिंदी की जो सेवायें उन्होंने की हैं, उनको फूलते-फलते देखकर आज द्विवेदी जी की आत्मा की जी आनंद हा रहा होगा उसका मूल्य कौन आँक सकता है ? श्रीर उससे हिंदी-साहित्य का जो प्रचार और प्रसार हो रहा है वह हमारी त्राँखों के सामने इतना प्रत्यत्त है कि स्वाभाविक-सा लगता है त्रीर हम उसके प्रेरक के प्रति छतज्ञ होना भी भूल जात हैं।

हैज़िलट या हमारे देश के रवींद्रनाथ के हैं भी नहीं वेंठे। यह भी नहीं कह सकते कि ये लोग शास्त्रीय समीचा की प्राचीन प्रणाली से परिचित नहीं थे। उन्होंने उसका धभ्यास नहीं किया। हमारा श्रभिप्राय यह भी नहीं कि हम द्विवेदी जी की समीचा से स्टीज, जानसन. रवींद्रनाथ थादि की संमीचा की तुलना करें। परंतु इतनी समता तो सवमें है कि अपने समय की साहित्य-समीचा पर अपनी प्रकृति की सुद्रा ये सभी अंकित कर गये हैं। भावना की वह गहन तन्मयता, जो रवींद्रनाथ के। कर्विता के निगूढ़ रहस्यतम श्रंतरपट या दर्शन करा देती है, द्विवेदी जी में नहीं मिलती; न इन्हें कल्पना की वह आकाशगामिनी गति ही मिली है जो सदा रवि वाबू के साथ रहती है। परंतु इन प्रदेशों के निस्संपन्न, कर्मंठ बाहाए की भाँति दिवेदी जी का शु^{र्दक}, सांख्विक घाचार साहित्य पर भी घपनी छाप छोड़ गया है जिसमें न बल्पना की उच्च उद्भावना है, न साहित्य की सूपम दृष्टि; केवल एक शुद्ध प्रेरणा है जो भाषा का भी मार्जन करती है और समय पर सरल उदात भावों का भी सत्कार करती है। यही हिवेदी जी की देन हैं। शुष्कता में ध्यंग्य है, साखिकता में विनोद है। द्विवेदी जी में ये दोनों ही हैं। स्वभाव की रुखाई कपास की भाँति नीरस होती हुई भी गुणमय फल देती है। द्विवेदी जी ने हिंदी-साहित्य के चेत्र में कपास की ही खेवी की 'निरस विशद गुण्मय फल जासू।"

 \times \times \times \times

हिवेदी जी श्रपने युग के उस साहित्यिक श्रादर्शवाद के जनक हैं जो समय पाकर भेमचंद जी श्रादि के उपन्यास-साहित्य में फूला-फला। श्रपनी विशेषताश्रों श्रीर टुटियों से समन्वित इस श्रादर्शवाद की महिमा हमें स्वीकार, करनी चाहिए। मनुष्य में सत् के प्रति जो हैज़लिट या हमारे देश के रवींद्रनाथ कोई भी नहीं वेठे। यह भी नहीं कह सकते कि ये लोग शास्त्रीय समीचा की प्राचीन प्रणाली से परिचित नहीं थे। उन्होंने उसका धभ्यास नहीं किया। हमारा श्रमित्राय यह भी नहीं कि हम द्विवेदी भी की समीचा से स्टील. जानसन, रवींद्रनाथ थादि की संमीचा की तुलना करें। परंतु इतनी समता तो सवमें है कि अपने समय की साहित्य-समीचा पर अपनी प्रकृति की सुद्रा ये सभी श्रंकित वर गये हैं। भावना की वह गहन तन्मयता, जो रवींद्रनाथ की कर्विता के निगृह रहस्यतम स्रंतरपट का दर्शन करा देती है, द्विवेदी जी में नहीं मिलती; न इन्हें कल्पना की वह श्राकाशगामिनी गति ही मिली है जो सदा रवि वात्र के साथ रहती है। परंतु इन प्रदेशों के निस्संपन्न, कर्मठ बाह्यए की भाँति हिवेदी जी का शुर्वक, साव्विक शाचार साहित्य पर भी श्रपनी छाप छोड़ गया है जिसमें न वल्पना की उच्च उद्भावना है, न साहित्य की सूचम दृष्टि; केवल एक शुद्ध बेरणा है जो भाषा का भी मार्जन करती है और समय पर सरल उदात भावों का भी सरकार करती है। यही हिवेदी जी की देन हैं। शुष्कता में व्यंग्य है, साविकता में विनोद है। द्विवेदी जी में ये दोनों ही हैं। स्वभाव की रुखाई कपास की भाँति नीरस होती हुई भी गुणमय फल देती है। द्विवेदी जी ने हिंदी-साहित्य के चेत्र में कपास की ही खेवी की ''निरस विशद गुणमय फल जास ।"

 \times \times \times \times

हिवेदी जी श्रपने युग के उस साहित्यिक श्रादर्शवाद के जनक हैं जो समय पाकर भेमचंद जी श्रादि के उपन्यास-साहित्य में फूजा-फला। श्रपनी विशेषताश्रों श्रीर टुटियों से समन्वित इस श्रादर्शवाद की महिमा हमें स्वीकार् करनी चाहिए। मनुष्य में सत् के प्रति जो भी विधियाँ विहित हैं। दिवेदी युग का कहना चाहिए।

> बोब र्यामसुंदरदासं, बीठ ए० नाय कृष्णदास रत्विना दि० अ० अ० अ० प्रष्ट ६-७)

द्विदा व

गिरि-मेखला से वेष्टित होते हुए भी, श्रुपने श्राकार-विस्ता के कारण, पक स्वच्छ्द पर्वत-सा मालुम होता है: जिसके सुवःस्थल पर सेवों का हार है और वियुक्त्या द्वसनते हुए हीरे की तरह क्या जय के ज़रक जाती है, परंतु जिलका उन्नतः जलाद्य शुभ्य याकाश में सूर्य की रिसयों से कीर्तिमयी कांति. का पूर्व वनकर श्रापने युग-प्रदेश की तेज्ञानयी करता है, और जिसकी प्रतिमा से पीयूपमयी शक्ति का जीत, शिवसंबर की जटा से निक्की हुई पुण्यसिताता गंगा के संगीत, थनेक प्रांतों की सिंचित अहें थनेत प्राणियों की सतुसाहित्य थीर सद्योगों में प्रवृत्त होने के लिए स्फूर्ति का दान देता है ए अपने युग में वह वेजाद है। अदेय श्रीनिवास शास्त्री ने जो गांधी जी की विषय, में कहा था, वही, साहित्यिक चेत्र में - श्रीर वह भी वहीं तक के लिए जहाँ तक हिंदी-भाषा की सीमा का विस्तार है - द्विवेदी जी के लिए कहा जा सकता है। वह वास्तव में आश्चर्य और धननुगम्ये है, उन्हें न कोई छूसकता है और न कोई उनके पास तक फटक सकता है। अपनी अनुरी विशिष्टता से वे सर्वया अकेले और निराले है। अपने समय के वे एक खेत्र राजा थे। काफ़ी समय तक प्रतिद्वृद्वियों ने उनके हाथ से साहित्यिक दंड की छीनने की व्यर्थ चेष्टायें की । श्रंत में विजयल की ने उन्हीं के माथे पर मुकुट रक्ला

भी विधियाँ विहित हैं। दिवेदी युगुका साहित्य के कभेगा का युग कहना चाहिए।

—बीव रयामसंदरदासं वी० ए० श्रेत कृत्तादास (अस्तावना दि० अ० अ० छ० ६८७)

हिवेदी जी उस गगनसारी मेर स्तम से समता स्वरते हैं जा गिरि-मेखला से वेष्टित होते हुए भी, अपने आकार-विस्तार के कारण, पक स्वच्छंद पर्वत-सा मालुम होता है: जिसके स्वतःस्थल पर्वतेमों का हार है और विद्युवंबदा द्रमुकते हुए हीरे की तरहे चुण-चण से लेहक जाती है। परंतु जिलका उन्नतः जलाट्यू अभः याकाश[्]मः सूर्यं की रिसयों से कीर्तिमयी कांति का विद्वा वनकर अपने युग-प्रदेश की नेही तथ करता है, श्रीर जिसकी प्रतिभा से पीयूपमयी शक्ति का अलेक शिवशंवर की जटा से निकली हुई पुण्यसन्तिना गंगा के समैति, अनेक प्रांतों के। सिचित अपेर अनेत प्राणियों, के सतुसाहित्य और सदुद्योगों में प्रवृत्त होने के जिए स्फूर्ति का दान देता है एअपने युग में वह वैजाद है। अद्धेय अनिवास शास्त्री ने जो गांधी जी से निपय में कहा था, वही, साहित्यक चेत्र में — ग्रीर वह भी वहीं तक के लिए जहाँ तक हिंदी-भाषा की सीमा का विस्तार है —हिंदेदी की के लिए कहा जा सकता है। वह वास्तव में आश्चर्य और अनुताम्य है, उन्हें न कोई छूसकता है और न कोई उनके पास तक फटक सकता है। अपनी अनुरी विशिष्टता से वे सर्वया अकेले और निराले हैं। अपने समय के वे एकच्छुत्र राजा थे। काफ्री समय तक प्रतिद्वृद्वियों ने उनके हाथ से साहित्यिक दंड को छीनने की व्यर्थ चेष्टाचें कीं। अंत में विजयत स्ती ने उन्हीं के माथे पर अकट रक्षा ृफा०् १

तो उसके सबसे बढ़े विधायक तो श्रवश्य हैं। दोनों ही श्रपने-श्रपने समय के श्रद्धितीय समालोचक हुए हैं। ढाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी के साहित्यिक कोड़ेंा की चोट से बहुत से श्रनधिकार चेष्टा करनेवाले जेखकों के। समय-समय पर तिलमिलाना पड़ा है। दोनों ही श्रसाधारण पांडित्य के कारण विद्वन्मंडली के पूजास्पद हुए हैं। डाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी में मैत्री का श्रपूर्व गुण है।

> --पंडित वेंक्टेशनारायय तिवारी, एम॰ ए॰ (साप्ताहिक भारत २८ श्रक्टूबर श्रीर ११ नवंबर, १६२८)

> > 8

पहित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी, जो खपने युग के प्रधान साहित्याचार्य हुए, थ्रेपने आरंभिक विकास की दृष्टि से द्यानंदी थे। सामयिक जबताओं का प्रतीकार करने में त्राप सदा खद्गहस्त रहे। परशुराम की भाँति श्रापने राजसभाव के विरुद्ध चिरकाल तक श्रनवरत संघर्ष किया । युग की परिस्थित के वश होकर द्विवेदी जी, द्रोणाचार्य की भाँति चात्रधर्म के अनुयायी हुए। उन्होंने सैनिक वृत्ति धारण की । पच्चीसं वर्ष लगातार हिंदी-साहित्य के शिविर में उसके सेनानायक होकर रहे। सच पूछा जाय तो हिंदी का वह युग बाह्मण्युग न था, चत्रिययुंग था। उसकी संपूर्ण मतिगति वैसे ही साँचे में ढली थी। उस युग के सच्चे बाह्यणों ने-जिनमें द्विवेदी जी प्रमुख हें-एक अभूतपूर्व आवेश में आकर कार्य किया। उनका ऋण इस पर श्रपार है। परंतु जब इस यह विचार करते हैं कि निरंतर संघर्षमय समय में रहकर भी द्विवेदी जी उत्तम केाटि की साहित्यिक दृष्टि से संपन्न थे, तब हमें उनकी वास्तविक महत्ता का वोध होता है। संस्कृत-काव्य की मध्यकालीन-कला-विशेषतः युक्त-रचना का चमस्कार द्विवेदी जी पर पूर्ण्ं प्रभाव रखता था, किंतु वे छोर भी

तो उसके सबसे बद्दे विधायक तो श्रवश्य हैं। दोनों ही श्रपने-श्रपने समय के श्रद्धितीय समालोचक हुए हैं। डाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी के साहित्यिक कोड़ों की चोट से बहुत से श्रनधिकार चेष्टा करनेवाले जेखकों के। समय-समय पर तिलमिलाना पड़ा है। दोनों ही श्रसाधारण पांडित्य के कारण विद्वन्मंडली के पूजास्पद हुए हैं। डाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी में मैत्री का श्रपूर्व गुण है।

--पंडित वेंक्टेशनारायय तिवारी, एम० ए० (साप्ताहिक भारत २८ श्रक्ट्यर श्रीर ११ नवंबर, १६२८)

8

पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी, जो श्रपने युग के प्रधान साहित्याचार्य हुए, थ्रेपने आरंभिक विकास की दृष्टि से द्यानंदी थे। सामयिक जबताओं का प्रतीकार करने में थाप सदा खद्ग इस्त रहे। परशुराम की भाँति श्रापने राजसभाव के विरुद्ध चिरकाल तक श्रनवरत संघर्ष किया। युग की परिस्थित के वश होकर द्विवेदी जी, द्रोणाचार्य की भाँति चात्रधर्म के अनुयायी हुए। उन्होंने सैनिक वृत्ति धारण की । पच्चीसं वर्ष लगातार हिंदी-साहित्य के शिविर में उसके सेनानायक होकर रहे। सच पूछा जाय तो हिंदी का वह युग बाह्मण्युग न था, चित्रययुग था। उसकी संपूर्ण मितगित वैसे ही साँचे में ढली थी। उस युग के सच्चे ब्राह्मणों ने—जिनमें द्विवेदी जी प्रमुख हें -- एक ग्रमृतपूर्व घावेश में श्राकर कार्य किया। उनका ऋण हम पर अपार है। परंतु जब हम यह विचार करते हैं कि निरंतर संघर्षमय समय में रहकर भी द्विवेदी जी उत्तम केाटि की साहित्यिक दृष्टि से संपन्न थे, तब हमें उनकी वास्तविक महत्ता का बोध होता है। संस्कृत-कान्य की मध्यकालीन-कला-विशेषतः युक्त-रचना का चमत्कार द्विवेदी जी पर पूर्ण प्रभाव रखता था, किंतु वे श्रीर भी

Ę

यदि कोई मुक्तसे पूछे कि द्विवेदी जी ने क्या किया तो मैं उसे समय आधुनिक दिंदी-साहित्य दिखायर कह सकता हूँ कि यह सब उन्हों की सेवा का फन्न है। हिंदी-साहित्य गगन में सूर्य, चंद्रमा और तारागणों का अभाव नहीं है। स्रदास, तुजसीदास, पन्नाकर यादि कवि साहित्याकाश के देदीप्यमान नचन्न हैं। परंतु मेघ की तरह ज्ञान की जलराशि देकर साहित्य उपवन के। हरा-भरा करनेवालों में दिवेदी जी की ही गणना होगी।

—श्रीपदुमलाल पुन्नालाल वऱ्न्यी (ह्विवेदी-श्रीमनंदन-ग्रंथ ए० ४३१)

O

हिंदो के द्वारा द्विनेदी जी ने हिंदू-संस्कृति का भला किया है। मेरे लिए हिंदू-संस्कृति चीर हिंदुक्व दो पर्यायवाची शब्द हैं। हिवेदी जी ने भाषा-हारा हिंदू की रचा तथा विकास किया है; श्रतः मेरे जिए वे मान्य हैं।

> -- श्री भाई परमानंद एम० ए०, एम० एत्त० ए० (ह्विदेशी-श्रमिनंदन-ग्रंथ ए० ४३१)

> > Ξ

No one has laboured harder or to greater purpose in the cause of promoting intellectual freedom by popularizing expression in an Indian language—Hindi in his case—than Pandit Mahavir Prasad Dvivedi × × × All honour to him for the pioneer work that he has per-

Ę

यदि कोई सुमसे पूछे कि द्विवेदी जी ने क्या किया तो मैं उसे समय याछिनिक दिदी-साहित्य दिखावर कह सकता हूँ कि यह सब उन्हीं को सेना का फज है। हिंदी-साहित्य गगन में सूर्य, चंद्रमा यौर तारागणों का श्रभाव नहीं है। सूरदास, तुलसीदास, पद्माकर श्रादि कि साहित्याकाश के देदीप्यमान नचन्न हैं। परंतु मेघ की तरह ज्ञान की जलराशि देकर साहित्य उपवन के। हरा-भरा करनेवालों में दिनेदी जी की ही गणना होगी।

> —श्रीपदुमलाल पुत्रालाल बख़्यी (द्विवेदी-स्रिमनंदन-प्रथ पृ० ४३१)

v

हिंदो के द्वारा द्विवेदी जी ने हिंदू-संस्कृति का मला किया है। मेरे लिए हिंदू-संस्कृति श्रीर हिंदुत्व दो पर्यापवाची शब्द हैं। द्विवेदी जी ने भाषा-द्वारा हिंदू की रचा तथा विकास किया है; श्रतः मेरे जिए वे मान्य हैं।

> — श्री भाई परमानंद एम० ए०, एम० एत्त० ए० (ह्विदी-श्रभिनंदन-ग्रंथ ए० ४३१)

> > ξ

No one has laboured harder or to greater purpose in the cause of promoting intellectual freedom by popularizing expression in an Indian language—Hindi in his case—than Pandit Mahavir Prasad Dvivedi × × × All honour to him for the pioneer work that he has per-

प्रेम श्रीर श्रक्खद्यनं का जा standard हिंदी-पत्रकारों के सामने उन्होंने स्वखाः है उस तक पहुँचने के लिए श्रभी वीसियों वर्ष लगेंगे। उनके मुकावले का दूसरा के ई लनेंलिस्ट हिंदी-संसार में तो विद्यमान नहीं।

—पं॰ वनारसीदास चतुर्वेदी (विशाल भारत, मई १६२६)

35

हिंदी संसार में तो क्या उनकी टका के साहित्य सेवी भारत के अन्य भाषा-भाषियों में भी कितने हैं, पता नहीं।

—पं० श्रीरामशर्मा (सुधा, ६-१-२ ए० २२४)

93

व्यक्तित्व बनाया जाता है, स्वयं नहीं वनता । लोकाकांचा ही व्यक्तित्व की महिमा प्रतिष्ठापित करती है । हमारे श्राचार्य दिवेदी जी इसके प्रत्यच प्रमाण हैं । श्रपनी निःस्वार्य साहित्यिक साधना से इन्होंने जिस वातावरण की सृष्टि की, उसके भीतर से इसी लोकाकांचा का प्रादुर्भाव हुआ श्रीर यही श्राज के हमारे इतने वढ़े श्राह्माद का कारण बनी । इस प्रकार की श्राकांचाशों का हमारे वीच जितना ही श्रिषक प्रसार होगा, इस उतनी ही जल्दी श्रपने श्रापको समुद्धत बना सकेंगे।

> -स्व० श्री श्रेमचंद जी (हंस ३-७-५० १०२)

18

समय परिवर्तनशील है। भारतवर्ष में घँगरेज़ों का राज्य रहे, 'गाहे स्वराज्य हो जाय, प्रकाधिपत्य हो, चाहे प्रजातंत्रवाद की टुंडुभि यजे, परंतु हिंदी-साहित्य का ज़ा राष्ट्रीय भवन द्विवेदी जी ने तैयार किया प्रेम श्रीर श्रक्खद्वन का जे। standard हिंदी-पत्रकारों के सामने उन्होंने रक्खा है उस तक पहुँचने के लिए श्रभी बीसियों वर्ष लगेंगे। उनके मुकावले का दूसरा केाई जनेंलिस्ट हिंदी-संसार में तो विद्यमान नहीं।

—पं॰ वनारसीदास चतुर्वेदी (विशाल भारत, मई १६२६)

3 5

हिंदी संसार में तो क्या उनकी टक्कर के साहित्य-सेवी भारत के श्रान्य भाषा-भाषियों में भी कितने हैं, पता नहीं।

—पं० श्रीरामशर्मा (सुधा, ६-१-२ पृ० २२४)

33

व्यक्तित्व बनाया जाता है, स्वयं नहीं वनता। लोकाकांता ही व्यक्तित्व की महिमा प्रतिष्ठापित करती है। हमारे श्राचार्य दिवेदी जी इसके प्रत्यच प्रमाण हैं। श्रपनी निःस्वार्थ साहित्यिक साधना से इन्होंने जिस वातावरण की सृष्टि की, उसके भीतर से इसी लोकाकांचा का प्रादुर्भाव हुआ श्रीर यही श्राज के हमारे इतने वढ़े श्राह्माद का कारण बनी। इस प्रकार की श्राकांचाशों का हमारे वीच जितना ही श्रिष्ठक प्रसार होगा, इम उतनी ही जलदी श्रपने श्रापको समुचत बना सकेंगे।

> —स्व० श्री प्रेमचंद जी (हंस ३-७-५० १०२)

18

समय परिवर्तनशील है। आरतवर्ष में धँगरेज़ों का राज्य रहे, गहे स्वराज्य हो जाय, एकाधिपत्य हो, चाहे प्रजातंत्रवाद की टुंडुभि बजे, परंतु हिंदी-साहित्य का जो राष्ट्रीय भवन द्विवेदी जी ने तैयार किया